मेरे संस्मरण

बाबा मामा

मेरे संस्मरण

(My Memoirs)

बाबा मामा कृत

हिन्दी अनुवाद

(ओ.पी.चान्दना)

प्रस्तावना

महात्मा गाँधी के नेतृत्व में बर्तानवी शासन के विरुद्ध भारत के स्वतंत्रता संग्राम में, महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले परिवार की विस्तृत कथा को वर्णन करने वाली इस पुस्तक के विषय में कुछ शब्द लिखना महान सौभाग्य है। इस परिवार ने देश को श्री पी.के.साल्वे के रूप में एक अत्यन्त प्रतिभाशाली, निस्वार्थ, विवेकशील, सुसंस्कृत, विद्वान, साहसिक एवं दूरदर्शी राजनीतिक नेता प्रदान किया। स्वतंत्र भारत में इसी परिवार ने, संसार को उच्च आध्यात्मिक स्तर पर उत्थान तथा मोक्ष प्राप्ति के लिए माताजी श्री निर्मला देवी के रूप में दिव्य अवतरण भी प्रदान किया।

मेरे संस्मरण (My Memoirs) नामक यह पुस्तक इसी यशस्वी परिवार के कनिष्ठतम सदस्य एच.पी.साल्वे ने अननुकरणीय शैली में लिखी है। एच.पी. साल्वे को स्नेहपूर्वक बाबा–मामा कहकर पुकारा जाता था और इसी नाम से वे प्रसिद्ध थे। बाबा–मामा के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति में इन भारतरत्नों के विषय में लिख पाने की योग्यता नहीं है क्योंकि वे सभी घटनाओं के साक्षी एवं सहभागी थे तथा इन्हीं घटनाओं को पुन: स्मरण करके उन्होंने इनका सूक्ष्म विवरणात्मक–चित्रण किया।

वास्तव में ये पुस्तक श्री माताजी निर्मला देवी की जीवन कथा है, जिन्होंने बाल्यकाल से ही सभी धर्मो एवं जातियों के नर–नारियों और बच्चों, विशेष रूप से बच्चों के प्रति अपने अथाह प्रेम एवं करुणा का प्रदर्शन किया। पुस्तक सावधानी पूर्वक उनके जीवन के एक के बाद एक मुकाम का वर्णन करती है।

अपने शैशवकाल में निर्मला ने ऐसे गुणों का प्रदर्शन किया जिन्होंने उनकी प्रतिभाशीलता की अभिव्यक्ति की। स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान जब–जब भी बर्तानवी शासकों ने उनके माता–पिता को गिरफ्तार किया तो पूरी गृहस्थी की जिम्मेदारियाँ उन्हीं को सौंपी गईं, उनके किसी भी बड़े भाई या बहन को नहीं, क्योंकि वे परिवार की सबसे अधिक जिम्मेदार बालिका थीं। सामान्य दिनों में वे अपनी पढ़ाई–लिखाई को चालू रखतीं परन्तु अपने माता–पिता के साथ राजनीतिक गतिविधियों में भी भाग लेतीं। एक बार जब वे केवल पाँच वर्ष की थीं

तो उन्हें एक बहुत बड़ी सभा को सम्बोधित करने को कहा गया। बिना किसी हिचकिचाहट या मंच–भय के उन्होंने देशभक्ति के जोश से भाषण दिया और सबका दिल जीत लिया। कभी–कभी वे अपने माता–पिता के साथ महात्मा गाँधी के आश्रम जातीं। वहाँ पर भी वे शीघ्र ही महात्मा गाँधी की चहेती बन गईं। महात्मा गाँधी प्राय: उनसे सत्य एवं अहिंसा पर आधारित लक्ष्यों के विषय में बातचीत करते। निर्मला के लिए वे क्षण अत्यन्त सम्माननीय एवं स्मरणीय होते।

वर्ष १९४२ में जब महात्मा गाँधी ने 'भारत छोड़ो' आन्दोलन का आरम्भ किया तो उन्होंने विदेशी शासकों को यह देश छोड़ देने की चुनौती दी। तब देश भक्ति की भावना से ओत–प्रोत उन्नीस वर्ष की बालिका निर्मला, जी–जान से इस आन्दोलन में कूद पड़ीं। परिणामस्वरूप उनकी शिक्षा में बाधा पड़ी।

बाद में लाहौर में उन्होंने चिकित्सकीय शिक्षा के लिए प्रवेश लिया परन्तु भारत के होने वाले विभाजन के कारण वर्ष १९४७ के आरम्भ में उन्हें लाहौर छोड़ना पड़ा और वे नई दिल्ली अपने माता–पिता के घर पहुँचीं जहाँ उनके पिता उन दिनों राष्ट्रीय विधानसभा के सदस्य थे। उनका यदि वश चलता तो वे अपनी एम.बी.बी.एस. की परीक्षा पूर्ण करतीं परन्तु अपने माता–पिता की इच्छाओं के समक्ष सिर झुकाते हुए वे विवाह करने के लिए सहमत हो गईं। उस समय मैं अस्थायी रूप से उनके माता–पिता के घर पर उनके भाई के अतिथि के रूप में रह रहा था जो विश्वविद्यालय के दिनों से ही मेरे मित्र थे। मुझे आश्चर्य हुआ जब निर्मला के माता–पिता ने सोचा कि मैं उनकी बेटी के लिए उपयुक्त दूल्हा बन सकता हूँ। निर्मला अपने माता–पिता को निराश नहीं करना चाहती थीं इसलिए उसने आपत्ति नहीं की। इस प्रकार, मेरे सौभाग्य से वर्ष १९४७ में मेरा और निर्मला का विवाह हुआ।

जब से हमारा विवाह हुआ निर्मला एक आदर्श पत्नी हैं जो न केवल मुझ पर तथा अपने बच्चों पर अपने अथाह प्रेम एवं स्नेह की वर्षा करती हैं बल्कि उन सब बच्चों से भी समान रूप से प्रेम करती हैं जो हमारे यहाँ आश्रय एवं सुख के लिए आते हैं।

सरकारी अधिकारी के रूप में नौकरी के आरम्भिक दिनों में मेरा वेतन बहुत सीमित था परन्तु वे उपलब्ध साधनों में ही अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक गृहस्थी चलाती थीं। एक बार हमारे घर में चोरी हो गई और हमारा सब कुछ चला गया।

उनके पास केवल कुछ सूती साड़ियाँ और एक रेशम की साड़ी बच गई। मुझे निश्चिंत रखने के लिए उन्होंने इस स्थिति में भी इतनी प्रसन्नतापूर्वक चीज़ों को चलाया मानो कुछ हुआ न हो। कभी उन्होंने कोई माँग नहीं की और सदैव उपलब्ध साधनों में ही, चाहे ये जितने भी कम थे, प्रसन्नता पूर्वक जीवन को चलाया। केवल उन्हीं के निरन्तर आश्रय और उत्साह के कारण ही मैं अपने परिवार का सत्य और निष्ठा पूर्वक उच्च स्तर बनाए रख सका। समय व्यतीत होने के साथ–साथ मेरी पदोन्नति हुई और हालात सुधरे। परन्तु इन सब स्थितियों में उन्होंने ऐसे गुणों का प्रदर्शन किया जो भारतीय शास्त्रों में केवल देवी महालक्ष्मी और सरस्वती में वर्णन किए गए हैं।

निर्मला यद्यपि स्वतन्त्रता सेनानियों तथा ज्ञान सम्पन्न व्यक्तियों के परिवार से सम्बन्धित थीं, मैं वकीलों और जमींदारों के रूढ़िवादी परिवार से था। निर्मला को मेरे बहुत से सम्बन्धियों के सम्पर्क में आना पड़ा जो दकियानूसी विचारों से परिपूर्ण थे। परन्तु उनके धैर्यशील, सावधानी पूर्ण एवं प्रेममय व्यवहार तथा सभी लोगों के प्रति हार्दिक आदर–सत्कार ने बिना किसी देरी के उनके हृदय जीत लिए और पारिवारिक संगणना (Reckoning) में मुझे बहुत पीछे छोड़कर वो परिवार की चहेती बहुरानी बन गईं। वो अपना सब–कुछ दे देतीं और बदले में कुछ भी आशा न करतीं।

हमारे सहजीवन के प्रारम्भिक दिनों से ही निर्मला बहुत सी सामाजिक, सांस्कृतिक और मानवीय गतिविधियों को बढ़ावा देने में सक्रिय भूमिका निभाया करती थीं। मेरठ जिले में उन्होंने एक कुष्ठगृह स्थापित किया और चलाया। मुम्बई, जो तब बम्बई थी, उन्होंने अपाहिजों, विशेष रूप से नेत्रहीनों के लिए हितकर गतिविधियों का आयोजन किया। बच्चों की फिल्म सोसायटी और हिन्दी नाटक की तो वे पथप्रदर्शिका थीं।

निर्मला ने सदैव सभी सांस्कृतिक गतिविधियों, विशेष रूप से शास्त्रीय संगीत, नृत्य, नाटक और चित्रकला में गहन रुचि ली। जब मैं 'भारतीय जहाज़रानी निगम' नामक राष्ट्रीय उद्यम का अध्यक्ष (Chairman) था तो निगम के विदेशी अतिथियों के लिए किए जाने वाले कार्यक्रमों का वे जीवन और आत्मा हुआ करतीं थीं। भारतीय शास्त्रीय तथा भक्ति संगीत को बढ़ावा देने में भी उन्होंने बहुत दिलचस्पी ली और इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए अपने

सम्माननीय स्वर्गीय पिता की स्मृति में उन्होंने नागपुर में पी.के.साल्वे संगीत, नृत्य एवं नाटक अन्तरराष्ट्रीय संस्थान (P.K.Salve International Academy) की स्थापना की। इस परियोजना के लिए उन्होंने अपने निजी संसाधनों से आर्थिक सहायता दी और इसके रोज़मर्रा का प्रबन्धन कार्य बाबा–मामा को सौंपा। इस संस्थान में भिन्न देशों के विद्यार्थी आए जिन्हें उच्च गुणवत्ता का प्रशिक्षण दिया गया। इस संस्थान के स्नातकों को मैंने स्वयं देखा है और इनकी प्रस्तुति को आश्चर्य पूर्वक श्वास रोककर सुना है। शास्त्रीय तथा भक्ति संगीत अब सभी सहज कार्यक्रमों तथा गतिविधियों का आवश्यक अंग है।

अधिक गम्भीरता पूर्वक न सोचते हुए मैं एक ऐसे क्षेत्र का भी स्मरण करना चाहूंगा जिसका तकनीकी ज्ञान निर्मला को अपर्याप्त है–आर्थिक एवं साहूकारी (Financial Matters and Banking)। इन कार्यो के लिए वे पूरी तरह से सहजयोगियों पर भरोसा करती हैं।

उनके जीवन का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष १९७० में आरम्भ हुआ जब उन्होंने सहजयोग की स्थापना की तथा केवल अपने ही प्रयासों से इसे जन–आन्दोलन बना दिया। उनकी कृपा से ८५ देशों के भिन्न धर्मो जातियों और प्रजातियों के लाखों लोगों ने कुण्डलिनी जागृति एवं आत्म–साक्षात्कार की प्राप्ति द्वारा आन्तरिक परिवर्तन को प्राप्त किया। वर्तमान, स्वार्थी एवं चरित्रहीन मानव समाज को वे सार्वभौमिक, वास्तव में उन्नत, शुद्ध, पवित्र, करुणामय एवं प्रेममय नर–नारियों के रूप में परिवर्तित कर रही हैं। ये भिन्न आयु तथा भिन्न महाद्वीपों से हैं। इन परिवर्तित लोगों के जीवन से नशे, शराब तथा चरित्रहीनता एक ही रात में भाग गए। मैं निजी रूप से ऐसे बहुत से लोगों को जानता हूँ। नशे के स्थान पर उन्होंने इन्हें परमेश्वरी प्रेम की सर्वव्याप्त शक्ति से योग करने के योग्य बना दिया है।

ये पुस्तक पाठक को प्रेम एवं दिव्यता के माध्यम से ब्रह्माण्डीय परिवर्तन की इस चमत्कारिक कथा की स्पष्ट सूझ–बूझ एवं ज्ञान प्राप्त करने के योग्य बनाती है।

निर्मला देवी के गरिमामय व्यक्तित्व के बहुत से अन्य पहलू भी हैं। उन्हें विश्व के सभी मुख्य धर्मो के पावन ग्रन्थों का गहन ज्ञान है। इसलिए अत्यन्त सुगमता पूर्वक उन्होंने सभी धर्मो के मूल तथा सारतत्वों का मानव के लिए प्रेरणात्मक दर्शन के रूप में समन्वय किया। वे सशक्त वक्ता हैं तथा अपने

विचारों को अत्यन्त सहजता पूर्वक अन्य लोगों में संचरित कर सकती हैं। हजारों लोगों की विशाल भीड़ श्वास रोककर उन्हें सुनती है। कथाएँ, घटनाएं तथा दृष्टांतों को वे सुगमता, स्पष्टता एवं गति से वर्णन कर सकती हैं। ऐसा लगता है मानो वे ज्ञान के स्रोत से निरंतर सम्पर्क में हों, उस स्रोत से जिसका वर्णन आइंस्टाइन ने सम्भवत: ऐंठन क्षेत्र (Torsion Area) के रूप में किया है। चाहे यह बात जितनी भी आश्चर्यजनक लगे, निर्मला देवी विश्वभर में पूरे सहजयोग आन्दोलन को बिना किसी सचिवालय के चला रही हैं। उनके पास निजी सचिव तक नहीं हैं। हर पग पर सहजयोगी अत्यन्त प्रसन्नता एवं भक्ति पूर्वक आवश्यक सहायता प्रदान करते हैं। चहुँ–ओर पूर्ण सत्यनिष्ठा (Absolute Integrity) होने के कारण कभी भी कोई गड़बड़ नहीं होती। स्पष्टवादिता पूर्वक मैं कहूँगा कि आज तक प्रेम के स्वयं–सेवी परिश्रम के आधार पर इतनी कुशलतापूर्वक चलते हुए मैंने कोई और आन्दोलन नहीं देखा। यह सहजयोगियों तथा उनकी प्रिय पथ–प्रदर्शिका के प्रति श्रद्धांजलि है।

यह पुस्तक लिखकर बाबा–मामा ने पूरे सहजयोग आन्दोलन तथा सहजयोगियों की अमूल्य सेवा की है। इसके माध्यम से सहजयोगी अब लेखक के निजी एवं गहन ज्ञान द्वारा प्रमाणिकता पूर्वक माताजी श्री निर्मला देवी के जीवन के भिन्न पक्षों तथा घटनाओं की झलक प्राप्त कर सकेंगे।

आध्यात्मिक अनुभव के माध्यम से जीवन को बेहतर बनाने की इच्छा रखने वाले जिज्ञासुओं से मैं इस पुस्तक की सिफ़ारिश करता हूँ।

निष्कर्ष के रूप में मैं अपनी कुछ निजी टिप्पणियाँ देना चाहूँगा। 'मेरे संस्मरण' में बाबा–मामा कहते हैं कि १९४७ में, उनकी बहन से मेरा विवाह होने से पूर्व जब उन्होंने मुझे देखा तो मेरे अफसरी दिखावे के कारण (Bureaucratic Appearance) तुरन्त उनमें मेरे प्रति अरुचि की भावना जाग उठी। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है मेरे मन में एकदम से उनके प्रति रुचि जाग उठी क्योंकि तब वे अत्यन्त दिलचस्प, शरारती, चौदह वर्ष की आयु के किशोर थे, जो शॉर्टस् (घुटनों तक की पैन्ट) पहनकर प्रसन्नता पूर्वक चहुँ ओर दौड़े फिरते थे। तभी से उन्होंने मेरे हृदय में स्थान प्राप्त कर लिया और बाद में श्रीवास्तव परिवार के भी चहेते सदस्य बन गए।

सी.पी.श्रीवास्तव

लेखक के विषय में कुछ शब्द

श्री.एच.पी.साल्वे का जन्म वर्ष १९३३ में हुआ। सहजयोगियों में वे बाबा–मामा के रूप में जाने जाते हैं। भारत के महाराष्ट्र प्रदेश में माँ के भाई को मामा कहकर पुकारा जाता है। वे सहजयोगदायिनि 'माँ', प.पू.माताजी श्रीमती निर्मलादेवी, के भाई थे। एच.पी.साल्वे पूर्वकालीन शालिवाहन नामक सुप्रसिद्ध राजवंश के वंशज थे। उनका जन्म भारतीय इतिहास के महत्वपूर्ण काल में हुआ–एक ऐसे समय में जब उनके पिता राष्ट्र के अन्य बड़े लोगों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर बर्तानवी सरकार की दासता का जूआ (Yoke) उतार फेंकने के लिए संघर्ष कर रहे थे। यह एक ऐसा समय था जब श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों का बोलबाला था तब ऐसे आदर्शों की बलिवेदी पर बलिदान हो जाना उत्तम माना जाता था, एक ऐसा समय जब बर्तानवी जेलों में राष्ट्रपिताओं ने देश के युवाओं को पीछे छोड़ दिया था और आत्मा की विजय प्राप्त करने के लिए उनके परिवारों ने गरीबी की कठिनाइयों को सहर्ष स्वीकार कर लिया था। कोका–कोला और पॉप म्यूजिक़ का किसी ने नाम भी न सुना था। सभी लोगों के होंठो पर जयहिन्द का नारा था और भारत माता सभी के हृदयों को प्रेरित करती थीं। महात्मा गाँधी की असाधारण प्रतिमा भारतीय क्षितिज पर छाई हुई थी और सभी युवाओं का स्वप्न उनकी परछाई को छू लेना था। इस त्रासदी ने युवा साल्वे की चेतना पर भी छाप छोड़ी और उन्होंने डटकर इसका मुकाबला किया। जीवन पर्यन्त उन्होंने कठोर गाँधीवादी आदर्शो का पालन किया। माता–पिता के प्राय: जेल जाने के कारण उनकी बड़ी बहन निर्मला ने अत्यन्त प्रेमपूर्वक उनका लालन–पालन किया और न केवल उनकी आत्मा का पोषण किया बल्कि अपने माता–पिता के उच्च आदर्शो के अनुरूप उनके व्यक्तित्व को भी निखारा।

विभाजन के तुरन्त पश्चात् इक्कीसवीं शताब्दी के अभिशाप और वरदान आए और युवा साल्वे ने इस तूफ़ानी परिवर्तनशील समय में अपने पंख फैलाने सीखे। उन्होंने पारम्परिक मूल्यों को आत्मसात किया था फिर भी शास–पत्रित लेखाकार का आधुनिक पेशा अपनाने का साहस किया। जो लोग इस बात से परिचित थे कि उनकी माँ गणित की विद्वान थीं, उनके लिए उनका ये कदम कोई आश्चर्य की बात न थी। उनकी बहन के द्वारा बोए गए बीज करुणामय व्यक्ति के

रूप में पुष्पित हुए और इस प्रकार उन्हें आंतरिक सन्तुलन की अवस्था प्रदान की। तीव्र हाजिऱजवाबी के गुण के कारण वे अपने मित्रों के प्रिय बन गए। उनके मित्र प्राय: उनकी बातें करते। उनके एक समीपी मित्र ने बताया कि, ''उनके पिता नागपुर के प्रथम मेयर थे और बाबा नागपुर के अन्तिम हौए (Nightmare) थे।''

ऐसा प्रतीत होता है कि भाग्य के गर्भ में उनके लिए और भी बहुत कुछ छिपा हुआ था। अपनी बड़ी बहन निर्मला देवी के दिव्य स्वभाव को जब उन्होंने पहचाना तो उनका जीवन परिवर्तन बिन्दु तक पहुँच गया। उनके आशीर्वाद से उन्होंने आत्म साक्षात्कार प्राप्त किया। ज्योतिर्मय चेतना पाकर वे सन्त बन गए, फिर भी वे विनोद–शीलता से परिपूर्ण थे। सर्वसाधारण बाबा विश्व भर के हजारों सहजयोगियों के बाबा–मामा बन गए। वे अत्यन्त आत्मसम्मानशील, ईमानदार एवं विनम्र व्यक्ति थे। ध्यान धारणा द्वारा उन्होंने आयोजन की गतिशीलता प्राप्त की। अचानक उनकी शक्तियाँ प्रकट हुईं और वे एक महान कवि, संगीतकार और भाषाविद् बन गए। सृजनात्मकता के अद्वितीय स्तर पर उनके एक के बाद एक संगीत के एलबम निकले। उनके बिना सहजयोग के कार्यक्रमों का आयोजन असम्भव होता। भारतीय शास्त्रीय संगीत एवं नृत्य को पुनर्जीवन प्रदान करने के लिए श्री माताजी के पथ प्रदर्शन में उन्होंने नागपुर में संगीत संस्थान स्थापित किया। थोड़े से समय में ही विश्व भर से आए सौ से भी अधिक विद्यार्थियों से ये संस्थान भर गया। विद्यार्थियों ने न केवल संगीत में कुशलता प्राप्त की बल्कि रीढ़ की हड्डी के मूल में स्थित प्रेरित करने वाली शक्ति तथा स्त्रोत की गहनता में भी उतरे। सहजयोग के माध्यम से जागृत होकर कुण्डलिनी जब सहस्त्राररन्ध्र को पार करती है तो हमारी प्रतिभाओं का पोषण करके विशिष्टताओं को उभारती है। शिक्षा के थोड़े से समय में ही विदेशी विद्यार्थियों का जटिल भारतीय रागों में महारत हासिल कर लेना वास्तव में आश्र्चजनक है। तब से लेकर बहुत से छात्र अपने क्षेत्र में महान विशारद बन गए हैं। बाबा मामा की आयु क्योंकि ६० के लगभग पहुँच गई थी अत: उन्हें कुछ शारीरिक समस्याएं हो गईं। २८ फरवरी २००० के दिन परम् पूज्य श्री माताजी की कृपा से शान्तिपूर्वक उन्होंने विश्व से प्रयाण किया।

योगी महाजन

लेखक के कुछ शब्द

सर्वप्रथम मैं अंग्रेजी भाषा के विद्वानों एवं भाषाविदों से क्षमा माँगूंगा क्योंकि श्री माताजी की तरह से मेरी भी पूरी शिक्षा–दीक्षा स्थानीय भाषा में हुई। अंग्रेजी हमारे लिए वैकल्पिक विषय था। अत: आलोचकों से मेरी यही प्रार्थना है कि इस दिशा में आलोचना न करके विषय–वस्तु पर ध्यान दें, भाषा की श्रेष्ठता पर नहीं। अन्य सभी त्रुटियों के लिए भी मैं क्षमायाचक हूँ क्योंकि पुस्तक–लेखन में मेरा यह प्रथम प्रयत्न है।

श्री माताजी की दिव्य अभिव्यक्ति से पूर्व के जीवन, विशेष रूप से उनके परिवार के इतिहास, के विषय में जानने की अधिकतर सहजयोगियों की लम्बे समय से इच्छा थी। इस दिशा में प्रयत्न करने में मेरे सम्मुख बहुत सी कठिनाईयाँ आईं, विशेष रूप से परिवार का इतिहास पता लगाने में। अत: कुछ ऐसे भी काल हैं जिन पर प्रकाश नहीं डाला जा सका। पूरी पुस्तक में पाठक की रुचि बनाए रखने का प्रयत्न मैंने किया है और इसीलिए पुस्तक लिखते हुए मैंने कथा–शैली अपनाई है।

आपकी दिलचस्पी बनाए रखने में यदि कहीं मैं असफल हुआ हूँ तो संभवत: मुझे उस घटना से पूर्व के कुछ विवरणों की आवश्यकता होगी जो उपलब्ध न थे।

वर्ष १९९५ में दक्षिण अफ्रीका से सेष (Sesh) अकादमी आई और पुस्तक लिखने के लिए मेरा जीवन दूभर कर दिया। केवल आलस्य के कारण मैं ये पुस्तक न लिख रहा था। इस लक्ष्य को प्राप्त करने में वह प्रेरणा स्रोत थी। इस कार्य को पूरा करने के लिए अपनी पढ़ाई की कीमत पर भी वह मेरे दफ्तर आकर कार्य करती और हर समय लिखते रहने के लिए मुझे विवश करती। यह स्वीकार करने में मुझे गर्व है कि इस पुस्तक को लिखने का आधे से भी अधिक श्रेय सेष को जाता है। उसके पति श्री.मैट (Matt) भी पुस्तक के विषय में अत्यन्त उत्साही थे और अत्यन्त विनम्रतापूर्वक वे हमेशा मुझे स्मरण करवाते कि थोड़े से प्रयत्नों से मैं अपने आलस्य से मुक्त हो सकता हूँ। उन्होंने मुझे अमरीका आने का निमंत्रण भी दिया। इस पुस्तक को पूर्ण करने में उनका भी बहुत बड़ा योगदान है।

डा.राजीव और उनकी सुन्दर पत्नी डॉली को मैं किस प्रकार भूल सकता

हूँ! सहज–विश्व के प्रति मेरे उत्तरदायित्वों के विषय में वे सदा याद दिलाते रहे कि किस प्रकार लोग श्रीमाताजी के जीवन के विषय में जानने के लिए उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे हैं। उन्होंने मुझे मनीला निमंत्रित किया। परन्तु अपनी व्यस्तता के कारण न मैं अमरीका जा पाया न मनीला।

सन्नी भैया, शान्ता ताई और सर सी.पी., जिन्होंने मुझे साक्षात्कार दिए और इस पुस्तक को पूर्ण करने के लिए आवश्यक सूचना प्रदान की, उनका मैं विशेष रूप से धन्यवादी हूँ।

अन्त में मैं ममता और अम्बर का धन्यवादी हूँ जिन्होंने शरारत करने में सेष का स्थान लिया और ये पुस्तक पूर्ण करने में सदा मेरे पीछे लगे रहे। दोनों बड़ी–बड़ी देर तक मेरी बोली हुई इबारतों (Dictations) को लिखते। कभी उन्होंने ये नहीं दर्शाया कि वे थक गए हैं। ये दोनों लड़कियाँ (सेष और ममता) मेरी बेटियों सम हैं परन्तु अपनी बेटियों से भी कभी इतने अटल प्रेम और समर्पण की आशा मैं न करता। ये देखकर अत्यन्त शान्ति होती है कि किस प्रकार श्रीमाताजी ने लोगों को परिवर्तित किया है। उनके भक्त जिस प्रकार से कार्यों में अपना समर्पण दर्शाते हैं उससे श्रीमाताजी के प्रेम की अभिव्यक्ति होती है। मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ तथा इस श्रेणी में आने वाले सभी लोगों को भी। मेरी इस पुस्तक का सम्पादन करने में मैं अपनी पुत्रवधु सुनीता का भी शुक्रगुज़ार हूँ।

इस पुस्तक का विषय क्योंकि श्रीमाताजी की अनकही कहानी है अत: मैंने इस कहानी को वर्ष १९८६ पर छोड़ दिया है। १९८६ के बाद के वर्षो में जो कुछ भी श्रीमाताजी ने सहज के लिए किया या जो भी थोड़ा बहुत योगदान मैंने सहज को दिया वह सभी लोग जानते हैं। अत: पुनरावृत्ति से बचने के लिए (तथा कभी यदि मैंने दूसरी पुस्तक लिखने के विषय में सोचा तो उसकी विषय वस्तु के लिए) मैंने यही उचित समझा कि श्रीमाताजी और उनके परिवार के विषय में वर्ष १९८६ तक ही लिखूं।

मुझे आशा है तथा मेरी यह प्रार्थना है कि यह पुस्तक आपकी आशा–अनुरूप हो तथा आपको वह सब सूचना दे जिसकी इससे आपको आशा है।

अन्त में मैं अपनी पत्नी का धन्यवाद करना चाहूँगा जो मेरे प्रति और पति के रूप में मेरे आवांछित व्यवहार के प्रति सदा सहिष्णु रही।

जून १९९९ सदा सर्वदा आपका

बाबा –मामा

कुछ शब्द पुस्तक के विषय में

यह पुस्तक परम पूज्य माताजी श्री निर्मला देवी की पारिवारिक पृष्ठ भूमि, शैशवकाल, युवावस्था और उनकी राजनीतिक गतिविधियों के विषय में निरन्तर की जाने वाली पूछताछ का परिणाम है।

अत: ये सोचा गया कि उनके परिवार का सदस्य होने के नाते यदि मैं एक पुस्तक लिखूं तो उनकी दिव्य अभिव्यक्ति से पूर्व एवं पश्चात् के जीवन के विषय में सहजयोगियों के सभी प्रश्नों का उत्तर मिल सकता है। अत: इस पुस्तक में श्रीमाताजी का ही मुख्य स्थान है तथा इसमे वर्णित घटनाएं उनके राजनीतिक जीवन तथा धार्मिक गतिविधियों पर आधारित हैं।

यह पुस्तक साल्वे परिवार के यशस्वी स्वभाव पर भी प्रकाश डालती है। साल्वे शब्द आज भी सत्यनिष्ठा, देश के लिए अडोल प्रेम और अन्याय–विरोध का प्रतीक है। निश्चित रूप से यह पुस्तक सहजयोगियों को सन्तुष्ट करेगी और लोगों में सहजयोग की उन्नति का सावधानी पूर्वक अध्ययन करने की दिलचस्पी पैदा करेगी, विशेष रूप से क्योंकि इस पुस्तक की घटनाएं एक प्रत्यक्षदर्शी द्वारा लिखी गई हैं।

अनुक्रमणिका

अध्याय	विषय	पृष्ठ
अध्याय–१	१८८३ से २१ मार्च १९२३	१४
अध्याय–२	१८२३ से १९२७ छिंदवाडा में श्रीमाताजी का शैशवकाल	४८
अध्याय–३	१८२७ से १९३३ बर्तानवी साम्राज्य का आगमन	५३
अध्याय–४	१९३३ से १९४७ श्रीमाताजी के विवाह तक मेरा शैशवकाल	६०
अध्याय–५	१९४७ से १९५५ राष्ट्र का जन्म	९४
अध्याय–६	१९५५ से १९६३	११८
अध्याय–७	१९६३ से १९७०	१३२
अध्याय–८	१९७० से १९८६ श्रीमाताजी का प्रकटीकरण	१४२
अध्याय–९	१९८६ – ब्रह्माण्ड का सृजन	१७०
अध्याय–१०	१९९९ – श्रीमाताजी–मेरी उद्धारक	१८०

अध्याय–१
१८८३ से २१ मार्च १९२३

मेरे पिताजी श्री प्रसादराव का जन्म, मेरे दादाजी की मृत्योपरांत मेरी दादी श्रीमती सखु बाई की कोख से, १५ जुलाई १८८३ को उज्जैन में हुआ। शालिवाहन राजवंश के वंशज मेरे दादाजी श्री केशवराव की मृत्यु मेरे पिताजी के जन्म से दो सप्ताह पूर्व जून माह के मध्य में हो गई थी। मेरे पिताजी ने एक बार युवावस्था में ही मेरे दादाजी के असामयिक एवं दु:खद मृत्यु के विषय में बताया था। कहानी इस प्रकार है :–

अपनी चचेरी बहन (मेरी चाची बुआ दादी) को लेने के लिए मेरे दादाजी राहुरी गए थे; क्योंकि उन्होंने (चचेरी बुआ दादी ने) प्रसूति के समय मेरी दादी की देखभाल करने के लिए आना था। दादाजी राज–परिवार से थे जिनका श्री गाँव में एक किला था, मराठी में इसे वाड़ा कहते हैं। जिस प्रकार मेरी माताजी ने बताया था और श्री माताजी ने इसकी पुष्टि की, मेरे परदादा मराठा राजघराने के वंशज थे (हिन्दू धर्म के अनुसार क्षत्रिय जाति) जिनका श्री गाँव समेत राहुरी क्षेत्र पर शासन था। दक्षिण में उनके साम्राज्य का विस्तार हैदराबाद तक था जहाँ आज भी शालिवाहन राजा की प्रतिमा लगी हुई है। वे सुप्रसिद्ध सातवाहन राजवंश (Satvahan Dynasty) के वंशज थे जो कि चन्द्रगुप्त मौर्य वंश की एक प्रशाखा है। शालिवाहन चित्तौड़गढ़ से आए। एक पुस्तक में वर्णन किया गया है कि शालिवाहन राजा ईसा–मसीह से कश्मीर में मिले।

बभ्रुवाहन भी इन्हीं के एक वंशज थे। उन्होंने विक्रमादित्य को परास्त करके विक्रमादित्य के पंचांग कैलेंडर विक्रमी संवत् के विपरीत शालिवाहन शक नामक पंचांग कैलेंडर का आरम्भ किया। दोनों ही पंचांगों की चाल चन्द्रमा पर आधारित है, सूर्य पर नहीं।

प्रथम शताब्दी में उनका शालिवाह नामक एक पुत्र था। उत्तरी भारत से वे औरंगाबाद के समीप पैठन में आकर बस गए। भयंकर बाढ़ ने जब उनके पैठन महल को नष्ट कर दिया तब श्री शिवाजी महाराज ने उनकी बहादुरी एवं विवेक के सम्मान में न केवल उन्हें सुरक्षा ही प्रदान की परन्तु हमारे इस शालिवाहन

पूर्वज राजा को राहुरी के समीप का क्षेत्र भी भेंट किया। उन्हें शाहनो (Shahnow) कुल नामक उच्च जाति का विशेष दर्जा भी प्रदान किया। उन्होंने श्री गाँव में एक किला बनाया जो अब 'नायकांचे शिंगुने' (Naiakanche Shingune) कहलाता है अर्थात् नायक का शिंगुने। ये नायक राज्य के मोटा बार (Motta Bar) (दरबार के प्रबन्धक) थे। जिन्होंने श्री गाँव से साल्वे परिवार के प्रस्थान के पश्चात् कार्यभार सम्भाला। श्री गाँव को शिंघवे भी कहते थे। अन्य सम्बन्धियों ने भी केशव राव साल्वे की ज़मीन हथिया ली। ऐसा अंग्रेजों के भूमि रिकार्ड में लिखा हुआ है। तीन सौ वर्ष पूर्व उनके वंशजों ने किले के अन्दर श्री सीताराम जी का एक सुन्दर मन्दिर भी बनवाया था। अपने पूर्वजों के पापों के प्रायश्चित के रूप में उस किले में रहने वाले उनके वंशज ने श्रीमाताजी को किले के अन्दर के कुछ कमरे भेंट करने का प्रस्ताव किया है। यहाँ एक बहुत सुन्दर स्थान है जिसे 'सीता नहानी' कहते हैं। यहाँ वनवास काल में सीताजी श्री राम के साथ रहीं थीं। ये सभी स्मारक राजपूत वास्तुकला शैली में बने हुए हैं। श्रीमाताजी ने पुणे के प्रतिष्ठान में इसी वास्तुकला का उपयोग किया है। मुख्य कहानी की ओर वापिस आते हुए, क्योंकि राहुरी रेलवे स्टेशन श्री गाँव से दस किलोमीटर दूर था मेरे दादाजी घोड़े पर सवार होकर रेणुका बाई को लेने सुबह–सवेरे ही चले गए थे। मानसून आरम्भ हो चुकी थी और बारिश होने का भय था। घनघोर घटाओं की चिन्ता न करते हुए वे राहुरी चले गए। वर्षा ऋतु से सुरक्षा की कोई तैयारी नहीं थी। गाड़ी पर रेणुका बाई के न आने से उन्हें निराशा हुई और उन्होंने वापिस आने का निर्णय किया। रास्ते पर मूसलाधार वर्षा होने लगी परन्तु अपनी चचेरी बहन के न आने के कारण वे इतने परेशान थे कि उन्होंने वर्षा से बचने के लिए कोई सुरक्षित स्थान नहीं ढूँढा। आवेश में उन्होंने श्री गाँव और राहुरी के बीच में बहने वाली उफ़नती नदी को पार किया। नदी के दूसरे किनारे पर जहाँ बहुत फिसलन थी, एक खड़ी चट्टान पर चढ़ते हुए वे घोड़े से गिरकर बेहोष हो गए। मेरे पिताजी ने हमें बताया था कि मूसलाधार वर्षा में वे काफी देर तक बेहोष पड़े रहे। परिणामस्वरूप उन्हें निमोनिया हो गया जो घातक साबित हुआ।

मेरे दादाजी की असामयिक मृत्यु की घटना अत्यन्त महाविपत्ति और त्रासदी साबित हुई और मेरी दादीजी की शक्ति परीक्षा का कारण बनी। भारतीय महिला के लिए दुर्घटना में पति की मृत्यु हो जाना भयानक त्रासदी है। सखु बाई

के लिए तो यह दुर्घटना विषेशरूप से कष्टकर थी क्योंकि उनकी गर्भावस्था उन्नत स्थिति में थी। (उन दिनों पारम्परिक भारतीय संस्कृति और रीति–रिवाज़ महिलाओं को बचपन से ही पति का मान–सम्मान सिखाते थे। मेरी दादीजी के लिए भी उनके पति ही उनका संसार थे, उनके पालक थे और उनके संरक्षक थे। अत: वे उन पर पूर्णत: आश्रित थीं।) नि:सन्देह वे अपने स्वर्गीय पति द्वारा छोड़ी गई विशाल सम्पत्ति तथा अन्य सांसारिक मामलों को सम्भालने की स्थिति में न थीं क्योंकि इसका उन्हें कोई अनुभव न था।

फिर भी सखु बाई अत्यन्त बहादुर, निर्भीक और दृढ़निश्चय वाली महिला थीं। उन्होंने अपने सम्मुख आने वाली सभी विपत्तियों का सामना करने का निश्चय किया। हमारी दादी माँ के इन गुणों ने उनके बच्चों के पालन–पोषण में अहम् भूमिका निभाई है और ये गुण उनके नाती–पोतों के रक्त में भी चले गए हैं। अत्यन्त निराश, हतोत्साहित वे पूरी तरह से टूटने ही वाली थीं। वो और भी अधिक परेशान थीं क्योंकि उनकी ससुराल के दूर–दराज के रिश्तेदार उनके विरोध में एक जुट हो गए थे। वे क्योंकि ईसाई थीं, इसलिए ये सम्बन्धी नहीं चाहते थे कि हिन्दू परिवार की पैतृक सम्पत्ति की वे उत्तराधिकारी बनें।

मेरे पिताजी की जन्म कथा के विषय में जानने के लिए अभी हमें रुकना होगा क्योंकि इससे पूर्व यह वर्णन करना प्रासंगिक होगा कि किन हालात में मेरे पूर्वजों ने ईसाई धर्म अपनाया।

मेरे एक महान पूर्वज की एक बहन अपने शैशवकाल में ही विधवा हो गई थी। (उस युग में बालविवाह आम बात थी जिसे हिन्दू समाज स्वीकार करता था) मेरे ये पूर्वज धर्म के मामले में अत्यन्त उदार विचारों वाले व्यक्ति थे। अत: उन दिनों अन्धा–धुंध किए जाने वाले हिन्दू कर्मकाण्डों और रीति–रिवाज़ों को वे स्वीकार न कर सके, विशेषरूप से हिन्दू विधवाओं पर किए जाने वाले अत्याचारों एवं अपराधों के तो वे बिल्कुल खिलाफ़ थे। हिन्दू रीति–रिवाजों के अनुसार विधवा महिलाओं को अपने सिर के बाल मुंडवाने पड़ते थे। विधवा महिला को सफेद साड़ी पहननी पड़ती थी तथा सिर ढकना होता था। किसी भी उत्सव में भाग लेना उसके लिए वर्जित होता था क्योंकि उसकी उपस्थिति को यहाँ तक अमंगलमय माना जाता था कि लोग मानते थे कि उनकी परछाई भी

किसी पर नहीं पड़नी चाहिए। दण्ड के रूप में विधवा महिला पुनर्विवाह नहीं कर सकती थी, और उसे एकान्त और अकेलेपन का जीवन व्यतीत करने के लिए विवश किया जाता था। मेरे उन महान पूर्वज की बहन पर हिन्दू रीति–रिवाजों के नाम पर हिन्दू पण्डितों ने जो अत्याचार किए वे अत्यन्त दु:खद एवं खेदजनक थे तथा उनकी सहनशक्ति से परे थे। ये सब रीति–रिवाज उनकी मानवीय गरिमा, मूल्यों और आदर्शों का सम्मान करने वाली सूझ–बूझ के विपरीत थे। इन मानवीय मूल्यों का उनकी दृष्टि में बहुत सम्मान था। उनकी बहन के कष्ट उनके लिए अत्यन्त असहनीय होते चले गए। हिन्दू समाज इसे विधवा के पापों का दण्ड मानता था और विधवा महिला को अपने पति का जीवन लेने के लिए अपराधी मानता था। इसके विपरीत पति यदि विधुर हो जाए तो उसे पुनर्विवाह का पूर्ण अधिकार था। हिन्दू समाज उसकी भर्त्सना नहीं करता और न ही कभी उसे पत्नी की मृत्यु के लिए दोषी ठहराया जाता है। आज भी दूर–दराज के गाँवों में यह भेदभाव प्रचलित है।

क्योंकि ये सब कुकृत्य धर्म के नाम पर किए जाते थे, इन्होंने मेरे पूर्वज को विद्रोह के लिए विवश किया। पण्डितों और समाज के बुजुर्गों ने उनकी किसी भी प्रार्थना पर कान नहीं दिए। युगों की प्राचीन परम्पराओं और पुजारियों के भय के कारण लोगों के मस्तिष्क बन्द हो चुके थे। पंडितों के शब्दों को पावन मानकर उनके विषय में बिना कोई प्रश्न किये, बिना विवेक और तर्कबुद्धि का उपयोग किए, आँखें बन्द करके स्वीकार किया जाता था।

एक दिन इस विधवा महिला को मंदिर ले जा रहे थे। उसने अपना सिर नहीं मुंडवाया था इसलिए उसके सम्बन्धियों ने मार्ग पर ही उस पर पत्थर फेंकने आरम्भ कर दिए। वह छोटी सी लड़की मूर्छित हो गई और उसका भाई उठाकर उसे अपने किले तक लाया। परन्तु वही सम्बन्धी उनसे पूर्व किले में प्रवेश कर चुके थे और उन्होंने उनके सम्मुख किले का द्वार नहीं खोला। विवश होकर वह अपनी बहन को किले के बाहर स्थित एक अन्य बहुत बड़े घर में ले आया। वह घर आज भी 'साल्वे वाड़ा' के नाम से प्रसिद्ध है।

मेरे उस पूर्वज ने जब देखा कि बालविधवा को सताने वाली अन्धविश्वास की कठोर दीवार से वे अपना सिर फोड़ रहे हैं तो उन्होंने ऐसा धर्म

छोड़कर ईसाई धर्म अपनाने का निर्णय किया। उन्होंने इस्लाम धर्म नहीं अपनाया क्योंकि वो लोग तो अपनी महिलाओं के साथ हिन्दुओं से भी बुरा व्यवहार करते हैं। उनके दूर के बहुत से सम्बन्धी हिन्दू थे जिन्होंने ईसाई धर्म अपनाने के लिये उनकी भर्त्सना की। वो धर्म परिवर्तन के पश्चात् भी अपनी सम्पत्ति के स्वामी बने रहे। अपनी बहन का विवाह उन्होंने एक अन्य ब्राह्मण लड़के से कर दिया जो कि पहले से ही ईसाई धर्म अपना चुका था। मेरे दादाजी ईसाई बने इस परिवार के थे। मेरे पिताजी के जन्म की कहानी आगे इस प्रकार है। मेरे दादाजी के तुरन्त उपरान्त उनके भाईयों तथा सम्बन्धियों ने उस सम्पत्ति के विषय में समस्याएं खड़ी करनी आरम्भ कर दीं जो वे छोड़कर गए थे और जिन पर उत्तराधिकारी के रूप में सखु बाई और उनके बच्चों का अधिकार था। कहा जाता है कि इन सम्बन्धियों ने पिता विहीन परिवार के दूध में ज़हर मिलाने का प्रयत्न किया। परन्तु सौभाग्यवश सखु बाई को इसका पता चल गया क्योंकि एक बिल्ली इस दूध को पीकर मर गई थी। इस घटना ने सखु बाई को शीघ्रातिशीघ्र वाड़ा छोड़कर चले जाने का निर्णय लेने के लिए विवश कर दिया। मानसून जोरों पर थी और सभी नदियों में बाढ़ आई हुई थी। सखु बाई जानती थी कि यहाँ से अपने प्रस्थान में यदि उसने अधिक देर की तो यह उसकी तथा उसके बच्चों की सुरक्षा के मामले में घातक हो सकता है। उसे यदि ये कार्य करना है तो बिना किसी देर के तुरन्त किया जाना चाहिए। सभी विपदाएं उनके सम्मुख मुँह बाँधे खड़ी थीं। उनके ससुराल वालों का भयावह दृष्टिकोण, तूफानी मौसम, मूसलाधार वर्षा और बाढ़ ग्रस्त नदियाँ। केवल इतना ही नहीं, उन्हें रेलगाड़ियों का भी कोई ज्ञान न था और न ही उनके पास कोई साधन था जिसके माध्यम से वे रेलगाड़ियों या यातायात के किसी अन्य साधन का पता लगा पातीं। इन हालात में पाँच बच्चों के साथ गर्भावस्था में बाढ़ ग्रस्त नदी को पार करने का प्रयत्न तो कल्पना से भी परे था और वास्तव में घातक था। परन्तु वे अत्यन्त धार्मिक व्यक्ति थीं जिन्हें परमात्मा पर अगाध विश्वास था। अत्यन्त आशावादी होने के साथ–साथ मुकाबला करने की भावना भी उनमें पूरी–पूरी थी।

तो एक रात को जब वर्षा हो रही थी और पूरा गाँव सोया हुआ था उन्होंने जो कुछ भी वो साथ ले जा सकती थीं, भले दिनों में एकत्र किया हुआ पैसा, कुछ गहनें आदि, उठाया और किले से बाहर स्थित साल्वे वाड़ा में चली गईं। ये

सुनिश्चित करके की कोई उन्हें देख नहीं रहा है अत्यन्त शान्ति पूर्वक अपने पाँचों बच्चों को साथ लेकर वे घर से खिसक गईं। अपना सारा सामान उन्होंने अपनी पीठ पर बांधा हुआ था। हल्की–हल्की वर्षा हो रही थी परन्तु बच निकलने के लिये ये काफ़ी थी क्योंकि सभी लोग अपने घरों में बन्द थे, और अत्यन्त शान्ति पूर्वक वे नदी की ओर चल पड़ीं। पानी की आवाज से उन्होंने अंदाजा लगाया कि बहाव बहुत तेज़ है। शुरु से वे प्राय: नदी पर आती जाती रहती थीं और इसलिए उन्हें नदी के किनारों का भौगोलिक ज्ञान काफी अच्छा था। रुक–रुक कर बिजली का चमकना परेशानी का कारण था क्योंकि चमक के बाद बादलों की गर्जन से छोटे–छोटे बच्चे डरते थे। परन्तु एक–दो क्षणों तक चलने वाली बिजली की चमक उन्हें स्थिति का अन्दाजा लगाने का प्रकाश प्रदान कर देती थी और इस प्रकार अन्धेरे में वे आगे बढ़ती गईं। शनै:शनै: अपने बच्चों के साथ वे एक ऐसे स्थान पर पहुँच गईं जहाँ वे जानती थीं कि नदी की गहराई बहुत कम है तथा दोनों किनारों की दूरी भी संकीर्ण है।

परमात्मा से प्रार्थना करते हुए उन्होंने अपनी दो बेटियों के हाथ पकड़े और दो बेटों के हाथ अपने बड़े बेटे सोलोमन के हाथ में पकड़ा दिए ताकि उन्हें नदी पार कराई जा सके। उस समय सोलोमन ग्यारह–बारह साल का हृश्ट–पुश्ट लड़का था और बहुत अच्छा तैराक भी था। वास्तव में उसके शरीर की बनावट पहलवान जैसी थी। उसका शरीर असाधारण था और उसमें अपने हाथों तथा कन्धों में काफी वज़न उठाने की शक्ति थी। तो मेरे दो छोटे चाचाओं की देखभाल का भार सोलोमन ने अपने हाथ में लिया तथा मेरी दो बुआओं के हाथ कसकर अपने हाथ में पकड़कर सखु बाई ने धीरे–धीरे नदी में प्रवेश किया।

उन्होंने पहले से ही ये आशा की थी कि वे बिना किसी कठिनाई के नदी को पार कर लेंगे, विशेष रूप से जब उनका बेटा सोलोमन उनके साथ था। परन्तु नदी के मध्य में जब वो पहुँचीं तो उन्होंने महसूस किया कि बहाव बहुत तेज़ था और उनके पैरों के नीचे से रेत खिसक रही है। तब उन्होंने सोलोमन को बुलाया और अपनी दोनों बेटियों का हाथ उसके हाथ में देकर दोनों छोटे बेटों को तैरकर नदी पार करने के लिए कह दिया। नदी की तेज धारा में वे स्वयं भी तैरने लगीं। इस कार्य के लिए उन्हें अपना पूरा साहस और पूरी शक्ति बटोरनी पड़ी क्योंकि वो जानती थीं कि कोई और मार्ग नहीं है। छोटे भाईयों को तैरने की

आज्ञा देने के भयानक परिणाम को सोलोमन ने देख लिया और उन्हें अपने कन्धों पर बिठा लिया तथा अपनी छोटी बहनों के हाथ कसकर पकड़ लिए और पक्के कदमों से नदी पार करने लगा। सखु बाई यद्यपि कुशल तैराक न थीं फिर भी वो तैरती ही रहीं। जो थोड़ी सी तैराकी वो जानती थीं उसमें भी उनकी नौ गज लम्बी साड़ी बाधा बन रही थी। फिर भी अपने सभी विकल्पों को देखते हुए (जो कि डूबने के अतिरिक्त कुछ भी न था) उन्होंने तैराकी की अपनी सीमित प्रतिभा में अपनी पूरी शक्ति जोड़ दी।

आवाह–क्षेत्र में रुक–रुक कर होने वाली वर्षा बहुत बढ़ गई थी और सखु बाई जल प्रवाह में फंस गईं, नदी के बहाव के साथ वे बहने लगीं। जैसा मैंने पहले बताया है उनकी अदम्य इच्छा शक्ति और साहस ने उन्हें नदी के दूसरे किनारे तक पहुँचने की शक्ति प्रदान की, यद्यपि कुछ दूरी तक तो वो नदी की धारा में बह गई थीं। इतने में अपने दृढ़ निश्चय और पराक्रम के कारण सोलोमन ने भी सुरक्षापूर्वक नदी की तेज धारा को पार करने के असम्भव कार्य को करने के पश्चात् सखु बाई ने अपने सभी बच्चों का कुशल क्षेम पूछा। इसके बाद उन्होंने पीठ पर बंधे हुए अपने सामान को सम्भाला और उसे सही सलामत पाकर उसे बहुत संतोष हुआ यद्यपि सारा सामान भीग गया था। अब एक अन्य कठिन कार्य उनके सम्मुख था–स्वयं तथा अपने परिवार को रेलवे स्टेशन तक ले जाना क्योंकि नदी के किनारे से रेलवे स्टेशन आठ–दस किलोमीटर की दूरी पर था। परन्तु जो बाधा उन्होंने पार कर ली थी उसके मुकाबले में वर्षा और कीचड़ में आठ–दस किलोमीटर की यात्रा मामूली सैर की तरह से प्रतीत हुई।

पूरी तरह भीगे हुए वे और उनके बच्चे अंततः स्टेशन पहुँच गए। उनके पास सूखे कपड़े न थे इसलिए आग जलाकर वे सब सिकुड़कर बैठ गए और गाड़ी की प्रतीक्षा करने लगे।

आज जब मैं अन्तर्वलोकन द्वारा उन्हें देखता हूँ तो मेरे अन्दर मेरी दादी माँ की जो मूर्ति उभरती है उसके अनुसार वे साहस से परिपूर्ण, श्रेष्ठ व्यक्तित्व की महिला थीं जिनमें अन्याय के विरुद्ध युद्ध करने के दृढ़ विश्वास की शक्ति थी। उनमें एक ओर तो गहन पराक्रम तथा साहस था और दूसरी ओर वे अपने बच्चों तथा अन्य लोगों के प्रति प्रेम एवं सुहृदयता से परिपूर्ण थीं। उनके ये गुण उनके बच्चों के लिए प्रेरणा का स्रोत हैं। इस बात पर मैं विशेष रूप से इसलिए बल

दे रहा हूँ कि ये गुण उनके माध्यम से उनके बच्चों और नाती–पोतों में प्रवेश कर गए हैं और इनमें श्रीमाताजी का स्थान विशेष है।

उन दिनों केवल एक रेलगाड़ी राहुरी को मनमाढ़ से जोड़ती थी। अवसर की बात है कि उस दिन ये रेलगाड़ी देर से चल रही थी। इस बात ने सखु बाई को चिन्तित कर दिया क्योंकि उष:काल होते ही उसके ससुराल वालों द्वारा उनकी खोज करने की पूरी सम्भावना थी। पूर्व से आकाश का रंग लालिमा में परिवर्तित हो रहा था जो दर्शाता था कि सूर्योदय दूर नहीं है और वर्षा भी रुक चुकी थी। सखु बाई ने प्रार्थना करते हुए अपनी आँखें बन्द कर लीं, सर्वशक्तिमान परमात्मा से प्रार्थना की और रेलगाड़ी की प्रतीक्षा करने लगीं। ज्यों ही उन्होंने आँखें खोलीं, दो चीज़ें एक साथ घटित हुईं : प्रथम, उन्हें रेलगाड़ी की आने की घोषणा करने की घंटी सुनाई दी और दूसरे निकलते हुए सूर्य के उन्होंने दर्शन किए। इसके तुरन्त पश्चात् रेलगाड़ी पहुँची। बच्चों समेत वो इस रेलगाड़ी में चढ़ गईं और बिना कोई देर किये रेलगाड़ी राहुरी से चल पड़ी।

सर्वप्रथम वह मनमाढ़ पहुँचीं। उनके पति के मित्र श्री.चात्रे मनमाढ़ में रहते थे और सखु बाई को उनका पता याद था। इसके पश्चात् वे अपने भाई के यहाँ उज्ज़ैन गईं। उज्ज़ैन में इन कठिन परिस्थितियों में १५ जुलाई १८८३ को मेरे पिताजी का जन्म हुआ। वर्षा ऋतु की इस प्रात: सामान्य रूप से इस बच्चे ने जन्म लिया। इस शिशु का रंग गोरा और चमकती हुई काली आँखें थी तथा उनकी तेजोमय सुन्दर मुखाकृति थी।

यह बात स्पष्ट नहीं है कि उनके भाई का जीविकार्जन का साधन क्या था परन्तु आत्म सम्मान से पूर्ण मेरी दादी ने एक विधवा बहन और उसके पाँच बच्चों का भार उन पर डाल देने को अच्छा नहीं समझा। उनके भाई ने उनका परिचय एक अंग्रेज धर्म प्रचारक श्री.विल्के से कराया। श्री.विल्के इन्दौर में रहते थे और उज्ज़ैन के पड़ोस में स्थित इन्दौर शहर के ईसाई मिशन के वरिष्ठ अधिकारी थे।

उनकी कहानी सुनकर उनके भाई से लम्बे परिचय के कारण श्री.विल्के ने मेरी दादी की सहायता के रूप उन्हें बाइबल महिला (Bible Woman) की नौकरी दे दी। इस नौकरी का अर्थ ये था कि उन्हें इन्दौर के आस–पास दूर–दराज के गाँवों में रहने वाले ईसाईयों के घरों में जाकर उन्हें भी बाइबल की

प्रतियाँ बेचनी होती थी, जिससे उन्हें कमीशन मिलती थी। बताया जाता है कि एक बाइबल बेचने की उन्हें चार आने (चौथाई रुपया) कमीशन की पेशकश की गई। एक अन्य सुविधा जो उन्हें दी गई वह थी चर्च के अहाते में ही रहने के लिए नि:शुल्क निवास स्थान उन्हें दिया गया। सखु बाई मूलत: आशावादी थी। यद्यपि बाइबल महिला के रूप में होने वाली आय उन्हें बहुत कम प्रतीत हुई फिर भी उन्होंने ये नौकरी स्वीकार कर ली। स्वाभिमानी होने के कारण वे किसी पर बोझ न बनना चाहती थीं। उनके पास अपने गहने भी थे जिन्हें वे समय–समय पर बेचती रहीं।

ऐसी स्थिति को स्वीकार करने का अर्थ अपनी जीवन शैली से समझौता करना था, जैसे एक शासक की पत्नी होने के कारण अपने शाही और गरिमामय जीवन का त्याग करना। भव्य भवनों में रहने की आदी, उन्हें एक कमरे की चाल में रहने के लिए विवश होना पड़ा। वर्तमान जीवन की वास्तविकता का उन्हें ज्ञान था, इसलिए अपनी पूर्व शानों–शौकत को उन्होंने दिमाग से निकाल दिया।

बाइबल महिला के रूप में उन्हें स्थान–स्थान पर जाना होता था। क्योंकि अन्य सभी बच्चों ने पाठशाला जाना होता था इसलिए मेरे नन्हें पिता की देखभाल करने वाला कोई न था। जब–जब भी उन्हें इन्दौर से बाहर दूर–दराज के गाँवों में जाना होता तो वे मेरे पिता को अपने भाई के पास छोड़कर जातीं या रेणुका बाई के पास। इस तरह से उन्होंने नया जीवन आरम्भ किया। बाइबल विक्रय से होने वाली आय अनियमित थी और बहुत ही कम थी। परन्तु उन्होंने अपने बच्चों को उपलब्ध साधनों में ही अत्यन्त मितव्ययता एवं कठोरता पूर्वक रहना सिखाया। श्रीमाताजी भी अत्यन्त मितव्ययी एवं सादी हैं। वे पटरी पर सो सकती हैं या जंगलों में रह सकती हैं परन्तु अन्य सभी लोगों की सुख सुविधा की वे हमेशा चिन्ता करती हैं। मेरे बड़े चाचा सोलोमन अपनी माँ की मुसीबतों को अनुभव कर रहे थे। उनके सामने शानदार विद्वता पूर्ण भविष्य था जो उन्हें अत्यन्त सफल जीवन प्रदान करता। परन्तु अपना भविष्य बनाने में लगा रहना अपनी माँ के कष्टों तथा संघर्ष के प्रति आँखें बन्द करना होता। उनका चरित्र ऐसा न था। उनके सम्मुख अपनी पढ़ाई छोड़कर माँ की सहायता करने का विकल्प था और उन्होंने ऐसा ही किया।

एक दिन साहस करके उन्होंने अपना निर्णय माँ को बता दिया। जिम्मेदारी की उनकी गहन संवेदना को तथा परिवार की चिन्ता को देखकर सखु बाई अत्यन्त प्रभावित हुईं। परन्तु उस समय तक क्योंकि वे मैट्रिक भी पास न कर पाए थे, सखु बाई ने उन्हें पढ़ाई छोड़ने का निर्णय न करने के लिए राज़ी कर लिया, जब तक वे मैट्रिक पास नहीं कर लेते। उनके मन में अपने सभी बच्चों को शिक्षा देने की दृढ़ इच्छा थी। परन्तु इस इच्छा को पूर्ण करने के लिए उनके पास साधन न थे। वे जानती थीं कि उनके सारे बच्चे अत्यन्त बुद्धिमान एवं होनहार हैं, इसलिए वे उन्हें शिक्षित करना चाहती थीं विशेष रूप से अपने लड़कों को। दिन बीतते गए परन्तु उनकी आय सीमित रही और खर्चे बढ़ते चले गए। उनका सबसे छोटा बेटा प्रसाद अभी बढ़ रहा था और उसकी अपनी आवश्यकताएं थीं। इसलिए यह आवश्यक हो गया कि सोलोमन कोई ऐसी नौकरी कर ले जहाँ वह अपनी पढ़ाई को भी चालू रख सके और कुछ धन भी कमा ले।

सखु बाई मिशन के अहाते में रहती थीं और सदा अपने बच्चों के साथ चर्च जाती थीं। एक रविवार घण्टी बजाने वाला चपरासी नहीं आया और पादरी किसी सुदृढ़ पुरुष को खोज रहा था जो चर्च की छत पर विशाल घण्टी को बजा सके। सोलोमन ने, जो कि अत्यन्त तगड़े थे, घण्टी बजाने की पेशकश की और उसने इतनी लय पूर्वक और पूर्ण शक्ति से घण्टी बजाई कि धर्म प्रचारक श्री.विल्के ने पाँच रुपये के सुन्दर वेतन पर हर रविवार को चर्च का घण्टा बजाने की नौकरी उसे दे दी।

इस प्रकार सोलोमन का जीवन आरम्भ हुआ। उसका निस्वार्थ और बलिदानमय चरित्र भविष्य में उनके छोटे भाई–बहनों के जीवन को दिशा देने में अत्यन्त सहायक हुआ। रविवार की नौकरी उनके लिए अत्यन्त उपयुक्त साबित हुई क्योंकि इससे उसके स्कूल की पढ़ाई लिखाई पर तथा परिवार की मान–मर्यादा पर कोई दुष्प्रभाव न पड़ता था क्योंकि वह चर्च की सेवा कर रहा था।

पाँच रुपये महीना कोई बहुत बड़ा वेतन न था परन्तु इसका सखु बाई पर महत्वपूर्ण अन्तर पड़ा क्योंकि उनकी अपनी आय अत्यन्त अनियमित थी और इस बात पर निर्भर थी कि वे कितनी बाइबल बेचती हैं, परन्तु सोलोमन की आय

नियमित थी और विश्वस्त थी। इससे वे कम से कम अपना महीने का राशन तो खरीद सकती थीं। मेरी माँ ने मुझे एक बार बताया था कि उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में चावल एक रुपये के दस कुदव (सात किलो) होते थे अर्थात् एक रुपये में आप सात किलो चावल खरीद सकते थे और गेहूँ एक रुपये की सात उदव मिलती थी। इस प्रकार दो रुपये में पूरे महीने के लिए गेहूँ और चावल खरीदे जा सकते थे। अत: पाँच रुपये की उनके लिए बहुत अहमियत थी और इसने उन्हें आर्थिक सुरक्षा प्रदान की। अपने पति के समय से ही वे इस आर्थिक सुरक्षा की आदी थीं। एक-एक करके अपने गहने जो वो बेच रही थीं कुछ सीमा तक उनका बिकना भी रुक गया।

प्रसाद राव भी बड़े हो रहे थे और बचपन से ही अपनी माँ की सहायता किया करते थे। चार वर्ष की आयु में तो वे अपने घर के छोटे-छोटे कार्य करने लगे और इस प्रकार वे अपनी माँ के सहायक बन गए। वे उनके साथ बाहर जाने की ज़िद करते विशेष रूप से जब वे इन्दौर से बाहर जातीं। आरम्भ में तो सखु बाई ने उनके साथ चलने पर कोई एतराज़ नहीं किया परन्तु आयु के बढ़ने के साथ-साथ उन्होंने उन्हें घर के छोटे-छोटे कार्यों की जिम्मेदारी लेने के बहाने से घर पर ही छोड़ना आरम्भ किया। वास्तव में वो चाहती थीं कि प्रसाद राव स्वतन्त्र और आत्मनिर्भर बने क्योंकि यदि वे उन पर निर्भर रहते तो यह उनके भविष्य के लिए अच्छा न होता। इस आरम्भिक शिक्षा ने मेरे पिताजी के भविश्य के जीवन में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

अपनी माँ पर उनके अगाध विश्वास की एक कहानी मेरे पिताजी ने मुझे सुनाई थी। एक दिन सारा परिवार समीप की नदी पर छोटी सी पिकनिक के लिए गया। मेरे सारे चाचा कुशल तैराक थे। नदी में कूद कर वे सब तैरने लगे। मेरे पिताजी जो अभी केवल पाँच या छ: वर्ष के थे, स्वाभाविक रूप से नदी के समीप जाने से डरते थे क्योंकि अभी उन्हें तैरना न आता था। अपने बड़े भाईयों के विश्वास दिलाने के बावजूद भी उन्होंने पानी के समीप आने का साहस न किया।

उसके अन्दर भय की भावना देखकर सखु बाई ने उसे कहा, '' अपने भाइयों के साथ जाओ और तैरना सीखो।'' प्रसाद राव को डूबने का भय न था परन्तु उन्होंने तैरने के लिए अपनी असमर्थता प्रकट की। सखु बाई बहुत दृढ़ थी और उन्होंने उसे कहा कि 'नदी में जाओ' और उसे विश्वास दिलाया कि उसके

भाई उसके साथ हैं। उनके विश्वास दिलाने पर, नि:सन्देह उनमें साहस आया, परन्तु सर्वप्रथम उन्होंने कम गहरे पानी में जाने का ही साहस किया और पानी से खेलने लगे। अचानक उनके बड़े भाई सोलोमन ने उन्हें उठा लिया और नदी की मुख्य धारा में ले गए और वहाँ उन्हें पानी में छोड़ दिया। प्रसाद राव पानी के नीचे चले गए और हवा की कमी के कारण उनकी साँस रुकने लगी, परन्तु उनकी माँ के दिलाए गए विश्वास, उनके अपने साहस और जीने की स्वाभाविक इच्छा ने आलस्य को भगा दिया और वे हाथ-पैर मारने लगे। पानी में जब वे ऊपर आए तो हैरानी से उन्होंने देखा कि उनके भाई नदी की धारा में कुछ दूरी पर खड़े हुए थे। किनारे पर खड़ी सखु बाई ने उनसे कहा कि अपना पूरा जोर लगाकर वह तैरने का प्रयत्न करे। माँ के ये शब्द उनके लिए प्रेरणा का स्रोत थे और अपने भाईयों की शैली में ही वे अपने बाजू और टांगें पानी में चलाने लगे। इस प्रकार उन्हें तैराकी का पहला पाठ मिला। बाद में वे विजेता तैराक बने।

तैराकी उनके लिए एक नशा बन गई। अपने आप वो चले जाते, मौका मिलते ही नदी पर पहुँच जाते। यहाँ तक कि स्नान के लिए भी वो नदी पर चले जाते। परन्तु सखु बाई उन्हें चेतावनी देती कि किसी भी चीज़ की उन्हें लत नहीं पड़नी चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि वे उस आदत के दास बन जाएं।

सखु बाई की शिक्षा ऐसी थी। इसके परिणाम स्वरूप उनके सभी बच्चे स्वतंत्र थे परन्तु उन्होंने कभी भी अनुशासन की मर्यादाएं नहीं लांघी और न ही सखु बाई की दी हुई शिक्षा का उल्लंघन किया। सखु बाई ने उन्हें अन्याय से लड़ना सिखाया चाहे वो किसी भी प्रकार का हो। उनका दृढ़ विश्वास था कि अन्याय को सहन करना कायरता है और वो नहीं चाहती थीं कि उनके बच्चे कायर बनें। अपने बच्चों को उन्होंने ईमानदारी का मूल्य सिखाया। उन्होंने अपने बच्चों को बताया कि अटल ईमानदारी परम-नियम है, प्रासंगिक-नियम (Relative Term) नहीं। व्यक्ति या तो पूर्णत: ईमानदार हो सकता है या पूर्णत: बेईमान। उन्होंने बताया कि ईमानदारी उन्हें बहादुर और साहसिक बनाएगी और आत्मविश्वास के साथ कठिनाइयों का सामना करने की शक्ति प्रदान करेगी। ईमानदारी के मामले में सखु बाई ने कभी समझौता नहीं किया। वे सदा कहती थीं कि बेईमान होना सबसे बड़ा पाप है। उनकी ये शिक्षा उनके सभी बच्चों के मस्तिष्क पर पूर्णत: अंकित हो गई। भयंकर गरीबी में जिस प्रकार वो जीवन

बिता रही थीं इस प्रकार की शिक्षा उनके बच्चों का चरित्र बनाने में बहुत महत्वपूर्ण थी।

कुशाग्रता, ईमानदारी, कार्य के प्रति समर्पण, अन्याय से लड़ने के लिए सदैव तैयार रहना और मानवीय गरिमा का सम्मान, सभी बच्चों के चारित्रिक गुण बन गए। सभी बच्चे अत्यन्त प्रेममय एवं आज्ञाकारी भी थे। प्रसाद राव के लिए उनकी माँ न केवल आदर्श थीं परन्तु उनके लिए प्रेरणा का स्रोत भी थीं। जो भी कुछ वो कहती थीं या जिस भी बात की वे सलाह देती थीं वह उनके लिए अलंघनीय थी।

समय बीतता गया, प्रसाद राव मिशन स्कूल में जाने लगे। आरम्भिक दिनों से ही स्कूल में विद्यार्थी के रूप में वे अपनी योग्यता दर्शाने लगे थे। वे केवल कक्षा में प्रथम ही नहीं आते थे, वास्तव में अन्य बच्चों से बहुत आगे थे और उच्च कक्षाओं में पढ़ाए जाने वाले विषयों पर अधिकार पूर्वक बात–चीत करते। वे अतृप्य पाठक थे और उनकी स्मरण शक्ति अत्यन्त तीव्र थी। वे गहन बारीकियों में जाते और विषय का सारतत्व उनसे न बच पाता। श्रीमाताजी में भी ये विशिष्ट गुण हैं। उन्होंने विषय के रूप में कभी हिन्दी या अंग्रेजी नहीं पढ़ी। परन्तु अपनी पढ़ने की आदत के कारण उन्होंने दोनों ही भाषाओं पर निपुणता प्राप्त कर ली है। उनमें भी तीव्र स्मरण शक्ति है और गहन चिन्तन शक्ति है।

वास्तव में मेरे पिताजी स्वयं अपने गुरु थे और उन्हें अपनी पढ़ाई लिखाई में किसी अन्य से सहायता की आवश्यकता न थी। जिस प्रकार खेलों में उनकी रुचि थी वैसे ही पढ़ाई लिखाई में भी उनकी दिलचस्पी थी। विषय में उनकी सूझ–बूझ इतनी अच्छी थी कि वे न केवल अपने सहपाठियों की कठिनाई में सहायता करते परन्तु अपने से उच्च कक्षाओं के लड़कों की भी वे सहायता करते।

परन्तु उनकी शिक्षा प्राप्त करने में बहुत सी समस्याएं एवं कठिनाईयाँ भी थीं। सबसे बड़ी समस्या परिवार की गरीबी थी। मिट्टी का तेल क्योंकि बहुत महँगा था या, उन्होंने ऐसा समझा, रात को पढ़ाई के लिए देर तक लैम्प जलाने का खर्च उठाने का सामर्थ्य उनमें न था। परिणाम स्वरूप रात्रि को नौ बजे के बाद वे बाहर जाते और गली के लैम्प के प्रकाश में अपनी पढ़ाई करते। नियम के अनुसार रात को खाने के पश्चात् घर की बत्तियां बुझा दी जाती थीं। इसलिए

प्रसाद राव को या तो गली के लैम्प के नीचे जाना पड़ता या किसी मित्र के यहाँ जो मिट्टी के तेल के ऐश्वर्य का खर्च वहन कर पाता था।

मुझे याद है कि एक बार वे गली के लैम्प के नीचे बैठकर पढ़ाई करने की अपनी कहानी अपने बच्चों को सुना रहे थे। मेरे बड़े भाई ने उनसे पूछा कि उन्हें इतना अधिक पढ़ने की आवश्यकता ही क्यों थी, वे तो अत्यन्त प्रतिभाशाली थे। उन्होंने कहा कि उन्हें पढ़ना ही पढ़ना था, इसके अतिरिक्त उनके पास कोई विकल्प न था क्योंकि उन्हें छात्रवृत्ति मिलती थी जिसके लिए आवश्यक था कि वे अपनी कक्षा में अव्वल रहें। छात्रवृत्ति का समाप्त हो जाना उनके परिवार के लिये हानिकर था और उन्हें यह भय था कि ऐसी स्थिति में उन्हें अपनी पढ़ाई छोड़ने पर विवश होना पड़ सकता है। किसी भी कीमत पर वो ऐसा न करना चाहते थे। केवल अपनी प्रतिभा और ज्ञान के प्रति न्याय करने के लिए ही नहीं, परन्तु इसलिए भी वे पढ़ना चाहते थे कि वो इस बात के लिए विश्वस्त कर सकें कि परिवार द्वारा किये गये बलिदान, विशेष रूप से सखु बाई तथा उनके बड़े भाई द्वारा किये गये बलिदान व्यर्थ न चले जायें। इसलिए कभी उन्होंने अपनी पढ़ाई के मामले में समझौता नहीं किया, तथा इसलिए छुट्टियों में भी वे पढ़ाई में लगे रहते थे।

इस प्रकार परिवार कठोर परिस्थितियों में जीवनयापन करता रहा और प्रसाद राव वर्ष के बाद वर्ष अपनी कक्षा में अव्वल आते रहे। उनके बड़े भाई डेविड और डेविड से बड़े शान्तवन ने भी अपनी पढ़ाई चालू रखी। परन्तु सोलोमन को मैट्रिक के बाद अपनी पढ़ाई छोड़नी पड़ी और कुछ छोटी आरम्भिक नौकरियों के पश्चात् छिंदवाड़ा के डेनियलसन (Danielson) मिडल स्कूल में उन्हें अध्यापक का पद प्राप्त हो गया। सम्माननीय सी.डी.जाधव (C.D.Jadhava), जो मेरे पिताजी की दूसरी बहन शान्ताबाई से विवाहित थे, छिंदवाड़ा लूथेरियन चर्च के प्रतिभारी थे और उनका छिंदवाड़ा के मिशनरियों पर काफी प्रभाव था। वह ऊँचे दर्जे के कवि थे और हिन्दी में भजन तथा हिम्स (Hymns) लिखा करते थे जिन्हें हिन्दी चर्चों में गाया जाता था। सम्माननीय जाधव ने सोलोमन चाचा को लिखा कि डेनियल सन् मिडल स्कूल में एक पद खाली है और वो योग्य उम्मीदवार खोज रहे हैं। आरम्भ में सोलोमन को अध्यापक के पद के लिए चुना गया और बाद में स्कूल का मुख्याध्यापक बना

दिया गया। वेतन बहुत अधिक न था परन्तु ये निश्चित आय थी और सखु बाई के लिये यह बहुत बड़ी सहायता साबित हुई। सोलोमन हर महीने अपने खर्चे घटाकर अत्यन्त मितव्ययता पूर्वक जीवन यापन करते हुए अपनी माँ को पैसे भेजते। छोटे भाईयों पर उसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। कुछ वर्षों के पश्चात् शान्तवन राव ने भी मैट्रिक की परीक्षा पास कर ली और उन्हें भी उसी स्कूल में एक पद दे दिया गया जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया।

सोलोमन का विवाह शिवांतीबाई संसारे (Shevanti Bai Saunsare) से हो गया। कुछ समय पश्चात् शान्तवन राव का भी विवाह हो गया। उन्होंने शिवांतीबाई की छोटी बहन प्रेमाबाई संसारे से विवाह किया। परन्तु मेरे पिताजी प्रसादराव और उनके बड़े भाई डेविड ने अपनी शिक्षा को इन्दौर में चालू रखा। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए वे इंदौर चले गये थे। अपने भाईयों से मिलने के लिए प्राय: वे छिंदवाड़ा जाया करते थे। परस्पर सम्मान व प्रेम का बन्धन इस परिवार का महत्वपूर्ण गुण था। साल्वे पारिवारिक वृक्ष के विकास में इस गुण की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

सभी भाई बहुत अच्छे खिलाड़ी थे। तथा सभी क्रिकेट, हॉकी तथा अन्य खेल खेला करते थे। तीसरे नम्बर के भाई डेविड अभी हाईस्कूल के विद्यार्थी थे तो उन्हें इंदौर के जिलाधिकारी ने हॉकी खेलते हुए देखा। हॉकी खेलते हुए डेविड की योग्यता और चुस्ती से पुलिस सुपरिटेंडेंट बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने डेविड से पूछा कि क्या वह पुलिस विभाग में शामिल होना चाहेंगे। अत्यन्त हर्ष पूर्वक डेविड ने यह प्रस्ताव स्वीकार किया और उसे अगले दिन दफ्तर आकर सुपरिटेंडेंट पुलिस से मिलने के लिए कहा गया।

उसकी अभिरुचि तथा ज्ञान की परीक्षा लेने के लिए पुलिस सुपरिटेंडेंट ने उसे पुलिस डायरी पढ़ने के लिए कहा। नियम के अनुसार पुलिस डायरी की लिखावट बेढ़बी होती है जिसे आसानी से समझा नहीं जा सकता। कहा जाता है कि कई बार तो लिखने वाला भी अपनी लिखावट को नहीं समझ पाता। परन्तु चाचा डेविड, जैसा मुझे याद है, न केवल अपनी कुशाग्र बुद्धि और हाजिऱजवाबी के कारण विख्यात थे, उन्होंने डायरी को इस प्रकार पढ़ना शुरु किया मानो उसका एक–एक शब्द वो जानते हों। जो भी कुछ वो समझ पाए उसे उन्होंने

अपने शब्दों में कह डाला। परिणामस्वरूप वो डायरी को प्रवाह में पढ़ पाए। सुपरिटेंडेंट इतने प्रभावित हुए कि तुरन्त उन्होंने डेविड को पुलिस अफसर की नौकरी की पेशकश कर दी। मेरे पिताजी सदैव मेरी विनोदशीलता की तुलना चाचा डेविड से किया करते थे क्योंकि उनकी तरह से मुझमें भी न केवल विनोद प्रवृत्ति है बल्कि अपने भाई–बहनों के साथ व्यवहारिक मज़ाकों के लिए भी मैं प्रसिद्ध हूँ। श्रीमाताजी भी अत्यन्त विनोद प्रिय हैं और विवाह के पश्चात् भी अत्यन्त कृपा पूर्वक वे मेरे मित्रों को अपनी सूक्ष्म विनोदशीलता द्वारा हँसाया करती थीं। मैंने कभी उन्हें किसी से नाराज़ होते हुए नहीं देखा। हाल ही में जब उन्होंने पुस्तक लिखी, जो कि पश्चिमी लोगों के लिए अत्यन्त गहन एवं कठिन है, इसे भी उन्होंने इतनी विनोदशीलता पूर्वक लिखा है कि आप उसे छोड़ नहीं पाते।

इन दिनों सबसे बड़े भाई सोलोमन चाचा को छिंदवाड़ा के शिक्षणालय में धर्म विज्ञान पढ़ाने का कार्य दे दिया गया था, क्योंकि उन्हें धर्म का गहन ज्ञान था। बाद में शान्तवन चाचा उस मिडल स्कूल के मुख्याध्यापक के रूप में उत्तराधिकारी बने। इसी दौरान मेरे पिताजी ने क्रिश्चियन कॉलेज इन्दौर से स्नातक परीक्षा पास कर ली। यह कॉलेज कलकत्ता विश्वविद्यालय से जुड़ा हुआ था। शिक्षा काल में वो काम भी करते थे। मुझे याद है एक बार उन्होंने अपनी शिक्षाकाल की एक घटना सुनाई थी। छात्रवृत्ति तथा ट्यूशन के पैसे, जो उन्हें मिलते थे, उसमें से उन्होंने दस रुपये बचाए। अच्छे जूतों का उन्हें बहुत शौक था। उन्होंने आठ रुपये के मँहगे जूते खरीदे। नए जूते प्राप्त करके उन्हें बहुत प्रसन्नता हुई और अपनी इस खुशी को वे परिवार के साथ बाँटना चाहते थे। वे जब घर पहुँचे तो उनकी माँ ने उनका स्वागत किया और उनसे पूछा कि उस डिब्बे में क्या है जिसे वे अपने हाथों में कसकर पकड़े हुए हैं? गर्व पूर्वक उन्होंने अपनी माँ को बताया कि अपनी बचत से उन्होंने जूते खरीदे हैं। माँ से वे सराहना की आशा कर रहे थे। कठोर अनुशासन एवं विवेक की प्रतिमूर्ति, जैसे वो थीं, उन्होंने मेरे पिताजी से कहा कि ये जूते वापिस कर दें क्योंकि अन्य सभी भाई चप्पल और स्लिप्पर पहने हुए थे। इन हालात में मेरे पिताजी का जूते पहनना ठीक न होगा। मेरे पिताजी ने इसी में विवेक देखा और तुरन्त जूते दुकानदार को लौटाकर दस रुपये अपनी माँ को दे दिए और उसके पश्चात् स्नातक परीक्षा

पास करने तक उन्होंने कभी जूते नहीं खरीदे। सखुबाई के विवेक के प्रति उनके हृदय में इतना सम्मान था कि इसने उनके हृदय में बलिदान की भावना को जन्म दिया। स्कूल तथा कॉलेज के दिनों में मेरे पिताजी के ऐसे बहुत से मित्र थे जो सदैव उनकी सहायता के लिए तैयार होते। इन मित्रों में से एक का नाम वे विशेषरूप से लिया करते थे। उनका नाम जल (Jal) था। धर्म से वे ज़ोरास्ट्रियन थे और वैभवशाली परिवार से सम्बन्धित थे। अपनी माँ को ये कहकर कि उन्हें बहुत भूख लगती है, जल दो व्यक्तियों का भोजन लाया करते थे ताकि मेरे पिताजी और जल, दोनों इसे खा सकें। जल की माँ हमेशा हैरान हुआ करती थी कि किस प्रकार उसे दोपहर के समय इतनी भूख लगती है और रात के खाने के समय नहीं लगती। मेरे पिताजी ने हमें बताया कि जल अपनी माँ से झूठ बोलता कि रात्रि को हल्का पेट होने से वो अच्छी पढ़ाई कर सकेगा। वो सदा अपनी बत्ती जलाकर सोता ताकि उसके माता–पिता यही समझें कि वह पढ़ाई कर रहा है।

इंदौर क्रिश्चियन कॉलेज में अपनी पढ़ाई के दौरान मेरे पिताजी ने कई रिकार्ड कायम किए। उनकी प्रतिभा को कॉलेज के प्रधानाचार्य श्री.विल्के ने मान्यता दी। (ये डॉक्टर विल्के उज्ञैन वाले न होकर अन्य व्यक्ति थे) उन्होंने मेरे पिताजी को सदैव और बेहतर करने के लिए उत्साहित किया। उनके मित्र जल इतने अधिक विवेकशील विद्यार्थी न थे और मेरे पिताजी उसे पढ़ाया करते थे। कॉलेज में उनके कुछ अन्य मित्रों में श्री.डब्ल्यू.आर.पौराणिक, जो बाद में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश बने, श्री.काओरे (Kaore) और श्री.गरुड़ (Mr.Garud) जो बाद में नागपुर आए और सेवासदन हाई स्कूल के प्रतिभारी बने। बहुत वर्ष पश्चात् श्रीमाताजी ने मैट्रिक की परीक्षा इसी स्कूल से पास की। विश्वविद्यालय छोड़ने के दो दशकों के पश्चात् श्री.काओरे मेरे पिताजी से मिलने के लिए आए। वे गुसलखा़ने में गाने के लिए प्रसिद्ध थे और मेरे पिताजी हमेशा मज़ाक में उनसे पूछा करते थे कि गुसलखा़ने को तुम्हारा संगीत सुनने की आदत पड़ गई है या नहीं ?

स्नातक की पढ़ाई में गणित उनका एक विषय था। परन्तु बीमार पड़ जाने के कारण वे परीक्षा में न बैठ सके और फेल हो गए। अगले वर्ष विषय बदलकर उन्होंने गणित के स्थान पर संस्कृत ले ली। उन्हें लगा कि गणित तो उन्हें बहुत अच्छा आता है, क्यों न संस्कृत जैसा दूसरा विषय ले लिया जाए। वैसे तो वे

छब्बीस भाषाएं जानते थे परन्तु चौदह भाषाओं पर उनका स्वामित्व था। स्नातक परीक्षा पास करने के बाद मेरे पिताजी ने कई नौकरियाँ कि जिनमें से एक इंदौर हाई स्कूल में अध्यापक की नौकरी थी। उन्होंने मणिपुरी फरुखाबाद और झांसी, जो अब उत्तर प्रदेश में है, में भी नौकरियाँ की। अन्तत: वे सेन्ट जॉन स्कूल, आगरा में अध्यापक बन गए। कार्य के लिए उन्होंने आगरा को चुना क्योंकि आगरा में विधि महाविद्यालय (Law College) की सुविधा थी और विधिवेत्ता (Lawyer) बनने की उनकी उत्कट इच्छा थी।

वर्ष १९०६ में उन्होंने अपने मामा श्री.गायकवाड़ की बेटी करुणा से विवाह किया। सम्पति को गैर हाथों से बचाने के लिए ऐसा करने की महाराष्ट्र में आम प्रथा थी। वर्ष १९०८ में उनके घर प्रथम पुत्री का जन्म हुआ जिसका नाम उन्होंने उर्मिला रखा। अध्यापन कार्य करते हुए उन्होंने कानून पढ़ा। यह दुष्कर कार्य था क्योंकि कानून का विषय अत्यन्त विस्तृत और गम्भीर था तथा उनका समय, नौकरी और पढ़ाई में बंट जाता था। विधि महाविद्यालय आगरा, जो कि इलाहबाद विश्वविद्यालय से सम्बद्ध था, उन्होंने कानून की परीक्षा पास की और साथ–साथ अध्यापन कार्य भी जारी रखा।

गर्मियों में पूरा परिवार छिंदवाड़ा एकत्र होता। ऐसी ही एक यात्रा में सोलोमन चाचा ने मेरे पिताजी को सलाह दी कि वे वहीं आकर वकालत करें। सोलोमन चाचा को मेरे पिताजी से इतना प्रेम था कि वो नहीं चाहते थे कि मेरे पिताजी परिवार से दूर रहें और परिवार के अधिकतर सदस्य किसी न किसी कारणवश छिंदवाड़ा स्थानांतरित हो गए थे। अन्तत: वर्ष १९१४ में मेरे पिताजी भी छिंदवाड़ा स्थानांतरित हो गए। अब तक उनके तीन और बच्चे हो गए थे, विमला, अश्विनी और कमला। उनके दो भाई बहन जिनसे उन्हें बहुत प्रेम था वो भी छिंदवाड़ा आ चुके थे, इसलिए छिंदवाड़ा स्थानांतरित होने का उन्हें बहुत आकर्षण था।

यह वह समय था जब प्रथम विश्व युद्ध छिड़ गया था। मेरे पिताजी ने उन्ही दिनों अपनी वकालत आरम्भ की थी। मेरे पिताजी की लोकप्रियता को देखकर छिंदवाड़ा के डिप्टी कमीशनर ने अनुरोध किया कि वे भर्ती अधिकारी (Recruiting Officer) का पद स्वीकार कर लें, जो अन्तत: उन्होंने स्वीकार कर लिया। उन्हें पूरे प्रमण्डल का भर्ती अधिकारी नियुक्त किया गया। इस पद पर

उन्होंने प्रथम विश्व युद्ध के अन्त, वर्ष १९१८, तक कार्य किया। वर्ष १९१९ में भर्ती अधिकारी के रूप में उनकी शानदार सेवाओं के इनाम के रूप में उन्हें ''राव साहिब'' की उपाधि से सम्मानित किया गया। जब किंग जार्ज पंचम भारत आए तो उनसे भी उनकी भेंट करवाई गई। उनकी सेवाओं का सम्मान करते हुए उन्हें अतिरिक्त सहायक प्रमण्डल अधिकारी का पद भार स्वीकार करने के लिए कहा गया परन्तु इसके लिए उन्होंने इन्कार कर दिया क्योंकि नौकरी की अपेक्षा अपना व्यवसाय उनकी वरीयता थी।

करुणाबाई अत्यन्त प्रतिभाशाली व्यक्ति तथा सामाजिक कार्यकर्ता थीं। सिलाई–कढ़ाई के कार्यों में वे अत्यन्त कुशल थीं। छिंदवाड़ा में एक बार सिलाई–कढ़ाई प्रदर्शनी हुई। इसमें उन्होंने भाग लिया और एक बहुत सुन्दर टोकरी बनाने के लिए प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया। उन दिनों श्री.डेनियलसन E.L.C. छिंदवाड़ा के मुख्य पादरी (बिशप) थे और उनकी पुत्री श्रीमती लैमन (Mrs.Lemmon) और करुणाबाई प्रौढ़ शिक्षा की एक कक्षा चलाते थे जिसमें बहुत सी महिलाएं विशेष रूप से अंग्रेजी सीखने आती थीं।

विश्व युद्ध समाप्त होने के पश्चात् मेरे पिताजी ने छिंदवाड़ा में फौजदारी मुकदमों का कार्य पुन: आरम्भ कर दिया। आरम्भ में रायबहादुर मथुरा प्रसाद के साथ उन्होंने उनके सहायक के रूप में कार्य किया। रायबहादुर सुप्रसिद्ध फौजदारी वकील थे और अपनी कानूनी प्रतिभा के लिये जाने जाते थे। उनके भुलक्कड़पने के बहुत से किस्से हैं, इनमें से एक मुझे स्पष्ट याद है।

उन दिनों आजकल की तरह से सरकार के पास स्थायी सरकारी वकील नहीं हुआ करते थे। आजकल तो सरकारी पक्ष में बहस करने के लिए सरकारी वकील हैं, सरकारी अभिवक्ता हैं, सरकारी अधिवक्ता हैं और मुख्य अधिवक्ता हैं, आदि–आदि। प्रथम विश्व युद्ध के समय पर राज्य के लिए मुकदमें की पैरवी करने के लिए सरकार किसी प्रसिद्ध वकील को कहा करती थी।

रायबहादुर मथुरा प्रसाद की प्रसिद्धि के कारण सरकार उन्हें बहस करने के लिए बहुत से मुकदमें दिया करती थी। प्राय: वे सरकार के पक्ष में मुकदमें लड़ा करते थे, परन्तु एक बार उन्होंने एक ऐसे व्यक्ति का मुकदमा स्वीकार किया जिस पर कत्ल का आरोप था। इस मुकदमें में रायबहादुर मथुरा प्रसाद को

सरकार के विरुद्ध प्रतिरक्षा वकील के रूप में बहस करनी थी।

उनके भुलक्कड़पन का ज्ञान होने के कारण मेरे पिताजी ने मुकदमें की पेशी की प्रात: उन्हें याद दिलवाया कि आज वे इस्तगासा (Prosecution) की तरफ से न्यायालय में खड़े न होकर प्रतिवादी (Defendent) की ओर से बहस करेंगे। रायबहादुर ने जब बहस आरम्भ की तो वे भूल गये की वो प्रतिरक्षा वकील हैं और उन्होंने बहस को इस प्रकार आरम्भ किया मानो वे अभियोजन पक्ष के वकील हों।

मेरे पिताजी ने गलती को महसूस किया और यह याद दिलाने के लिए आज वो प्रतिवादी (Defendant) के वकील हैं, उन्होंने रायबहादुर का गाऊन पकड़कर खींचा। परन्तु रायबहादुर मथुरा प्रसाद तब पूरे भाव में थे और उन्होंने मेरे पिताजी के इशारे पर कोई ध्यान नहीं दिया। गाऊन खींचने का जब कोई परिणाम न नज़र आया तो उन्हें कुछ कहने के लिए मेरे पिताजी उठे। रायबहादुर ने उन्हें डाँटकर कहा कि बैठ जाओ, मेरी बहस में बाधा मत डालो। न्यायाधीश भी दुविधा में पड़ गया था और सर्वत्र भ्रम की स्थिति बन गई थी। स्थिति की गम्भीरता को देखते हुए रायबहादुर मथुरा प्रसाद के विरोध की बिल्कुल चिन्ता न करते हुए मेरे पिताजी उनके कान में जोर से बुदबुदाए कि उन्हें प्रतिवादी (Defence) के पक्ष में बहस करनी है अभियोजन (Prosecution) के पक्ष में नहीं। मथुरा प्रसाद को तुरन्त अपनी गलती का एहसास हुआ परन्तु चोटी के वकील होने के नाते वे अपनी गलती को स्वीकार न कर सके। अत: वे कुछ क्षण के लिए रुके और कुशल जादूगर की तरह से उन्होंने कहा, ''श्रीमन (My Lord) अभियोजन पक्ष के लिए बहस को इस प्रकार शुरु करना सर्वोत्तम होता यह बात मैं देख रहा हूँ। अब मुझे प्रतिवादी के पक्ष में बहस करने की आज्ञा दी जाए।''

अपने मुवक्किलों से फीस उगाहने में भी मथुरा प्रसाद अत्यन्त प्रसिद्ध थे। उनके अधिकतर मुवक्किल अनपढ़ ग्रामीण होते थे जो उनकी सामान्य फीस देने में भी आना कानी करते थे। अत: उन्होंने फीस वसूल करने का एक उत्तम उपाय खोज निकाला। अपनी मेज़ पर वे तीन कलमदान (Pen Holders) रखते थे, एक लकड़ी का बना हुआ, दूसरा चाँदी का मुल्लमा चढ़ा हुआ और तीसरे सोने के मुल्लमे वाला। अपने मुव्वकिलों को वे कहते कि यदि लकड़ी के कलमदान से वे प्रार्थना पत्र लिखेंगे तो उनकी फीस दो रुपये होगी, चाँदी वाले से

यदि वे लिखेंगे तो फीस तीन रुपये होगी और यदि सोने के मुल्लमे वाला कलम उपयोग करेंगे तो फीस पाँच रुपये होगी। अबोध भोले–भाले ग्रामीण पूछते की सबसे अच्छा प्रार्थना पत्र कौन सा होगा और वे उन्हें कहते कि यदि वे सोने के पैन से लिखेंगे तो मुवक्किल अवश्य जीतेगा। इस प्रकार वो हर प्रार्थना पत्र के लिए पाँच रुपये फीस वसूलते थे। मेरे पिताजी जब इन गलत तरीकों का विरोध करते तो रायबहादुर कहते 'ये अनुचित नहीं है। यह तो बिना मुवक्किल से माँगे पूरी फीस वसूलने का तरीका है।' थोड़े समय में मेरे पिताजी ने प्रसिद्ध फौजदारी वकील के रूप में स्वयं को स्थापित कर लिया। काम के कारण उन्हें प्राय: नागपुर आना पड़ता था इसलिए उन्होंने एक कार खरीद ली। नागपुर मुख्य मार्ग पर उन्होंने अपने लिए एक घर भी बनवाया। यही वह घर है जहाँ श्रीमाताजी का जन्म हुआ।

वर्ष १९१९ में करुणा बाई गम्भीर रूप से बीमार हुईं। २७ अगस्त, १९१९ को उन्होंने अपने सारे सम्बन्धियों, मित्रों एवं जानकारों से मिलने की इच्छा प्रकट की। उन्हें इस बात की झलक मिल गई थीं कि वो अब बहुत समय तक जीवित न रह सकेंगी। मेरे पिताजी ने सभी सम्बन्धियों, मित्रों और जानकारों को सन्देश भिजवाया और डेढ़ सौ से भी अधिक लोग उन्हें अलविदा कहने के लिए आए। जब रायबहादुर मथुरा प्रसाद उन्हें देखने के लिए आए तो उन्होंने प्रार्थना की कि वे उनके पति और बच्चों का ध्यान रखें। २९ अगस्त १९१९ के दिन उन्होंने वहाँ उपस्थित सभी सम्बन्धियों को कहा कि आज वो इस स्थान से प्रस्थान करेंगी। उन्होंने सबसे अनुरोध किया कि कोई भी रोए–बिलखेगा नहीं क्योंकि इससे उनके प्रस्थान में विलम्ब होगा। तत्पश्चात् उन्होंने अपनी दाईं बाजू उठाकर आकाश की ओर तीन उंगलियाँ उठाईं। बाद में इस घटना की व्याख्या इस प्रकार की गई कि उन्होंने उन्हें लेने आए तीन देवदूतों को देखा था। अपने अन्तिम शब्द जो उन्होंने मराठी भाषा में कहे, ''देवा मला घे'' अर्थात '' हे परमात्मा, मुझे स्वीकार करो।'' और तब उन्होंने प्राण त्याग दिए। उनकी मृत्यु से मेरे पिताजी को, मेरे चाचाओं को और चाचियों को बहुत सदमा पहुँचा क्योंकि अपने प्रेममय स्वभाव के कारण करुणा बाई सभी को बहुत प्रिय थी। मृत्यु के समय उनकी सबसे बड़ी बेटी उर्मिला ग्यारह वर्ष की थी और उनका सबसे छोटा बेटा केवल तीन वर्ष का। अत: घर में एक ऐसी महिला का आना

आवश्यक था जो बच्चों की देखभाल कर सके। अन्तिम संस्कार के लिये आये मेरे चाचे–चाचियाँ कुछ दिन तो रुके परन्तु वे लम्बे समय तक नहीं रुक सकते थे क्योंकि उनके अपने परिवार थे जिनकी देखभाल उन्हें करनी थी। उन सब लोगों ने मेरे पिताजी को पुन: विवाह करने के लिए राजी कर लिया।

नन्दगाँव से सु श्री.कोर्नीलिया जाधव नागपुर आई थी। नन्दगाँव श्रीगाँव की देव नदी के दूसरे तट पर स्थित था। कहा जाता है कि शिवाजी की माँ मालोजी राव के पिता को औरंगज़ेब ने बहुत सताया था। इसलिए वह और उसका बेटा शालिवाहनों की सहायता के लिए आये। औरंगज़ेब देवीभक्त शालिवाहनों से बहुत घबराता था और इसलिए मालोजी के साम्राज्य में वो कभी भी नहीं आया। साल्वे कहलाने वाले शालिवाहनों के वंशजों की सुरक्षा के लिए वो आगे आए।

सुश्री कोर्नीलिया जाधव ने फर्ग्युसन कॉलेज (Ferguson College), पूना से गणित ऑनर्स में स्नातक डिग्री की और सेन्ट उर्सुला हाई स्कूल (Ursula High School, Nagpur) में मुख्यअध्यापिका का पद लेने के लिए नागपुर आईं। वे रैंगलर परांजपे (Wrangler Paranjpe) की विद्यार्थी थीं। वास्तव में उन दिनों में वे उनकी एकमात्र महिला विद्यार्थी थीं। कोर्नीलिया बाई, जिस नाम से उन्हें सारे जानने वाले पुकारते थे, का जन्म २० दिसम्बर १८९२ को, राहुरी के निकट नन्दगाँव में हुआ। ये गाँव शिवाजी के दादाजी और उनके बेटे (जाधव) को शालिवाहनों ने आनन्द लेने के लिए दिया था। (नन्द) अर्थात् आनन्द लेना। अहमद नगर में उनके पिताजी पुस्तकालय अध्यक्ष (Librarian) के पद पर आसीन थे। अहमद नगर में अपनी प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् कोर्नीलिया स्नातक की डिग्री प्राप्त करने के लिए पूना आई। परिवार के सभी सदस्यों के विरोध के बावजूद भी उन्होंने ये कार्य किया। परिवार के सभी सदस्य इस बात से चिन्तित थे कि वे अकेली महिला विद्यार्थी थीं और बड़े शहर के जीवन के तौर तरीकों से भी परिचित न थीं। परन्तु कोर्नीलिया बाई अपने इरादों में दृढ़ थीं और सारे विरोधों के बाद भी उन्होंने महाविद्यालय में प्रवेश लिया। उन दिनों लड़कियाँ प्राय: मैट्रिक से आगे नहीं पढ़ा करती थीं और परिणाम स्वरूप उन्हें अपने परिवार के सदस्यों तथा समाज के विरोध का सामना करना पड़ा। गणित में स्नातक बनने की उनकी इच्छा इतनी दृढ़ थी कि सारे विरोध का

मुकाबला करके भी, चाहे विरोध जितना भी शक्तिशाली हो, उन्होंने अपनी इच्छा को कार्यान्वित करने का निश्चय किया। कोर्नीलिया बाई प्रतिभावान शिक्षाविद् थीं। गणित में उनका विशेष झुकाव था। भारतीय गणित पर उनका पूर्ण अधिकार था और मुझे याद है कि एक बार उन्होंने जगत गुरु शंकराचार्य (भारतीय गणित के लेखकों में से एक) को उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त के आधार पर चुनौती दी थी और सफलतापूर्वक उनके सिद्धान्त की मूल ग़लती का विश्वास दिलाया था। संस्कृत पर उन्हें प्रभुत्व प्राप्त था। उन्होंने हमें बताया कि पाइथागोरस के ज्योमिति सिद्धान्त का ज्ञान भारत में बहुत प्राचीन समय से था। वे संस्कृत भाषा की भी विद्वान थी और भारतीय प्राचीन संस्कृति में भी पारंगत थीं।

कठोर अनुशासन में उनके पिता ने उनका पालन पोषण किया इसलिए उनकी आदतें पूर्णत: त्रुटिहीन थी। स्वच्छता उन्हें बहुत पसन्द थीं और यह बाद में उनके और उनके बच्चों में, विशेष रूप से मुझमें, विवाद का कारण बनीं। वे अत्यन्त परम्परावादी थी और आदतन अत्यन्त मितव्ययी थीं, परन्तु अपने आदर्शों में अत्यन्त उदार मस्तिष्क थीं। अपनी परम्परावादी मितव्ययी आदतों की कहानियाँ वे हमें सुनाया करती थीं। एक ऐसे ही किस्से का मैं यहाँ वर्णन कर रहा हूँ। सेन्ट उर्सूला विद्यालय की मुख्याध्यापिका के पद पर जब वो नागपुर आईं तो उन्हें १२५ रुपये प्रतिमाह का शानदार वेतन पूर्ण रूपेण सजा–धजा बंगला और उनकी सेवा के लिए एक नौकर देना तय हुआ। पहले महीने का वेतन जब उन्हें मिला तो वे प्रबंधकों के पास गईं और अपने वेतन में से सौ रुपये लौटा दिए, इसका कारण बताते हुए उन्होंने कहा, कि उनके भोजन तथा अन्य आवश्यकताओं का खर्च तो पच्चीस रुपये में ही चल जाएगा। स्कूल प्रबन्धक नि:सन्देह हैरान हो गए और उनकी इस सद्भावना को उन्होंने बहुत सराहा। परन्तु उन्हें वेतन स्वीकार करने के लिए सहमत कर लिया गया क्योंकि उनके वेतन की कमी ने स्कूल के पूरे स्टाफ के वेतन के ढाँचे को डावाँडोल कर दिया होता। उनकी पारम्परिक आदतें, उनके बच्चों का चरित्र बनाने में बहुत कारगर साबित हुईं। ईमानदारी और स्पष्टता का विवेक उनके गुणों में से एक था। परमात्मा पर पूर्ण विश्वास के कारण वे ईमानदार थीं और निडर होने के कारण वे अत्यन्त स्पष्टवादी थीं। वे नहीं चाहती थीं कि किसी प्रकार का भी पक्षपात दर्शाया जाए या स्वीकार किया जाए।

मेरी एक चाची के बहुत अधिक अनुरोध पर मेरे पिताजी ने पुनर्विवाह करने का निर्णय किया। सामूहिक मित्रों के माध्यम से श्री.जाधव को विवाह प्रस्ताव भेजा गया। श्री.जाधव सेवा निवृत्ति के पश्चात् नागपुर में अपनी बेटी के पास रहने के लिए आ गए थे। इससे पूर्व कोर्नीलिया बाईं का विवाह न हो पाया था क्योंकि वो इतनी पढ़ी लिखी थीं कि ईसाईयों में कोई भी लड़का उनसे अधिक या उनके समान पढ़ा लिखा न था। ये प्रस्ताव जब श्री.जाधव के पास पहुँचा तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने चैन की सांस ली। परन्तु वे अपनी बेटी की स्वीकृति चाहते थे, इसलिए विवाह प्रस्ताव उनके पास भेजा गया।

मेरी माँ को निम्नलिखित बातें विशेषरूप से बताई गईं। प्रस्ताव करने वाला दूल्हा नि:सन्देह एक विधुर है जिसके पाँच बच्चे हैं परन्तु वह बहुत पढ़ा लिखा है, युवा है, सुन्दर है, जीवन में भली–भांति स्थापित है। परमात्मा पर उसे दृढ़ विश्वास है और उसे किसी भी प्रकार के नशे की आदत नहीं है। सारे ऊँच–नीच को उन्होंने अपने मस्तिष्क से जाँचा–परखा। बहुत समय पश्चात् उन्होंने मुझे बताया था कि मेरे पिताजी से विवाह करने के उनके निर्णय को दो चीजों ने प्रभावित किया था। प्रथम तो यह कि मेरे पिता बहुत पढ़े लिखे थे और प्रतिभावान वकील थे, परन्तु उससे भी अधिक महत्वपूर्ण उनका परमात्मा पर विश्वास होना तथा उन्हें किसी प्रकार के नशे की आदत न होना था। इतनी छोटी आयु के माँ विहीन बच्चों के प्रति भी उनके हृदय में गहन करुणा उमड़ पड़ी थी। वो ये भी जानती थीं कि उनके वृद्ध पिता चाहते थे कि वे मेरे पिताजी से विवाह कर लें।

मेरे पिताजी ने उनकी मनोदशा को समझा और उनसे अकेले में बात करनी चाही। परन्तु पारम्परिक होने के कारण उन्होंने इस दिशा में मेरे पिता के सभी प्रयत्नों के लिए इन्कार कर दिया। मुझे याद है कि मैं एक बार उन्हें ये कहकर सता रहा था कि मेरे पिता के सौन्दर्य को देखकर वो उन पर लट्टू हो गई होंगी। मेरे मज़ाक को अनदेखा करके उन्होंने मुझे बताया कि बहुत सी चीज़ों को सोचते हुए उन्होंने मेरे पिता से विवाह किया था और इन गम्भीर मामलों को युवा पीढ़ी नहीं समझ सकती।

अन्तत: बहुत से सलाह मशवरों के पश्चात् २१ जून १९२० को छिंदवाड़ा के E.L. चर्च में उनका विवाह हुआ। विवाह के समय कोर्नीलिया बाई अत्यन्त

कोमल महिला थीं जिनके नैन नक्श अत्यन्त तीखे एवं सुन्दर थे और मेरे पिताजी का शरीर अत्यन्त गठा हुआ था। उनके विवाह के चित्र को जब हमने देखा तो हमें ऐसा लगा मानो वो एक दूसरे के लिए ही बने हों। कुछ समय पश्चात् वे मेरे पिताजी के साथ छिंदवाड़ा आ गईं और उन्होंने अपना पारिवारिक जीवन शुरु किया। पत्नी तथा पाँच सौतेले बच्चों की माँ के रूप में उनका कार्य बहुत चुनौतीपूर्ण था। विशेष रूप से जबकि सबसे छोटा बच्चा सुशील जन्म से मिर्गी रोगी (Epileptic) था और उसका मानसिक विकास अवरुद्ध था। आरम्भ में उन्हें बच्चों के विरोध का भी सामना करना पड़ा। परन्तु शनै: शनै: उन्होंने उन्हें तथा उनका विश्वास जीत लिया। १८ मार्च १९२१ को उन्हें पहला पुत्र रत्न–नरेन्द्र प्राप्त हुआ। पहले बच्चे के रूप में बेटा प्राप्त करके माता–पिता बहुत प्रसन्न थे। इसी दौरान मेरे पिताजी ने रायबहादुर मथुरा प्रसाद के साथ काम करना छोड़कर स्वतंत्र रूप से कार्य आरम्भ किया। बहुत ही शीघ्र वे छिंदवाड़ा के चोटी के फौजदारी वकील बन गए। मेरी माँ कोर्नीलिया बाई भी परीक्षाएं पास करना चाहती थीं और इसके लिए उन्होंने विधि कॉलेज में प्रवेश भी ले लिया था परन्तु पारिवारिक जिम्मेदारियों की वजह से वे अपनी कानून की शिक्षा पूर्ण न कर पाईं।

वर्ष १९२७ तक मेरे पिताजी छिंदवाड़ा में रहे। जब तक वो वहाँ पर रहे उन्होंने कस्बे के नागरिक जीवन में सक्रिय भूमिका निभाई। छिंदवाड़ा नगर पालिका के वे चुने हुए सदस्य थे तथा उपाध्यक्ष भी थे और रायबहादुर मथुरा प्रसाद अध्यक्ष थे। उपाध्यक्ष के रूप में अपने कार्यकाल के दौरान उन्होंने रायबहादुर मथुरा प्रसाद और कई अन्य प्रसिद्ध नागरिकों की अध्यक्षता में छिंदवाड़ा में महिला अस्पताल बनाने के लिए एक समिति का गठन किया। महिला अस्पताल की वहाँ बहुत आवश्यकता थी और बहुत वर्षों से इसकी माँग बनी हुई थी। मेरे पिताजी ने इस अस्पताल के लिए केवल बहुत सा पैसा ही नहीं दिया परन्तु इसके बनाने के कार्य में भी पूरी तरह से संलग्न रहे। आज भी यह महिला अस्पताल वहाँ पर बहुत अच्छा कार्य कर रहा है। डॉक्टर सुश्री मैकलीम (Miss Macleam) 'स्कॉटिश महिला' इस अस्पताल की प्रथम मैडिकल सुपरिंटैंडेन्ट थीं।

कोयला क्षेत्र होने के कारण छिंदवाड़ा में बहुत से यूरोपीय और अंग्रेज कस्बे तथा उसके आस–पास की कोयला खानों में काम करते थे। उन्होंने एक क्लब

शुरु किया जो केवल अंग्रेजों तथा यूरोपीय मूल के लोगों के लिए ही सीमित था। इसलिए छिंदवाड़ा के खेल–कूद प्रेमी भारतीयों ने अपना ही एक क्लब आरम्भ करने का निर्णय किया। छिंदवाड़ा क्योंकि मध्य भारत के सतपुड़ा पर्वत माला के पठार में स्थित है इसलिए उन्होंने इस क्लब का नाम पठार क्लब (The Plateau Club) रखा। जैसा पहले वर्णन किया जा चुका है, मेरे पिताजी और चाचा लोग सभी बहुत अच्छे खिलाड़ी थे। अत: वे सब इस क्लब के सदस्य बन गए। क्लब के पास क्योंकि पर्याप्त धन न था इसलिए उन्होंने भूमि के एक खुले टुकड़े को क्रिकेट मैदान बना लिया। बहुत शीघ्र ही ये क्लब प्रसिद्ध हो गया और उन्होंने नागपुर से एक टीम को खेलने के लिए आमंत्रित किया। इस टीम में भाव साहब भिंडे, कर्नल नायडू (कनकैया नाम से प्रसिद्ध) और सिल्वेस्टर चौबे (चौब्से नाम से विख्यात) सम्मलित थे। कई छक्के लगाकर कर्नल नायडू ने शतक बनाया। मेरे पिताजी श्री बेन्टन (अतिरिक्त सुपरिटेंडेंट पुलिस) के साथ छिंदवाड़ा के लिए खेले। उन्होंने भी बहुत से छक्के लगाए।

मेरे पिताजी क्योंकि पूरी तरह से शराब विरोधी थे इसलिए उन्होंने पठार क्लब के बाकी सदस्यों को भी क्लब के अन्दर मद्यपान वर्जित करने के लिए सहमत कर लिया। आरम्भ में इसका विरोध किया गया परन्तु क्लब के अध्यक्ष रायबहादुर मथुरा प्रसाद का समर्थन मेरे पिताजी को प्राप्त था। अत: सभी लोग इस बात के लिए सहमत हो गए कि क्लब के अन्दर मद्यपान नहीं किया जाएगा। बहुत से अवसरों पर मेरे पिताजी सामाजिक भोजों से उठकर चले आए क्योंकि वहाँ शराब पिलाई जा रही थी। अपने देश को मेरे पिताजी उतना ही प्रेम करते थे जितना खेलकूद को। उनके देशप्रेम के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं।

सुप्रसिद्ध अली भाईयों (Ali Brother) को उनकी माँ के साथ गृह कारागार में रखा जा रहा था। चक्कर मार्ग पर उन्हें एक बंगला आवंटित कर दिया गया था। परन्तु हमारे यहाँ आने की आज्ञा थी। उन दिनों हम हराई के जागीरदार के बंगले में रहते थे जो अली भाईयों को आवंटित बंगले के बहुत समीप था और वो लगभग प्रतिदिन हमारे यहाँ आया करते थे। मेरे पिताजी और अली भाईयों के बीच सानिध्य एवं निकटता को देखते हुए छिंदवाड़ा के अंग्रेज सुपरिटेंडेंट पुलिस ने मेरे पिताजी को कहा कि अली भाईयों से अपनी मित्रता का लाभ उठाते हुए उनसे अंग्रेज विरोधी खिलाफत आंदोलन की भविष्य की योजनाएं पता करें। मेरे

पिताजी ने टका सा इन्कार कर दिया और कहा, ''यदि अंग्रेजों ने मुझे रावसाहिब की उपाधि ऐसे देश विरोधी कार्य करने के लिए दी है तो मैं अपने देश तथा देशवासियों के साथ धोखा करने के स्थान पर यह उपाधि त्याग देना चाहूँगा।''

उनकी देश भक्ति की एक अन्य घटना है जो केवल इसलिए महत्वपूर्ण नहीं है कि यह उनके राष्ट्रीय आन्दोलन में सम्मिलित होने से पूर्व घटित हुई परन्तु इसलिए भी कि यह उनकी श्रेष्ठता तथा देश के प्रति निस्वार्थ समर्पण को भी दर्शाती है। उनके इन गुणों ने बाद में स्वतन्त्रता संग्राम में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वर्ष १९२१ में स्वर्गीय सरोजिनी नायडू (जिन्हें महात्मा गाँधी ने भारत कोकिला कहा था), जो कि कांग्रेस की उच्च दर्जे की नेता थीं, नागपुर के एक सम्मेलन में भाग लेने के पश्चात् छिंदवाड़ा आईं। सुपरिटेंडेंट पुलिस ने एक मुसलमान अतिरिक्त सहायक कमिश्नर को उनके भाषण के नोट लेने के लिए नियुक्त किया ताकि डिप्टी कमिश्नर को इनकी सूचना दी जा सके। ये अफसर मेरे पिताजी से आगे बैठे हुए थे। मेरे पिताजी भी इस सभा में भाग ले रहे थे। पुलिस विभाग के और भी कई लोगों को ऐसे ही कार्यों के लिए वहाँ नियुक्त किया गया था। ये मुस्लिम अतिरिक्त सहायक कमिश्नर सरोजनी नायडू के शक्तिशाली तथा उत्तेजक भाषण से इतना प्रभावित हुआ कि उनके भाषण के नोट लिखने के स्थान पर वह अन्य श्रोताओं के साथ उनके भाषण की प्रशंसा कर रहा था। पुलिस के अन्य कर्मियों ने ये बात देखी और इसकी सूचना डिप्टी कमिश्नर को दी। इस अतिरिक्त सहायक कमिश्नर का सामना जब डिप्टी कमिश्नर से हुआ तो उसने बताया, ''आप यदि मेरी रिपोर्ट को देखेंगे तो आपको पता चलेगा कि मैंने उनके एक–एक शब्द को अक्षरश: लिखा है और ऐसा करना केवल तभी सम्भव हो पाता जब मैं उन्हें समझता और उनके भाषण से मेरी एकाकारिता हो जाती। ये कहानी जब मेरे पिताजी को सुनाई गई, तो उन्होंने कहा कि भारतीय होने के नाते आप प्रेरित हुए बिना नहीं रह सकते। मेरे पिताजी जी–जान से भारतीय थे और अत्यन्त देश भक्त भी। सरोजनी नायडू की प्रशंसा में उन्होंने उर्दू का एक शेर पढ़ा जिसका अर्थ ये था कि लाखों पढ़े–लिखे लोग हैं और उनमें से हजारों स्नातक हैं परन्तु बगिया में गाने वाली कोयल केवल एक है, बाकी सब कौए हैं।

मेरे पिताजी की देशभक्ति बर्तानवी लोगों के भारतीयों से तथा ऐंग्लो इण्डियन तथ स्वयं को अंग्रेज मानने वाले भारतीयों से जिन्हें ब्राऊन साहिब (गेहुंए अंग्रेज) कहा जाता था, किए जाने वाले व्यवहार के प्रति तीव्र विरोध में भी देखी जा सकती थी। एक बार अंग्रेजों तथा भारतीयों के बीच एक क्रिकेट मैच हुआ। यह आम प्रथा थी कि साथ–साथ दो टैंट लगाए जाते थे जिनमें खिलाड़ी बिना किसी रंग–भेद जहाँ चाहे बैठ सकते थे। परन्तु एक शनिवार छिंदवाड़ा क्लब तथा कोयला खदानों के शुद्ध अंग्रेज तथा बाकी के ब्राऊन साहिबों की टीमों में एक मैच खेला जाना था। छिंदवाड़ा के अंग्रेज एस.पी. मैदान के प्रबंध–अधिकारी थे। उन्होंने मैदान कर्मियों को आज्ञा दी कि दूर–दूर दो टैंट लगाए जाएं और ये भी हिदायत दी कि अच्छा टैंट पेड़ के नीचे अंग्रेजों के लिए लगाया जाए और इससे काफी दूरी पर एक साधारण टैंट उनके लिए जो अंग्रेज नहीं हैं। मेरे पिताजी जब मैदान में पहुँचे तो तुरन्त उन्होंने महसूस किया कि टैंट लगाने का प्रबन्ध भारतीयों तथा अंग्रेजों में भेदभाव करने की दृष्टि से किया गया है। अपनी टीम के साथियों के साथ उन्होंने मैदान कर्मियों को कहा कि जाकर एस.पी. और जिला कलेक्टर (D.C.) को बता दें कि प्रजातीय भेदभाव के विरोध में वे मैदान छोड़कर चले गए हैं। घर पहुँचकर मेरे पिताजी ने घोषणा की कि अंग्रेजों के जातीय भेदभाव के दृष्टिकोण के कारण उन्होंने मैच न खेलने का निर्णय लिया था। मेरी माँ ने दोपहर के खाने के लिए बहुत अच्छा भोजन तैयार किया था। पाक कला में वे बहुत पारंगत थीं विशेष रूप से चावल पुलाव बनाने में। मेरे पिताजी ने उन्हें कहा कि भोजन का कार्यक्रम रद्द कर दिया गया है और जैसा पहले निर्णय किया गया था अब उन्हें वहाँ आने की कोई आवश्यकता नहीं है। वे भी महान देशभक्त थीं और अंग्रेजों द्वारा भारतीयों का अपमान किया जाना वे भी सहन न कर सकती थीं।

ज्यों ही ये समाचार मैच के प्रबन्धकों डी.सी.कर्नल चिताली (Colonel Chitaly) को दिया गया वे तुरन्त हमारे घर पर आए और मेरे पिताजी से आकर मैच खेलने की प्रार्थना की। अत्यन्त विनम्रता परन्तु दृढ़ता पूर्वक उन्होंने उन्हें बताया कि रंगभेद एक सामाजिक अपराध है। अत: वे केवल आज का ही मैच नहीं, भविष्य में भी कभी अंग्रेजों के लिए या उनके विरोध में मैच नहीं खेलेंगे। कर्नल प्लोडन और कर्नल चिताली ने छिंदवाड़ा के एस.पी. की ओर से क्षमा

मांगी और कहा कि दोनों टैंटो को पुन: साथ–साथ लगा दिया गया है और भविष्य में कभी भी इस प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाएगा। केवल तभी मेरे पिताजी और टीम के अन्य सदस्य मैच खेलने के लिए गए। जिस प्रकार उन्हें विश्वास दिलाया गया था, इसके पश्चात् खेल के मैदान में कभी भी रंगभेद नहीं किया गया।

आठ वर्ष की आयु में एक बार श्रीमाताजी एक क्रिकेट मैच देख रही थीं। इस मैच में उनके बड़े जीजा भी खेल रहे थे। उनकी कार पर राष्ट्रीय दल का झण्डा हमेशा लहराता था। यह मैच सिपाहियों के मध्य था और उन्होंने माँग की कि झण्डे को हटा दिया जाए। श्रीमाताजी कार से बाहर आईं और उनसे कहा कि मेरे जीते जी झण्डा नहीं हटाया जा सकता। इस प्रकार झण्डे को वहीं लहराता हुआ छोड़ दिया गया। जब वे घर वापिस आईं तो उनकी भाभी बहुत डरी हुई थीं परन्तु उनके जीजा ने कहा कि उसने (श्रीमाताजी) बिल्कुल ठीक कार्य किया है।

मेरे पिताजी सभी बच्चों को कोई न कोई खेल खेलने के लिए उत्साहित करते रहते थे, क्योंकि उनका दृढ़ विश्वास था कि खेल–कूद व्यक्ति में साहस की भावना (Sportsman's Spirit) के अतिरिक्त सामूहिकता, मिल बाँटकर लेना, पारस्परिक सूझ–बूझ और सर्वोपरि–लक्ष्य प्राप्ति की भावना भी पैदा करते हैं। परिणामस्वरूप बेटियों समेत उनके सभी बच्चे अपने स्कूल और कॉलेज के दिनों में कोई न कोई खेल खेलते थे। श्रीमाताजी स्वयं अपने राज्य की घोषित बैडमिंटन विजेता थी। वे बहुत से भारतीय खेल भी खेलती थीं और राज्य स्तर की खेल स्पर्धाओं में उन्होंने अपने स्कूल से नागपुर का प्रतिनिधित्व किया।

मेरे पिताजी की शिकार करने में, विशेष रूप से नरभक्षी चीतों का, गहन दिलचस्पी थी। वर्श १९२१–२२ में खिलचीपुर के महाराजा छिंदवाड़ा में न्यायायिक अधिकारी का प्रशिक्षण ले रहे थे। अच्छे खिलाड़ी होने के अतिरिक्त महाराजा बहुत अच्छे शिकारी भी थे। परिणामस्वरूप मेरे पिताजी और महाराजा बहुत अच्छे मित्र बन गए। प्राय:, विशेष रूप से छुट्टियों में, वे शिकार खेलने के लिए जाया करते थे। ऐसे ही एक अवसर पर जंगली पशुओं के शिकार के लिए गए मेरे पिताजी ने ३०१ की भारी राइफल ले ली। परन्तु उस दिन उन्हें कोई बड़ा जंगली पशु न मिला, केवल काले नर हिरणों का एक झुण्ड दिखाई दिया। मेरे पिताजी इतने अच्छे निशानेबाज थे कि जब उन्होंने निशाना लगाया तो गोली ने

एक काले हिरण को चीरकर साथ खड़े दूसरे हिरण को घायल कर दिया। उनके साथी तो एक ही काले हिरण को उठाने के लिए गए थे परन्तु एक ही गोली से मरे हुए दो हिरणों को देखकर उनके आश्चर्य की सीमा न रही। निशानेबाजी की उनकी इस योग्यता से खिलचीपुर के महाराज इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने उन्हें एक दुर्लभ राइफल भेंट की, जिससे हाथियों को भी मारा जा सकता था।

भोपाल के समीप मध्य भारत में खिलचीपुर एक छोटा सा राज्य है। प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात् महाराजा खिलचीपुर लौट गए और वहाँ से उन्होंने मेरे पिताजी और उनके परिवार को आने के लिए आमंत्रित किया। मेरी माताजी ने मुझे बताया था कि जब वो खिलचीपुर गए थे तो श्रीमाताजी केवल एक वर्ष की थीं। राज्य अतिथियों के रूप में वे लगभग दस दिन रहे। आश्चर्य की बात है कि श्रीमाताजी को खिलचीपुर की एक–एक बात याद है!

मेरे पिताजी अपनी हाजिऱजवाबी (Quick wit) और सुध–बुध (Presence of mind) के लिए भी प्रसिद्ध थे। ऐसा एक दृष्टान्त उन्होंने सुनाया था। विश्वयुद्ध के पश्चात् कर्मचारियों की कमी के कारण अधिकारियों को अतिरिक्त कार्य करने के लिए कहा गया। अब्दुल सुभान खाँ नामक एक मुसलमान दण्डाधिकारी (Magistrate) थे जिन्हें कोशाधिकारी का कार्य करने के लिए भी कहा गया क्योंकि धन सम्बन्धी कार्य के कारण इस कार्य को अधूरा नहीं छोड़ा जा सकता। तीन बजे तक वे खज़ाने में कार्य करते और उसके पश्चात् फौजदारी मुकदमें सुनने शुरु कर देते जो सूर्यास्त के बाद तक चलते रहते। मेरे पिताजी क्योंकि फौजदारी वकील थे और अब्दुल सुभान खाँ फौजदारी मुकदमे तीन बजे के बाद सुना करते थे, मेरे पिताजी के पास शाम को खेलने के लिए वक्त न होता था। जिलाधीश कर्नल प्लोडन भी बड़े उत्साही क्रिकेट खिलाड़ी थे। एक शाम जब मेरे पिताजी वहाँ थे, कर्नल प्लोडन ने देखा कि अभ्यास के लिए जाल (Nets) नहीं लगाए गए हैं। मैदान कर्मी ने बताया कि सारा सामान मैदान से बहुत दूर रखा जाता है और इसे वह अपनी साईकिल पर रखकर कई बार में लाता है। डी.सी. इस समस्या का समाधान चाहते थे। हुआ ऐसा कि श्री सुभान खाँ का घर खेल के मैदान से बिल्कुल समीप था। मेरे पिताजी ने तुरन्त डी.सी. को सलाह दी कि खेल का सारा समान सुभान खाँ के घर रखा जा सकता है और शाम को खेल की तैयारी का कार्य उन्हें सौंपा जा

सकता है। डी.सी. इसके लिए सहमत हो गए और मैदान कर्मियों से कहा कि तुरन्त श्री.सुभान खाँ को बुलाया जाए। कर्मचारी सुभान खाँ के बिना लौट आए क्योंकि सुभान खाँ तो अभी कचहरी में थे। डी.सी. परेशान थे कि न्यायालय के समय के बाद भी किस तरह एक अधिकारी कार्य करता रह सकता है! अत: मेरे पिताजी के साथ वो उनके न्यायालय के कमरे में गए। वहाँ पहुँच कर उन्होंने देखा कि यद्यपि न्यायालय का समय समाप्त हो चुका था परन्तु फिर भी न्यायालय की कार्यवाही पूरे जोरों पर चल रही थी। डी.सी. का स्वागत करने के लिए श्री सुभान खाँ उठ खड़े हुए। उन्हें आशा थी कि देर तक उनके कार्य करने की डी.सी. सराहना करेंगे। परन्तु उनकी आशाओं के विपरीत डी.सी. उन पर बरस पड़े और कहा कि इतनी देर तक कार्य करना उनका काम नहीं है। तत्पश्चात् उन्होंने श्री खाँ को अपने साथ खेल के मैदान पर चलने के लिए कहा और वहाँ खेलने के लिए तैयारी करने का कार्य उनको सौंप दिया और कहा कि उन्हें विश्वस्त करना होगा कि पाँच बजे तक सारी तैयारी हो जानी चाहिए। न्यायालय का समय समाप्त होने से पाँच मिनट पहले कचहरी छोड़ने की आज्ञा दे दी। अत्यन्त ठोस एवं उपयोगी सलाह देने के लिए डी.सी. ने मेरे पिताजी का भी धन्यवाद किया। इस प्रकार अपनी हाजिऱ जवाबी और सूझ–बूझ के कारण शाम को खेलने के लिए मेरे पिताजी स्वतन्त्र हो गए। वे केवल क्रिकेट ही नहीं खेलते थे, हॉकी, फुटबाल, बिलियर्ड्स और टेनिस भी खेलते थे। क्रिकेट तथा अन्य खेलों ने उन्हें बहुत से मित्र प्रदान किए। सुप्रसिद्ध न्यायाधीश पोलोक (Pollock), जिनके निर्णय आज भी उद्धृत किए जाते हैं, और जो बाद में नागपुर उच्च न्यायालय के न्यायाधीश बने, जब वे छिंदवाड़ा में न्यायाधिकारी का प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे थे तो मेरे पिताजी के बहुत अच्छे मित्र बन गए। न्यायाधीश पोलोक, जिस नाम से वे बाद में प्रसिद्ध हुए, कैम्ब्रिज ब्ल्यू (Cambridge Blue) थे (कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के क्रिकेट खिलाड़ियों को दिया गया सम्मान– कैम्ब्रिज ब्ल्यू)। वे मेरे पिताजी के खेल तथा कानूनी कौशल दोनों से अत्यन्त प्रभावित थे। ये मित्रता वकील के पेशे में मेरे पिताजी की प्रगति में बहुत सहायक सिद्ध हुई। न्यायाधीश पोलोक, उनके मित्र तथा सहयोगी सभी साल्वे परिवार के मूल्य आधारित जीवन से बहुत प्रभावित हुए। ईसाई होते हुए भी साल्वे परिवार मदिरा सेवन आदि से मुक्त था। उन सबका धार्मिक आधार था, विशेष रूप से मेरे पिताजी का, क्योंकि वे धर्मान्ध न थे। वे सभी धर्मों का सम्मान करते थे और

सर्वोपरि मानवीय गरिमा का सम्मान करते थे। उनका विश्वास था कि सभी मनुष्यों को परमात्मा ने बनाया है, उनकी जाति, धर्म, पंथ चाहे जो भी हों। ईमानदारी और विवेक उनके दो ऐसे गुण थे जो उनके उदार एवं प्रेममय व्यक्तित्व में जब जुड़ जाते थे तो जहाँ भी वो जाते उन्हें लोकप्रिय व्यक्ति बना देते। अपना उच्च मूल्य–स्तर बनाए रखने में उनकी पत्नी कोर्नीलिया बाई की मुख्य भूमिका थी। उन्हीं की तरह से वह भी अत्यन्त ईमानदार एवं स्पष्टवादी थीं। गणितज्ञ होने के कारण नि:सन्देह वे अत्यन्त अनुशासन प्रिय थीं परन्तु अनुशासन के इस कठोर लबादे के पीछे हमें सदैव उनका स्नेह महसूस होता था। मेरे विचार से हम सभी बच्चे उनके ऋणी हैं क्योंकि यदि उनका ये कठोर अनुशासन और मूल्य शैली न होती तो हममें से अधिकतर आज उस अवस्था तक न पहुँचे होते जहाँ हम हैं। मुझे याद है कि एक बार मैंने श्री माताजी से पूछा, ''आपने साल्वे परिवार में जन्म लेना पसन्द क्यों किया और उन्होंने मुझे बताया कि मुख्यत: ये चरित्रवान माता–पिता के कारण था जिनपर उन्हें सदैव गर्व है।''

जैसा पहले वर्णन किया गया है नरेन्द्र के जन्म के पश्चात् मेरी माताजी ने विधि स्नातक (L.L.B.) के लिए विधि कॉलेज में प्रवेश ले लिया। उन दिनों विधि कॉलेज की कक्षाएं नागपुर के मौरिस कॉलेज में अतिरिक्त समय (Part Time) में लगती थीं। परिणाम स्वरूप उन्हें प्राय: नागपुर आना पड़ता था। निरन्तर बढ़ती हुई पारिवारिक जिम्मेदारियों के कारण उन्हें अपनी पढ़ाई अधूरी छोड़नी पड़ी। मेरे पिताजी ने इसी दौरान फौजदारी वकील के रूप में बहुत धन कमाया तथा छिंदवाड़ा तथा नागपुर के भी चोटी के वकील बन गए।

वर्ष १९२२ के मध्य में मेरी माँ ने पुन: गर्भ धारण किया और इस बार मेरे माता तथा पिता दोनों की हार्दिक इच्छा थी कि उनके यहाँ पुत्री जन्म ले। मार्च १९२३ के आरम्भ में, जब उनका बाहर आना जाना वर्जित होने लगा था, मेरी माताजी ने मेरे पिताजी से प्राकृतिक वातावरण में मुक्त शेर देखने की इच्छा व्यक्त की। भारतीयों में ये परंपरा है कि वे गर्भवती पत्नियों की सभी इच्छाओं को पूर्ण करते हैं। ऐसा माना जाता है कि गर्भवती माँ की इच्छा वास्तव में उस बच्चे की इच्छा होती है जिसका अभी जन्म नहीं हुआ होता। मेरी माँ की देखभाल करने वाली दाई के विरोध के बावजूद भी मेरे पिताजी ने समीप के जंगल में शिकार का प्रबन्ध किया। पशुओं को अपनी नाद में से निकालने के लिए

पारंपरिक ढोल, शोर–शराबा, हल्ला–गुल्ला (हॉका) का प्रबन्ध किया गया। मेरे माता और पिताजी मचान पर बैठे हुए थे। इसी दौरान एक विशाल शेर मेरे पिताजी के निशाने की दूरी पर दिखाई दिया और मेरे पिताजी ने उस पशु पर निशाना साधा। इतने में मेरी माँ ने उस पशु को सूक्ष्मता से देखा और उन्हें लगा कि यह एक शेरनी थी जो गर्भ से थी। उन्होंने तुरन्त मेरे पिताजी से कहा कि इस पर गोली न चलाएं। पिताजी ने जब उनसे इसका कारण पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया, ''वे जीवित शेर को देखना चाहती थीं उसे मरते हुए नहीं।'' उन्होंने ये भी कहा कि शेरनी जल्दी ही बच्चा देने वाली है जिसके कारण उनके मन में ममत्व जाग उठा है और इसलिए वे नहीं चाहती थी कि शेरनी को मारा जाए। मेरे पिताजी ने तब मज़ाक करते हुए उनसे कहा कि सम्भवत: वे श्री दुर्गा को जन्म देंगी, उस देवी को जो शेर की सवारी करती हैं। ये मज़ाक किस प्रकार से भविष्यवाणी बन गया, ये बात मेरी कहानी के आगे बढ़ने से स्पष्ट हो जाएगी।

ये घटना वर्ष १९२३ के मार्च महीने में घटित हुई। उन दिनों में प्रसूति गृहों तथा स्त्री रोग विशेषज्ञों की सुविधा न हुआ करती थी। बच्चों का जन्म प्राय: घरों में ही हुआ करता था और इस कार्य को दाईयाँ करती थीं। मेरे पिताजी की एक सम्बन्धी दाई अत्यन्त अनुभवी थी। अत: उन्हें बुलाया गया। घर के मध्य में एक छोटा कमरा बच्चे के जन्म के लिए निश्चित किया गया। प्रसव पीड़ा या बच्चे के जन्म होने का कोई नामोनिशान न था। अचानक २१ मार्च १९२३ की प्रात: मेरी माँ को लगा जैसे प्रसव पीड़ा हो रही हो और उन्हें नियत कमरे में स्थानांतरित कर दिया गया और ठीक दोपहर को उन्होंने एक कांतिमान, गौरवर्ण कन्या को जन्म दिया। बच्चे का रंग दूधिया था और उनका सिर काले बालों से ढका हुआ था। इस बच्चे का जन्म निम्नलिखित कारणों से अद्वितीय था।

- मेरी माताजी को बहुत कम प्रसव पीड़ा हुई।
- बच्चा बिल्कुल रोया नहीं, वास्तव में दाई ने बच्चे को रोने के लिए विवश किया।
- बच्ची की अत्यन्त स्वच्छ दैदीप्यमान आँखें थीं और अत्यन्त मधुर मुस्कान थी।
- उनका रंग वास्तव में गुलाबी था जो अत्यन्त निर्मल था।
- जब रुक्मणी देवी ने उस बच्ची को देखा तो उसने कहा कि 'ये

निश्कलंका है' अर्थात् इनमें कोई भी दोष नहीं है।

- रेणुका देवी ने कहा, ''कि ये नाम श्री विष्णु के दसवें अवतार का है।'' परंतु क्योंकि ये बालिका है इसलिए इसे 'निर्मला' अर्थात् शुद्ध, निर्दोष क ह ा जाना चाहिए। मेरी माँ ने भी इस बच्ची को अपनी आदर्श अध्यापिका के नाम पर डेज़ी (Daisy) नाम दिया।
- उनका जन्म २१ मार्च की दोपहर को हुआ था। इस दिन सूर्य भूमध्य रेखा से कर्क रेखा तक अपनी यात्रा पूर्ण करता है और तेज धूप, विशेष रूप से भारत में, का उद्घोष करता है। इस दिन, दिन और रात बराबर होते हैं।
- बच्चे का जन्म छिंदवाड़ा में हुआ था जो देशांतर में कर्क रेखा पर स्थित है। संयोगवश मक्का का पावन नगर भी कर्क रेखा पर स्थित है।
- मेरी माँ की वे पहली पुत्री थीं यद्यपि पहली पत्नी से मेरे पिताजी की तीन पुत्रियाँ पहले थी।
- बच्चे का जन्म बुधवार के दिन हुआ। बहुत से अन्य सन्तों का जन्म भी इसी दिन हुआ।
- उनका जन्म एक ऐसे परिवार में हुआ जो राजवंश होने के साथ–साथ अत्यन्त पावन, धर्मपरायण, ईमानदार, सत्यनिष्ठ भी था तथा अत्यन्त उदार एवं अन्य धर्मों का सम्मान करने वाला भी। बच्चे के माता–पिता विद्वान थे और उन्हें संस्कृत भाषा का बहुत अच्छा ज्ञान था। वे अत्यन्त देशभक्त भी थे।

मैं आगे इस विषय पर विस्तार पूर्वक लिखूंगा तथा उस बातचीत के विषय में बताऊंगा जो विशेष रूप से इस परिवार में अवतरित होने के बारे में मैंने श्री माताजी से की थी।

अध्याय–२
१८२३ से १९२७
छिंदवाडा में श्रीमाताजी का शैशवकाल

शैशवकाल से ही श्रीमाताजी अत्यन्त जिन्दादिल थीं। जो भी उन्हें बुलाता उसके पास वे चली जातीं। उनकी मुस्कान अत्यन्त मधुर एवं आकर्षक थी। इस मुस्कान के माध्यम से सभी के प्रति वे आनन्द की अभिव्यक्ति करती थीं।

जैसा पहले वर्णन किया गया है, वर्ष १९२२ में मेरी माताजी अपनी विधि परीक्षा के लिए अध्ययन कर रही थीं। अपने आभूषण वे एक बक्से में रखा करती थीं और जब भी वे नागपुर जातीं तो ये बक्सा अपने साथ ले जातीं। नागपुर में जब उनकी कक्षा समाप्त होती और जब वे छिंदवाड़ा पहुँचतीं तो वे अत्यन्त ध्यानपूर्वक इस बक्से को कार या टाँगे में से निकालना न भूलतीं। एक बार इस लकड़ी के आभूषण–बक्से के साथ–साथ वो कुछ और समान भी लाईं। जब वो टाँगे में से उतर रही थीं तो बारिश होने लगी। उनकी गोद में बेटा नरेन्द्र भी था (जो बाद में N.K.P. के नाम से जाना गया)। कक्षा के लिए जाते हुए वे नरेन्द्र को अपने साथ ले जाया करती थीं। बच्चे को वर्षा से बचाने के लिए वे तेज़ी से टाँगे से उतरीं और नौकर को सामान उतारने के लिए कहा। लकड़ी का आभूषण बक्सा टाँगे में आगे की ओर रखा हुआ था और परिणामस्वरूप सामान उतारते हुए नौकर आभूषण बक्सा उतारना भूल गया। टाँगा किराए का था और सामान उतरते ही टाँगा चालक आभूषण बक्से सहित टाँगे को लेकर चला गया। कुछ देर बाद मेरी माताजी ने नौकर से गहनों के बक्से के विषय में पूछा परन्तु नौकर ने ये कहते हुए अनभिज्ञता जताई कि उसने तो टाँगे में आभूषण बक्सा देखा ही नहीं। मेरी माताजी ने तुरन्त आभूषण बक्से के खो जाने के विषय में पिताजी को बताया और मामले की सूचना घर के पास स्थित थाने में दी गई। पुलिस तुरन्त गतिशील हो उठी और टाँगा चालक के घर पर गई। परन्तु वहाँ वो बक्सा न मिला। बक्सा खो जाना अत्यन्त महत्वपूर्ण था क्योंकि मेरी माँ के आभूषण के अतिरिक्त इसमें रायबहादुर मथुरा प्रसाद जैसे मित्रों तथा अन्य चाचा–चाचियों द्वारा दिए गए उपहार (गहने) भी थे। आभूषण बक्से का खो जाना अपशकुन

माना जाता था। इसके धन–मूल्य के लिए नहीं परन्तु ये दृढ़ विश्वास किया जाता है कि घर की स्वामिनी के गहने यदि गुम हो जाएं तो इसके साथ–साथ परिवार पर और भी मुसीबतें आएंगी।

श्रीमाताजी के जन्म के पन्द्रहवें दिन क्रिस्तीकरण (Christening) के लिए चर्च ले जाया गया। मेरी माताजी, श्रीमाताजी, मेरी चाची और उनका बेटा उत्तम तथा अन्य चाचियाँ ताँगे में थीं। बोद्री नदी (जो छिंदवाड़ा के समीप से बहती थी) का पुल पार करते हुए ताँगे का पहिया टूट गया। दोनों घोड़े दो पैरों पर खड़े होने लगे और अजीबो–गरीब ढंग से हिनहिनाने लगे। इस प्रकार ताँगा बीच में से टूट गया और उसके दो हिस्सों के बीच श्रीमाताजी गिर गईं। मेरी माताजी ने मुझे बताया था कि ताँगे के चौखटे को जब हटाया गया तो देखा कि श्रीमाताजी को बिल्कुल चोट नहीं लगी और वे मधुर मुस्कान बिखेर रही थीं।

एक माह पश्चात् घर के दाएं भाग में आग लग गई क्योंकि विमला ने लैम्प से मिट्टी का तेल गिरा दिया था और यह स्थान अंगीठी के बहुत समीप था। इससे पूर्व कि जान–माल को कोई गम्भीर हानि होती, सौभाग्यवश इस आग पर काबू पा लिया गया। परन्तु इस घटना को भी अपशकुन माना गया। परिणामस्वरूप मेरी माताजी सभी बच्चों के प्रति बहुत सुरक्षात्मक हो उठीं और उन्हें खेलने के लिए भी जाने की आज्ञा न देतीं। कुछ लोग इन चीजों को अन्धविश्वास कहते परन्तु घर की महिलाओं का दृष्टिकोण बिल्कुल अलग था और सभी ने अपने बच्चों की सुरक्षा आरम्भ कर दी। मेरी माताजी श्रीमाताजी की रक्षा के प्रति विशेष रूप से सावधान थीं क्योंकि वे अत्यन्त सुन्दर एवं आकर्षक थीं, उनका रंग अत्यन्त गोरा था, बाल अत्यन्त काले और नैन नक्श बहुत ही अच्छे थे। मेरी माताजी को सदैव यही डर बना रहता था कि कहीं कोई इन पर किसी प्रकार का जादू टोना न कर दे।

आगे का घटनाक्रम इस प्रकार हुआ कि इन सब घटनाओं के कुछ माह पश्चात मेरा चचेरा भाई, शान्तवन चाचा का बेटा, उत्तम, गम्भीर रूप से बीमार हो गया और दुर्भाग्यवश ये बीमारी जानलेवा साबित हुई। देखने में वह भी अत्यन्त सुन्दर था और श्रीमाताजी की तरह से ही उसकी आँखे भी अत्यन्त चमकदार थीं। उत्तम की मृत्यु का पूरे साल्वे परिवार पर गहन प्रभाव पड़ा और सभी सम्बन्धियों ने अपना चित्त श्रीमाताजी पर जमा दिया कि कहीं उन्हें भी

कोई गम्भीर रोग न हो जाए। परन्तु श्रीमाताजी अत्यन्त प्रफुल्लित रहीं और सदैव सब पर अपनी मधुर मुस्कान बिखेरती रहीं। उनकी ये मधुर मुस्कान इस बात के प्रति विश्वस्त करती थी कि उन पर कोई विपदा नहीं आ सकती।

उस समय मेरी माताजी गर्भ से थीं और मेरे माता–पिता ने निर्णय किया कि होने वाला बच्चा यदि पुत्र हुआ तो वे इस बच्चे को चाचा शान्तवन राव को गोद लेने के लिए दे देंगे। उत्तम की मृत्यु का सदमा मेरे पिताजी पर इतना जबरदस्त था कि उन्हें लगा कि मेरे चाचा के दु:ख को कम करने का एकमात्र उपाय अपने होने वाले बेटे को उन्हें दे देना है। मेरी माँ ने तुरन्त ये बात स्वीकार कर ली। परिवार के सम्बन्ध और पारस्परिक प्रेम इतने गहन थे!

उत्तम की मृत्यु के एक माह पश्चात् छ: माह की श्रीमाताजी को अपनी गोद में लेकर मेरे माताजी खरीददारी के लिए गईं। जिस बाजार में वो गए थे वह हमारे बंगले से अधिक दूर न था, जब वे वापिस आने लगीं तो उन्होंने श्रीमाताजी को टाँगे की पिछली सीट पर लिटाया और टाँगा चालक को कहा कि वह टाँगे की पिछली सीट पर चढ़ने में उनकी सहायता करे। चालक ज्यों ही उनकी सहायता करने के लिए उनके पीछे आया, न जाने क्यों घोड़ा टाँगे को लेकर चल पड़ा और मेरी माताजी टाँगे में न चढ़ पाईं। अब स्थिति ऐसी बन गई कि टाँगे की पिछली सीट पर लेटे हुए श्रीमाताजी को लेकर घोड़ा चल पड़ा। श्रीमाताजी बिल्कुल अकेली थीं। मेरे माताजी और टाँगा चालक चिल्लाते हुए घोड़े को रुकने के लिए कहते हुए टाँगे के पीछे दौड़ रहे थे। परन्तु रुकने के स्थान पर घोड़े ने अपनी गति बदली और दुलकी से सरपट (Galloping) दौड़ने लगा। टाँगा बहुत तेजी से जा रहा था, मेरे माताजी और टाँगे के बीच की दूरी बढ़ती जा रही थी। मेरे माताजी किसी दुर्घटना की सम्भावना से घबरा गए। अनियंत्रित टाँगा एक दृश्य बन चुका था और हर आदमी अवश्यम्भावी दुर्घटना की आशा कर रहा था। जिस सड़क पर टाँगा चल रहा था वो टी–बिन्दु (T-Junction) पर समाप्त हो रही थी और घोड़ा यदि सीधा चलता रहता तो यह गड्ढे में गिरता और यदि ये दाएं को मुड़ता तो हमारे बंगले की विपरीत दिशा में चला जाता। सभी लोगों के आश्चर्य की सीमा न रही जब टी–बिन्दु पर घोड़े ने अपनी गति धीमी की, बाई ओर को मुड़ा और फिर सरपट दौड़ने लगा। टी–बिन्दु से बंगला लगभग आधा मील दूर था। मेरी माताजी और टाँगा चालक दूसरे टाँगें में बैठकर इसका पीछा करते रहे। मेरी

माताजी ने दूसरा टाँगा किराए पर ले लिया था परन्तु इसका कोई लाभ न हुआ। टाँगा जब बंगले पर पहुँचा तो घोड़े ने अपनी गति धीमी की, दुलकी में चलने लगा और फिर बंगले के द्वार के सम्मुख स्वयं ही रुक गया और फिर पीछे की ओर मुड़कर देखने लगा मानो वह देख रहा हो कि टाँगे पर उसका सवार सुरक्षित है या नहीं। मेरी माताजी जब टाँगे तक पहुँची तो, जैसा उन्होंने मुझे बताया था, श्रीमाताजी टाँगे की पिछली सीट पर आराम से लेटी हुई थीं, न तो वो रो रही थीं और न ही उनके मुख पर भय के कोई चिन्ह थे। उन्होंने अपनी मधुर मुस्कान के साथ मेरी माँ का स्वागत किया और इस मुस्कान ने उनकी चिन्ता को दूर कर दिया। उन्होंने बच्चे को गले से लगाया और बच्चे की रक्षा करने के लिए सर्वशक्तिमान परमात्मा का धन्यवाद किया। इसे सभी लोगों ने चमत्कार माना। सब लोग हैरान थे कि नन्हें शिशु, जो अभी तक बोल भी नहीं सकता था, को लेकर बिना चालक के टाँगे का घोड़ा किस प्रकार बंगले के ठीक सामने रुक सकता है! पाठकों को ये बताना मेरे लिए अनावश्यक होगा कि घोड़े का पथप्रदर्शन कौन कर रहा था यद्यपि घोड़े का सारथी न था। यह घटना मैंने बहुत से लोगों को सुनाई है, इससे शिशु के रूप में श्रीमाताजी की दिव्य शक्तियों पर प्रकाश पड़ता है।

मेरी माताजी ने मुझे बताया था कि श्रीमाताजी के साथ जो एकमात्र समस्या उन्हें थी, वह थी उनके घने लम्बे बाल। बालों में कंघी करना बहुत बड़ा काम था। परन्तु श्रीमाताजी मेरी माँ से कहतीं कि सिर में ढेर सारा तेल डालो ताकि बाल सुलझ जाऐं। बचपन में श्रीमाताजी ने कभी भी मेरी माँ को सताया नहीं, केवल बाल सुलझाने में ही उन्हें थोड़ा सा कष्ट होता था। श्रीमाताजी का जब बपतिज़्म होना था तो मेरी माताजी ने एक स्वप्न देखा जिसमें उन्हें अपनी माताजी दिखाई दीं। उनकी माताजी ने स्वप्न में उन्हें बताया कि उसकी ये बेटी कुछ विशेष हैं अत: इस लड़की का नाम वह नानी शान्ताबाई के नाम पर रखें। अगली सुबह मेरी माताजी ने मेरे पिताजी को इस स्वप्न के विषय में बताया परन्तु उन्होंने कहा कि निर्मला नाम बच्चे के निरभ्र श्वेत वर्ण को और उसकी मुस्कान की पावनता को दर्शाता है। अत: यह निर्णय किया गया कि अगला बच्चा यदि पुत्री हुई तो उसका नाम नानी माँ के नाम पर रखा जाएगा। ६ मई १९२४ को मेरी माताजी ने एक अन्य बेटी को जन्म दिया। मेरे माता–पिता,

दोनों थोड़े से निराश हुए क्योंकि उन्हें चाचा शान्तवन राव को देने के लिए एक बेटा चाहिए था। क्योंकि नवजात शिशु बेटी थी इसलिए शान्तशीला नाम दिया गया।

तीन छोटे बच्चों ने मेरी माताजी की वकील बनने की सारी आशाएं समाप्त कर दीं। अत: उन्होंने वकील बनने की आशा त्याग दी। वर्ष १९२६ में १० जून को मेरी माताजी ने एक पुत्र को जन्म दिया। उनका नाम विनय कुमार रखा गया जो बालासाहिब के नाम से विख्यात हुए। वर्ष १९२७ में मेरे पिताजी ने छिंदवाड़ा का बंगला रायबहादुर मलक को बेच दिया। रायबहादुर मलक बोहरा समुदाय के आध्यात्मिक मुखिया थे। बोहरा लोग मुसलमानों का ही एक अंग है जो धर्म की मुख्य धारा से अलग हो गया है। सदैव के लिए मेरे पिताजी नागपुर स्थानांतरित हो गए, तब श्रीमाताजी केवल पाँच वर्ष की थीं।

श्रीमाताजी की स्मरणशक्ति महान है। पशुओं से भी उन्हें बहुत प्रेम है। छिंदवाड़ा के घर में मेरे पिताजी ने एक बन्दर, कुत्ता और एक तोता पाले हुए थे। मेरी माताजी ने मुझे बताया कि जब वो नागपुर आ गए तो श्रीमाताजी इन सभी पालतु पशु-पक्षियों को याद करतीं और उनके नाम लेकर उन्हें पुकारतीं। बचपन से ही वे चिड़ियों और कबूतरों के लिए बगीचे में चावल फैला देती। हमारा छिंदवाड़ा का घर उन्हें अत्यन्त स्पष्ट रूप से याद था और एक दिन उन्होंने उस घर का बहुत ही अच्छा नक्शा बनाया था। उन्होंने यह भी बताया कि उनका जन्म घर के किस स्थान पर हुआ था। उन्हें अपना जन्म भी याद था और जन्म के समय उपस्थित सभी व्यक्तियों की भी याद थी। मेरे बड़े चाचा का घर, उनका बगीचा भी उन्हें याद था। बाद में उन्होंने नदी के विषय में भी बताया था। अत्यन्त हैरानी की बात थी कि केवल चार वर्ष की आयु में किस प्रकार वे सभी कुछ इतना स्पष्ट रूप से स्मरण कर सकती थीं! वे अत्यन्त सन्तुष्ट शिशु थीं और दूध के लिए भी कभी नहीं रोईं। उन्हें नियमित रूप से समय पर दूध दिया जाता था परन्तु एक दिन आया दूध देना भूल गई। फिर भी वे (श्रीमाताजी) रोईं तक नहीं और न ये बताया कि वे भूखी हैं।

अध्याय–३
१८२७ से १९३३
बर्तानवी साम्राज्य का आगमन

श्रीमाताजी के जन्म के समय ब्रिटिश राज बुलन्दियों पर था। यहाँ पर ये वर्णन कर देना उचित होगा कि भारत में अंग्रेज किस प्रकार और क्यों आए ?

वर्ष १५९९ में डच (Dutch) व्यापारियों ने, जो कि बर्तानिया के साथ मसालों का व्यापार कर रहे थे, मसालों के दाम केवल पाँच तुच्छ शिलिंग प्रति पौण्ड के हिसाब से बढ़ा दिये। दाम बढ़ाये जाने के कारण ब्रिटिश व्यापारियों ने वहाँ पर अपनी एक कम्पनी बना ली। ३१ दिसम्बर १५९९ को महारानी एलिज़ाबेथ प्रथम ने शाही फरमान पर हस्ताक्षर किये और इस कम्पनी को केप ऑफ गुड होप (Cape of Good Hope) के परे के देशों में पन्द्रह वर्षों के लिए व्यापार करने का एकमात्र अधिकारी बना दिया।

आठ माह हेक्टर (Hector) नामक पाँच सौ टन गैलन के एक समुद्री जहाज़ ने बम्बई (आजकल मुम्बई) के समीप सूरत की छोटी सी बन्दरगाह में लंगर डाले। ये जहाज़ २४ अगस्त १६०० के दिन सूरत बन्दरगाह पहुँचा। इस जहाज़ के कप्तान विलियम हॉकिन्स (William Hawkins) थे क्योंकि उन्होंने भारत और भारतीयों के वैभव के विषय में बहुत कुछ सुना था इसलिए माणक (Rubies), हीरे (Diamond), सोना (Gold) आदि के साथ–साथ काली मिर्च (Pepper), सोंठ (Ginger) और नील (Indigo) की खोज में वे वहाँ के आन्तरिक क्षेत्रों में निकल पड़े। ये सब मसाले वहाँ पर बहुतायत में उपलब्ध थे।

भाग्यवश वे ७० करोड़ लोगों के महाराज जहाँगीर के दरबार में पहुँच गये। मेहमान नवाज़ी महाराजा जहाँगीर की दुर्बलता थी। उन्होंने बाजू फैलाकर कप्तान विलियम का स्वागत किया। मुगल सम्राट ने कप्तान को न केवल अपने दरबार का सदस्य बनाया बल्कि उन्हें बहुत से उपहार भी दिये जिनमें उनके अन्तपुर (Harem) की एक सुन्दरी भी भेंट की, जिसे बाद में अमरीकी धर्म प्रचारकों ने ईसाई बना दिया।

एक शाही फरमान पर हस्ताक्षर करते हुए सम्राट ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी

को बम्बई के निकट व्यापार करने के लिए एक डिपो खोलने की आज्ञा दी। इससे पूर्व बम्बई को मुंबई के नाम से जाना जाता था अर्थात् माँ अम्बा। तो इस प्रकार से अंग्रेज भारत में पहुँच गये और उन्होंने नगरों के नाम अपने अनुसार कर दिये क्योंकि भारतीय नामों के उच्चारण वे न कर पाते थे। मेरे पिताजी कहा करते थे कि किसी अंग्रेज को भारतीय भाषा पढ़ाना बहुत कठिन कार्य है। एक अंग्रेज ने उनसे पूछा कि अपने नौकर को दरवाजा बन्द करने व खोलने के लिए वह किस प्रकार कहे? दरवाजा खोलने की विधि बताते हुए उन्होंने कहा, वह कहे, "There was a cold day" दरवाज़ा खोलने और दरवाजा बन्द करने के लिए "There was a Banker"। उन्होंने कहा कि इस प्रकार वे अपनी बात को स्पष्ट रूप से कह सकेंगे।

शीघ्र ही बर्तानवी व्यापार भारत में समृद्ध हो गया। हर महीने भारत के बन्दरगाहों से बर्तानिया के लिए दो समुद्री जहाज़ मसाले, गोंद, चीनी, कच्चा रेशम, मसलिन, रुई और नील लेकर जाते और वापसी में भारत में अपना व्यापार स्थापित करने के इच्छुक बहुत से उद्यमियों को अपने साथ लाते। सीधे–सच्चे भारतीय अंग्रेजों का दोनों बाहें खोलकर दो कारणों से स्वागत करते: पहला ये था कि भारतीय अत्यन्त अबोध लोग थे जो अंग्रेज व्यापारियों के बड़े–बड़े वचनों में या वादों में फंस गये थे और दूसरे अंग्रेजों ने अपना कोई बाह्य प्रयोजन नहीं दर्शाया था। आरम्भ में वास्तव में उनकी रुचि व्यापार ही थी। परन्तु ज्यों ही उन्होंने भारतीय व्यापार की अगाध सम्भाव्यता को समझा तो उन्होंने राजनीतिक और प्रशासनात्मक संस्थान बनाने आरम्भ कर दिये। छोटे–छोटे भारतीय शासकों की नीतियों में दखलंदाज़ी ने उन्हें 'फूट डालो और शासन करो' का सिद्धान्त प्रदान किया और इस प्रकार बर्तानवी राज के स्थापना की प्रक्रिया आरम्भ हो गयी।

परिणाम स्वरूप व्यापारियों और उद्यमियों के साथ–साथ थोड़ी–थोड़ी संख्या में बर्तानवी सैनिक भी भारत की भूमि पर पहुँचने लगे। पटसन (ज्यूट) और पटसन से बनी चीज़ों में क्योंकि उनकी काफी रुचि थी इसलिए उनका ध्यान बंगाल तथा उसके आस–पास के क्षेत्रों में केन्द्रित हो गया क्योंकि ये क्षेत्र सबसे अधिक पटसन उत्पन्न करते थे। जब कुछ जमींदारों ने अंग्रेजों को अपनी भूमि पर पटसन उगाने या पटसन का व्यापार करने की आज्ञा न दी तो खुल्लम–

खुल्ला झगड़े की स्थिति बन गई। बंगाल के समीप स्थित प्लासी नामक स्थान के ज़मींदार ने गैर कानूनी अंग्रेजों को अपनी भूमि से खदेड़ दिया। अंग्रेजों ने इसका प्रतिकार किया और बर्तानवी सेना के एक सेनापति रॉबर्ट क्लाइव (Robert Clive) ने ज़मींदार की तथा आस-पास के शासकों की फौज के साथ खूनी लड़ाई लड़ी जो प्लासी के युद्ध के नाम से प्रसिद्ध हुई।

ऐतिहासिक दृष्टि से प्लासी का युद्ध बर्तानवी साम्राज्यवाद का आरम्भ या उनके लिए परावर्तन बिन्दु (Turning Point) साबित हुआ। शासकों के बीच अंग्रेजों द्वारा रची गई छोटी-छोटी कलह के कारण ये शासक अंग्रेजों के छल-कपट के सहज रूप से शिकार होते चले गये। उनकी 'फूट डालो और शासन करो' की नीति ने बहुत लाभ पहुँचाया। उनकी कार्यविधि दो शासकों के बीच झगड़े को प्रोत्साहन देने की थी। वे एक शासक का साथ देते, उसे कुछ अधिक क्षेत्र का लालच दे देते और तत्पश्चात् सुरक्षा प्रदान करने के लिए उससे कर वसूल करते। यद्यपि शासक उस भूमि का कानूनी मालिक होता फिर भी इस प्रकार से वह अंग्रेजों का दास बन जाता क्योंकि अंग्रेज उससे कर की वसूली करते थे। सीधे-सच्चे भारतीय अंग्रेजों की इस चालाकी को तब तक नहीं समझ पाए जब-तक अंग्रेज वास्तव में देश के शासक नहीं बन गए। ये स्थिति बेरोक-टोक सन् १८५७ तक अंग्रेजों के भारत पहुँचने के लगभग २५६ वर्ष पश्चात् तक चलती रही।

सन् १८५७ में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की। खेद की बात है कि भारतीय यद्यपि संख्या में कहीं अधिक थे, उनके पास अंग्रेजों की तरह से बन्दूकें या तोपें आदि न थीं। झाँसी की रानी ने उनसे स्वदेशी तलवारों और धनुषों से युद्ध किया। युद्ध में भारतीय पराजित हुए। अंग्रेजों ने इस युद्ध को विप्लव या बर्तानवी साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह की संज्ञा दी। युद्ध में झाँसी की रानी पराजित तो हो गई परन्तु जिस बहादुरी के साथ उसने ये स्वतंत्रता संग्राम लड़ा, इसने अंग्रेजों को हतप्रभ कर दिया और उन्होंने कहा, ''झाँसी तो हमें मिल गई है परन्तु वस्तुत: लक्ष्मीबाई इस युद्ध की नायिका हैं। अपने शौर्य से वे सुसज्जित हैं।'' यह युद्ध भारतीयों के लिए स्वतंत्रता संघर्ष के आन्दोलन का आरम्भ था। आरम्भ में इक्की-दुक्की घटनाओं से ये आन्दोलन गति पकड़ने लगा। ज्यों-ज्यों क्रूरता एवं निर्दयता पूर्वक अंग्रेज अबोध लोगों की

हत्याओं का सिलसिला बढ़ाते गये भारतीयों के मन में स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए युद्ध की इच्छा बलवती होती गई। जितना अधिक अंग्रेजों ने स्वतंत्रता आन्दोलन को कुचला, आन्दोलन उतना ही सुदृढ़ हुआ। १९ वीं शताब्दी के अन्त तक अंग्रेजों की समझ में ये बात आ गई कि आज नहीं तो कल, अन्तत: उन्हें भारत छोड़ना ही होगा।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में प्रथम विश्व युद्ध के आरम्भ ने अंग्रेजों को थोड़ा सा चैन प्रदान किया क्योंकि उस समय प्राथमिकताएं बदल गईं और भारतीयों ने भी प्रथम विश्व युद्ध में लड़ने का निश्चय किया। परन्तु युद्ध के समाप्त होते ही बहुत से महान नेता एक जुट हो गए। स्वतंत्रता संग्राम के मंच पर महात्मा गाँधी प्रकट हुए और भारतीय उनके चहुँओर इस प्रकार एकत्र हो गये मानो मसीहा (मुक्तिदाता) अवतरित हो गया हो।

वर्ष १९२५ में मेरे पिताजी पहली बार महात्मा गाँधी से मिले। एक शाम न्यायालय से लौटते हुए छिंदवाड़ा जाते हुए नागपुर रेलवे स्टेशन के रास्ते पर जब वे थे तो उन्होंने स्टेशन के रास्ते पर स्थित कत्थूर चन्द पार्क में एक बहुत बड़ी भीड़ को देखा। एक अत्यन्त दुर्बल शरीर का व्यक्ति इस भीड़ को सम्बोधित कर रहा था। पूछताछ करने पर उन्हें पता चला कि सभा को सम्बोधित करने वाले व्यक्ति महात्मा गाँधी थे। जैसे पहले वर्णन किया जा चुका है, मेरे पिताजी राष्ट्रवादी थे और उन्होंने महात्मा गाँधी और उनके अहिंसात्मक आन्दोलन के विषय में सुना था। अत: उत्सुकतावश उन्होंने उस सभा में भाग लिया। महात्मा गाँधी अंग्रेजों की गुलामी, भारतीयों के स्वतंत्रता अधिकार के विषय में बात करते हुए कह रहे थे कि हर आत्मसम्मान वाले भारतीय को अहिंसा आन्दोलन में भाग लेना चाहिए क्योंकि अपनी ही मातृभूमि में वे दासता की जंजीरों में जकड़े हुए हैं।

मेरे पिताजी पर इस भाषण का गहन प्रभाव पड़ा, केवल इसलिए नहीं कि वह पूरी तरह से राष्ट्रवादी थे परन्तु इसलिए भी क्योंकि वे इस बात को पूरी तरह से मानते थे कि गुलाम होते हुए सम्मानपूर्वक रह पाना असम्भव था। यद्यपि अंग्रेजों ने उन्हें खिताब प्रदान किया था, यद्यपि वे ईसाई भी थे फिर भी अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह करने की आवश्यकता उन्हें महसूस हुई।

छिंदवाड़ा वापिस जाते हुए उन्होंने राष्ट्रीय अहिंसा आन्दोलन में भाग लेने के परिणामों पर गहनता से विचार किया। इसके विषय में उन्होंने मेरी माताजी से भी बात की। क्योंकि वो भी दासता की पक्षधर न थी। परिणामस्वरूप दोनों ने नागपुर से लगभग अस्सी किलोमीटर दूर स्थित गाँधी जी के सेवाग्राम आश्रम में उनसे मिलने का निर्णय लिया। मेरी माताजी ने बताया कि अपने स्पष्ट विचारों, दृढ़ विश्वास और अहिंसा आन्दोलन में दृढ़ श्रद्धा से महात्मा गाँधी ने इन दोनों को बहुत प्रभावित किया। उन्होंने मेरे पिताजी से कांग्रेस में सम्मिलित होने के लिए कहा। भारत पर शासन करने का अंग्रेजों को कोई कानूनी अधिकार नहीं है और सभी भारतीयों का ये प्रथम कर्तव्य था कि बिना किसी पावनता, विवेक या अधिकार के भारत पर शासन कर रहे अंग्रेजों को भारत भूमि से उखाड़ फेंकें।

इस मिलन का वांछित प्रभाव हुआ। मेरे पिताजी सेवाग्राम से छिंदवाड़ा लौट आये और बाद में मेरी माताजी ने मुझे बताया कि सेवाग्राम से लौटते हुए मेरे पिताजी अत्यन्त कृत–संकल्प प्रतीत हो रहे थे और अत्यन्त मौन थे। स्पष्टत: उनके मस्तिष्क में मंथन चल रहा था। छिंदवाड़ा पहुँचकर पहला कार्य जो उन्होंने किया वह था एक खुले मैदान में सारी जनता के सम्मुख अपने विदेशी सूटों को जला देना। जैसा पहले बताया जा चुका है मेरे पिताजी अच्छे–अच्छे वस्त्रों के बहुत शौकीन थे। परन्तु यदि उन्हें कांग्रेस में सम्मिलित होना था तो उन्हें पूरी तरह से कांग्रेसी बनना आवश्यक था। जनता के सम्मुख अपने सूटों को जलाकर प्रथम स्थान पर उन्होने महंगे सूटों के प्रति त्याग भावना की अभिव्यक्ति की, धन के प्रति अपनी त्याग की भावना को व्यक्त किया और अन्त में सूट न पहनने के कारण अपनी प्रतिष्ठा की कमी के प्रति पूर्ण त्याग के भाव को प्रकट किया। मोती लाल नेहरु (जवाहर लाल नेहरु के पिता) और मोहम्मद अली जिन्ना जैसे कुछ अन्य नेताओं की तरह से मेरे पिताजी में राष्ट्रीय आन्दोलन के लक्ष्य को प्राप्त करने में दुविधा (Duality) नहीं थी। मेरे पिताजी को यदि राष्ट्रवादी बनना था तो बिना किसी समझौते के पूरी तरह से राष्ट्रवादी बनना था। विदेशी वस्त्रों को पूरी जनता के सम्मुख जलाने के छिंदवाड़ा के लोगों तथा वहाँ रहने वाले अंग्रेजों पर पड़े प्रभाव की मैं भलीभांति कल्पना कर सकता हूँ। अंग्रेजों के प्रति खुल्लम–खुल्ला विद्रोह करने का मेरे पिताजी का यह प्रथम कार्य था। इसके पश्चात् मेरे माता–पिताजी ने हाथ से

कते सूत से बनी खादी पहननी आरम्भ कर दी और उन्होंने मृत्यु पर्यन्त खादी ही पहनी। वर्ष १९२७ में महात्मा गाँधी के अनुरोध पर मेरे पिताजी ने नागपुर स्थानांतरित होने का निर्णय किया क्योंकि गाँधी जी चाहते थे कि कांग्रेस आन्दोलन से सम्बन्धित लोगों के अपराधिक मामलों को वे न्यायालय में और अधिक प्रभावशाली ढंग से देख सकें। वर्ष १९३० में महात्मा गाँधी ने आवश्यकता की चीज़ नमक पर कर लगाये जाने का विरोध आरम्भ किया। उनकी धारणा ये थी कि विदेशी अंग्रेज भारत में भारतीयों द्वारा बनाये गये नमक पर कर किस प्रकार लगा सकते हैं? प्रसिद्ध डांडी यात्रा, जो उन्होंने साबरमती आश्रम से डांडी तक की, उनके विश्वास और पक्की धारणा की प्रतीक थी। इस यात्रा का आम जनता पर चमत्कारिक प्रभाव हुआ और पूरा राष्ट्र एक होकर अंग्रेजों से लड़ने के लिए खड़ा हो गया।

नागपुर में स्थानीय कांग्रेस नेताओं जिनमें मेरे माता–पिताजी भी थे, को प्राय: जेल जाना पड़ता था। इसी बीच परिवार का आकार भी और बढ़ गया था। अगस्त के दिन एक और बेटी इन्दुबाला ने जन्म लिया। २८ जून १९३० को एक और लड़की शशिकला का जन्म हुआ। इसी समय के बीच परिवार के कुछ लोगों की मृत्यु भी हुई। दादी सखु बाई १९२५ में स्वर्गवास हुईं और १ नवम्बर १९३१ को मेरी एक बहन विमला मृत्यु को प्राप्त हुई। वर्ष १९३० से १९३३ का समय ऐसा था जिसमें भारत के लोग स्वतंत्रता आन्दोलन के जोश में व्यस्त थे। लगभग हर शाम को मेरे माता–पिता को सभाओं में जाना पड़ता था और फौजदारी वकील के रूप में मेरे पिताजी की वकालत समृद्ध हो रही थी। मेरे माता–पिताजी के पास क्योंकि बच्चों की देखभाल करने के लिए बहुत कम समय होता था और क्योंकि परिवार बढ़ रहा था, सदैव मेरे माता–पिता बड़े घर की तलाश में रहते। परिवार के बड़े बच्चे स्कूल व कॉलेज की पढ़ाई में व्यस्त रहते। वर्ष १९३२ में मेरी बड़ी बहन उर्मिला ने नीलकांत नागकर से विवाह किया। वे पुलिस अधिकारी थे अत: वह अपने पति के यहाँ चली गई।

क्योंकि मेरी माँ को घर के काम–धंधे करने की फुरसत न थी और श्रीमाताजी से बड़े भाई–बहन अपनी पढ़ाई तथा गतिविधियों में व्यस्त थे श्रीमाताजी ने सात या आठ वर्ष की कोमल आयु में ही पूरे घर को चलाने की जिम्मेदारी अपने कंधों पर लेने का निर्णय किया। अपने दिल और दिमाग के गुणों

के कारण अब तक वे सभी की प्रिय बन चुकी थीं, इसलिए घर को चलाने, बड़े भाई–बहनों की जरूरतें पूरी करने ओर छोटों की देखभाल करने का कार्यभार स्वाभाविक रूप से उन पर आ गया। आरम्भ में इतने छोटे बच्चे को पूरे घर का भार सौंपने में मेरी माताजी को संकोच हुआ। परन्तु शीघ्र ही उन्होंने इस बात को महसूस किया कि उनकी बेटी अत्यन्त सक्षम है और उसमें न केवल रोज़मर्रा के गृहस्थ की समस्याओं को सम्भालने की क्षमता है बल्कि मेरे पिताजी के पास आने वाले सम्बन्धियों की देखभाल करने की भी क्षमता है। मेरे पिताजी दुर्बलता की सीमा तक मेहमाननवाज़ थे।

१९३२ में एक बार फिर, सातवीं बार मेरी माँ गर्भवती थीं। उन्होंने बाद में मुझे बताया था कि इस गर्भ से वे प्रसन्न नहीं थीं। बहुत से बच्चों की देखभाल की जिम्मेदारी में बाधा डालने के साथ–साथ ये गर्भ देश में गति पकड़ती हुई राजनीतिक गतिविधियों में भी बाधा डालता। जब बच्चे का जन्म लगभग समीप था तो उन्होंने एक बार फिर स्वतंत्र घूमते हुए शेर को देखने की इच्छा व्यक्त की परन्तु ऐसा घटित न हो पाया क्योंकि मेरे पिताजी अपनी वकालत तथा राजनीति में बहुत व्यस्त थे। वे उन्हें स्थानीय चिड़ियाघर ले गए और वहाँ उन्हें पिंजरे में बन्द शेर दिखाया। इन परिस्थितियों में २ मई, १९३३ को नागपुर के मोहन नगर रत्नम बाबू मुदलियर के घर में मेरा जन्म हुआ।

अध्याय–४
१९३३ से १९४७
श्रीमाताजी के विवाह तक मेरा शैशवकाल

मैं अपने पिताजी का बारहवाँ और माताजी का सातवाँ बच्चा था। परिवार में सबसे छोटा होने के कारण मेरे सारे भाई बहन मेरी देखभाल करना चाहते थे। अब तक श्रीमाताजी १० वर्ष की हो गई थीं और, जैसे मैं वर्णन कर चुका हूँ, वे पूरी गृहस्थी की आवश्यकताओं को देखती थीं। श्रीमाताजी ने महसूस किया कि राजनीतिक गतिविधियों के कारण मेरी माताजी वांछित रूप से मेरा ध्यान न रख पा रही थीं और परिणामस्वरूप उन्होंने (श्रीमाताजी ने) अपनी सुरक्षा प्रदान करनी आरम्भ कर दी। अपने बचपन का सबसे पहला संस्मरण तब का है जब हम घाट रोड स्थित श्री.चित्तनवीस के विशाल घर में ठहरे थे। ये घर काँच बंगला के नाम से प्रसिद्ध था क्योंकि मुख्य सड़क की ओर खुलने वाली बहुत सी खिड़कियाँ इसमें लगी हुई थी जिनमें रंग बिरंगे शीशे लगाए गए थे।

मेरे विचार से वर्ष १९३६ में हमने घर स्थानांतरित किया और नागपुर की नई कालोनी में श्री.बेग के घर में आए। वर्ष १९३७ में मेरे पिताजी नागपुर नगरपालिका के अध्यक्ष चुने गए और इस पद पर वे वर्ष १९३९ तक रहे। इस वर्ष में मेरे जीवन में दो अहम् घटनाएं घटी। पहली घटना तो ये थी कि मुझे मजबूर करके स्कूल भेजा गया क्योंकि अन्य बहुत से बच्चों की तरह से स्कूल जाना मुझे भी पसन्द न था। मैं क्योंकि नागपुर के मेयर का पुत्र था इसलिए अध्यापक मेरे प्रति कृपालु थे और उन्होंने इच्छानुसार विद्यालय आने और जाने की इजाजत दे दी। परन्तु जब–जब भी मैं स्कूल के समय से पूर्व घर पहुँचा तो मेरी माताजी ने तुरन्त मुझे स्कूल वापिस भिजवा दिया। मैंने पहले भी कहा है कि यह अत्यन्त अहम् घटना थी क्योंकि बहुत छोटी आयु में ही श्रीमाताजी ने मुझे शिक्षा के महत्व के विषय में तथा जीवन में पद प्राप्ति के विषय में बताया था। न चाहते हुए भी स्कूल जाने के लिए मुझे सहमत होना पड़ा। जो सीख उन्होंने मुझे उस समय दी थी उसे मेरी शैक्षिक पृष्ठ भूमि की नींव माना जा सकता है। दूसरी घटना मेरा मृत्यु के अर्थ को समझना है।

श्री.बेग के सबसे छोटे पुत्र कादिर की बारह–तेरह वर्ष की अत्यन्त छोटी आयु में निमोनिया से मृत्यु हो गई। यद्यपि वह मेरे से काफी वर्ष बड़ा था परन्तु हम दोनों बहुत अच्छे मित्र थे और ये समझ पाना मेरे लिए असम्भव था कि उस जैसा इतना अबोध और प्यारा व्यक्ति मृत्यु के दु:ख तथा दण्ड को प्राप्त हो सकता है! उस रात, मुझे याद है, मैंने श्रीमाताजी से मृत्यु के विषय में पूछा था और उन्होंने मुझे समझाने का प्रयत्न किया था, एक दिन सभी को मरना है। परन्तु कादिर जैसे लोग अपने गुणों के कारण लोगों के दिलों में जीवित रहेंगे। ईमानदारी से बताते हुए, मैं उनकी बात को न समझ पाया कि वे क्या कह रही हैं। ये समझ पाना छ: वर्ष के बच्चे के लिए असम्भव था कि मृत्योपरांत भी व्यक्ति जीवित रह सकता है। बहुत वर्ष पश्चात् अपने एक प्रवचन में श्रीमाताजी ने बताया कि मृत्यु जीवन का अभिन्न अंग है और जो मरता है वही पुन: जन्म लेता है। परन्तु जो मरता नहीं है वह जन्म भी नहीं लेता–अर्थात् 'आत्मा'। उन्होंने अपने इसी प्रवचन में यह भी वर्णन किया कि मानव के गुण तथा मूल्य निरंतर हैं और मृत्यु के उपरान्त भी बने रहते हैं। उस छोटी आयु में मेरे लिए कादिर की मृत्यु उस पर परमात्मा की थोपी हुई क्रूरता थी। परन्तु श्रीमाताजी के प्रवचन ने अब मुझे मृत्यु का सच्चा अर्थ समझा दिया है कि यद्यपि व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तब भी वह लोगों के विचारों में या इतिहास में जीवित रह सकता है जैसे महान देशभक्त या महान आध्यात्मिक लोग जीवित रहते हैं।

मेरे पिताजी ने एक गाय रख ली थी ताकि हम लोग शुद्ध दूध प्राप्त कर सकें। घास चरने के लिए दौड़ जाना उस गाय की विशेष आदत थी और जो दूधिया गाय की देखभाल करने के लिए रखा गया था, कभी गाय को खोज न पाता। परन्तु किसी तरह से गाय के छुपने के सभी स्थान मैंने जान लिए थे और जब–जब दूधिया खाली हाथ लौटता मेरी माँ मुझे गाय को लाने के लिए भेजती। गाय जब मुझे मिलती तो मैं उस पर खूब चिल्लाता और वो अत्यन्त शान्ति से मुझे सुनती (या शायद मैं ऐसा सोचता था)। वापिस लाते हुए मैं उसे खासी शिक्षा देता और स्वयं को चरवाहा मान लेता । पूरे परिवार के लोग इस बात पर मेरा खूब मज़ाक उड़ाते।

गर्मियों में हम लोग रात को खुले में सोते। परिवार के सभी सदस्यों की अपनी–अपनी चारपाई होती। कठोर अनुशासन प्रिय होने के कारण मेरी

माताजी की कड़ी हिदायत होती कि हर व्यक्ति अपने ही बिस्तर पर सोएगा, दूसरे भाई बहन के बिस्तर में कोई नहीं सोएगा। परन्तु वे जब मेरे पिताजी के साथ राजनीतिक सभाओं में जातीं तो श्रीमाताजी के साथ मेरी गुप–चुप रज़ामन्दी होती। जब–जब माँ बाहर होती तो मैं उनके बिस्तर में चुपके से घुस जाता और अपनी बाहों में लेकर वो मुझे प्रेम से थप–थपातीं और प्रेम से मुझे अपनी बाहों में भर लेतीं। परन्तु मुझे इस बात के लिए विश्वस्त करना होता था कि मेरा बिस्तर ऐसे दिखाई देगा कि मैं वहाँ सोया था। ये कार्य बिस्तर की चादर के नीचे सिराहने को इस प्रकार रखकर किया जाता जिससे ऐसा प्रतीत होता कि कोई बिस्तर में चादर के अन्दर लेटा हुआ है। सुबह–सुबह मेरे माता–पिता सैर करने के लिए जाया करते थे इसलिए श्रीमाताजी मुझे जल्दी जगा देतीं। मेरे माता–पिता के सैर पर जाने से पूर्व चुपके से मैं अपने बिस्तर में खिसक जाता। ये सब कुछ अत्यन्त सफलतापूर्वक चलता रहा। परन्तु एक दिन अचानक मेरी माताजी निरीक्षण के लिए आ गईं। उन्होंने जब मुझे श्रीमाताजी के बिस्तर में देखा तो मैंने गहरी नींद में होने का बहाना किया। मेरा हृदय तेजी से धड़क रहा था क्योंकि मैं जानता था कि मुझे दण्ड मिलने वाला है। परन्तु इस बार भी श्रीमाताजी ने मुझे बचा लिया। उन्होंने माँ से कहा कि मुझे ऐसे लग रहा था कि बाबा डर रहा है इसलिए उन्होंने मुझे अपने साथ सोने के लिए कहा था। उनकी इस चेष्टा ने मुझे बहुत सुरक्षा प्रदान की और मैं ये बात समझ गया कि श्रीमाताजी ही मेरी सच्ची शुभचिन्तक और रक्षक हैं और यदि कोई मुझे अपनी माँ के कठोर अनुशासन से बचा सकता है तो वे श्रीमाताजी हैं।

श्रीमाताजी हमें सदैव बताया करती थीं कि हमारी माँ की कठोरता और अनुशासन के पीछे हित की भावना होती थी और हमारे हित में वे यह अनुशासन चाहती थीं। आज जब मैं अन्दर झाँककर देखता हूँ तो मुझे समझ आता है कि मेरी माँ ने जो मूल्य हममें भरे थे वो कितने अच्छे थे। बचपन में जिन चीजों का हमने विरोध किया था आज हम उन्हीं का वेद वाक्य मानकर सम्मान करते हैं।

वर्ष १९४० में एक बार फिर हमने गृह परिवर्तन किया और माउंट रोड़ बंगले में आ गए। मेरे पिताजी की वकालत चमक उठी थी और अब हमारे पास अपनी कार थी, टाँगा था, सेवा के लिए कई नौकर थे। धोंड्या (Dhondya) नाम का हमारा एक ड्राइवर था जिससे मेरी बड़ी दोस्ती हो गई। उसने मुझे कार की

सारी तकनीकियाँ बताईं क्योंकि मुझे इनमें बहुत दिलचस्पी थी और मैं बहुत जल्दी सीखता भी था। मोटर कार इंजीनियर बनना मेरा स्वप्न था। परन्तु श्रीमाताजी हमेशा यही कहा करती थीं कि मशीनों की मरम्मत के काम में कोई मौलिकता (Originality) नहीं होती। वो मुझे सुझाया करती थीं कि यदि मुझे इंजीनियर बनना ही है तो मैं सिविल इंजीनियर बनूं ताकि सस्ते में और नए किस्म के घर बनाकर ग्रामीण भारत की रचना करने में सहायक होऊं। वो कहा करती थीं कि वे स्वयं डॉक्टर बनकर गरीब ग्रामीणों की सेवा करना चाहती हैं। ये कहना अत्यन्त विरोधाभास प्रतीत होगा क्योंकि हम स्वंय अत्यन्त सुखमय (यदि ऐश्वर्यमय नहीं तो) जीवन व्यतीत करते हुए भारत के दु:खी लोगों के विषय में सोचते थे। ये धारणा श्रीमाताजी की मूल भावनाओं को दर्शाती है। युवाकाल में जो योजनाएं हम बनाते थे वो आज भी मुझे याद हैं। पहली शर्त यह थी कि हममें से कोई भी विवाह नहीं करेगा, जंगल में एक झोपड़ी में रहेंगे और यथासक्षम ग्रामीण भारत की सेवा करेंगे। वो सदा मेरी कल्पनाओं को प्रोत्साहित किया करती थीं ताकि युवा होने के नाते कहीं मैं प्रलोभनों में न फंस जाऊं। वर्ष १९३१ में जब मेरे पिताजी को जेल भेज दिया गया तो मेरी दोनों बहनों को मिशनरी स्कूल से निकाल दिया गया। चर्च ने भी हमें निकाल फेंका। परन्तु जब मेरे पिताजी जेल से बाहर आए और वहाँ के मेयर बन गए तो उन सब ने हमारे परिवार के प्रति दृष्टिकोण बदल दिए। गृह परिवर्तन के कारण मेरी माँ ने मुझे दूसरे स्कूल भेज दिया। हमारे परिवार का ये अलिखित विधान था कि हममें से कोई भी मिशनरी स्कूल नहीं जाएगा। मुख्यत: इसका यह कारण था कि अंग्रेजी माध्यम स्कूल अंग्रेजों के पक्षधर थे और मेरे माता–पिता का ये मानना था कि प्रांतीय भाषा में प्राप्त की गई शिक्षा अपने महान देश की संस्कृति और विरासत को समझने में अत्यन्त सहायक होगी। अत: आरम्भ में मैं एक प्राथमिक स्कूल गया जिसका नाम चोखा मेला था। यह नाम अछूत जाति के एक सन्त के नाम पर रखा गया था। इसके बाद मैं टेकड़ी नामक स्कूल में गया जिसे नगरपालिका चलाती थी। यह स्कूल सरकारी बंगले के समीप पहाड़ की चोटी पर स्थित था।

नागपुर के मेयर का पुत्र होने के नाते मेरे लिए ज़मीन पर टाट की पट्टी पर बैठना बहुत कष्टकर था। एक दिन मेरा अहं वास्तव में भड़क उठा। मैं अध्यापक के पास गया और उनसे कहा, कि ज़मीन पर बैठना मेरे लिए बहुत कठिन है।

ज़मीन केवल टेढ़ी ही नहीं है ज़मीन पर बैठना कष्टकर भी है। बेचारे अध्यापक ने नौकरी जाने के भय से घबराकर मुझे अपनी कुर्सी पेश की और उस पर बैठकर मैं फूला न समाया। परन्तु मेरे दुर्भाग्यवश (या मैं कहूं कि भाग्यवश) इस मामले की खबर मेरी माँ तक गई और उनके लिए ये बात सहन करना बहुत कठिन था कि मेयर पुत्र होने के कारण उनके बेटे से विशेष व्यवहार किया जा रहा है। अगले दिन तुरन्त वे मुझे स्कूल लेकर गईं और मुझे पृथ्वी पर बिठाया तथा अध्यापक को चेतावनी दी यदि मेरे बेटे से विशेष प्रकार का व्यवहार किया गया तो उनकी नौकरी चली जाएगी। अध्यापक की दुविधा की आप कल्पना कर सकते हैं। मैं स्वीकार करता हूँ कि यद्यपि उस समय अपनी माँ के प्रति मेरे मन में कड़वाहट भर गई थी लेकिन उस समय मेरे अहं की जो पिटाई हुई उसने मुझे विनम्र तथा अधिक आत्मनिर्भर बनने में बहुत सहायता की। स्कूल के प्रति मेरी घृणा कम न हुई और सदैव स्कूल न जाने के लिए बहाने खोजा करता। आरम्भ में प्रातः ९.३० बजे से १०.३० बजे का समय शौचालय में बिताना मुझे सबसे अच्छा उपाय लगा, परन्तु मेरी माँ बहुत चुस्त थी और वे प्रातः ९.०० बजे ही शौचालय को बाहर से ताला लगा देतीं और वह तभी खुलता जब सभी बच्चे स्कूल चले जाते। फिर मैंने एक अन्य बहाना खोजा। पहले मैं ये बताना भूल गया कि पाँच साल की छोटी उम्र से ही मैंने तबला बजाना शुरु कर दिया था और जब मैं छः वर्ष का हुआ तो मेरे पिताजी ने मेरे नन्हे हाथों के उपयुक्त एक छोटा सा तबले का जोड़ा मेरे लिए खरीद दिया।

तबला बजाने में मैं अत्यन्त कुशल हो गया और मुझे इस बात का भी ज्ञान था कि इतनी छोटी आयु में तबला बजाने के मेरे कौशल के मेरे पिताजी अत्यन्त प्रशंसक थे। ठीक ९.३० बजे (स्कूल जाने के समय पर) मैं तबला निकालता और अभ्यास शुरु कर देता। मेरी माँ पहले मुझे प्रेम से कहतीं फिर मुझे स्कूल जाने की आज्ञा देतीं। मैं ऐसा दर्शाता मानो मैंने तबले की ताल बेताल कर दी हो और माँ से प्रार्थना करता कि वो मुझे परेशान न करें। मेरे पिताजी निश्चित रूप से मेरा पक्ष लेते और उनके न्यायालय जाते ही मैं तबला छोड़कर धोबियों, खा़नसामों के बच्चों के साथ क्रिकेट खेलने के लिए बाहर चला जाता। इन धोबियों तथा खानसामों को हमारे बंगले के समीप स्थित अंग्रेज अफसरों के घर के बाहर निवास स्थान दिए गए थे। इन लड़कों का साथ मुझे अच्छा लगता था

लेकिन मेरी माताजी को ये सब एक आँख न भाता था क्योंकि इन लड़कों के पिता शराबी थे, अशिक्षित थे और सर्वोपरि अपनी पढ़ाई की कीमत पर मैं उनके साथ खेलता था। मेरी माँ इसे बहुत बड़ा अपराध मानती थी। उन्होंने मेरे पिताजी से शिकायत की कि मैं अपने पिताजी के मेरे प्रति पक्षधर होने का दुरुपयोग कर रहा हूँ। मेरे पिताजी ने तुरन्त वचन दिया कि अब वे मेरा पक्ष न लेंगे, कम से कम मेरी पढ़ाई के मूल्य पर नहीं। तो मेरा ये बहाना भी असफल हो गया और मैं एक बार फिर स्कूल वापिस आ गया।

मेरे प्राथमिक विद्यालय के दिनों की एक और भी रोचक कहानी है। मेरी माताजी ने मुझे और मेरी बहन राशि को पढ़ाने के लिए एक अध्यापक नियुक्त किया था। कुछ समय में हमने उस अध्यापक को इस बात के प्रति विश्वस्त कर दिया कि हमारे साथ ताश खेलना हमें पढ़ाने से कहीं अधिक उपयोगी और लाभदायक है। गरीब अध्यापक के पास हमारी इच्छा को मानने के अतिरिक्त कोई रास्ता न था क्योंकि हम पूर्व मेयर के बच्चे थे। अत: केवल उन दिनों के अतिरिक्त, जब मेरी माँ ने निरीक्षण के लिए आना होता था, हम ताश ही खेला करते थे। निरीक्षण के दिन हम बहाना करते कि हम बहुत परिश्रम से पढ़ रहे हैं और हमारी माँ बहुत खुश होतीं। दो महिनों तक ये नाटक चलता रहा परन्तु एक दिन अचानक मेरी माँ उस समय अन्दर आ गईं जब हम पढ़ाई के स्थान पर अध्यापक के साथ ताश खेल रहे थे और एक दम से इस नाटक का अंत हो गया। अध्यापक की पीठ कमरे के प्रवेश द्वार की तरफ थी और मेरा मुँह प्रवेश द्वार की तरफ, ज्योंही मैंने माताजी को देखा, मैंने ताश फेंक दिए और कोसने वाली दृष्टि से अध्यापक की तरफ देखा और उसे कहा कि परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए हमें पढ़ाने की उसकी कोई इच्छा ही न थी। मेरे हाव–भाव में ये अचानक परिवर्तन देखकर अध्यापक बुरी तरह से हड़बड़ा गया। परन्तु इससे पूर्व कि वह कोई सफाई देता मेरी माँ का क्रोध उस पर बरस पड़ा था। वे उसे कठोरता पूर्वक डाँट रही थीं और उसे उसी क्षण में पढ़ाना बन्द करने के लिए कह दिया था। मैं और मेरी बहन दोनों ने बड़ा अबोध सा चेहरा बनाया हुआ था परन्तु हृदय से हमें बहुत बुरा लग रहा था क्योंकि हमारी शरारत के कारण बेचारे अध्यापक को नौकरी से हाथ धोना पड़ा। बाद में हमने जाकर उनसे क्षमा मांगी। तो ऐसे थे मेरे स्कूल के दिन।

सदर हाऊस (Sadar House) में मेरी बहन शान्ताबाई ने भारतीय शास्त्रीय संगीत सीखना आरम्भ किया और बाला साहिब ने तबला सीखना आरम्भ किया। भारतीय शास्त्रीय संगीत की अखण्ड सृजनात्मकता का मुझ पर गहन प्रभाव पड़ा। मेरे चहुँ ओर के मित्र या तो ऐंग्लोइंडियन परिवारों के बच्चे थे या भूरे साहिबों के और वो सब पश्चिमी गाने गाया करते थे। परन्तु मेरा रुझान भारतीय शास्त्रीय संगीत की ओर था। मैं सोचता हूँ भारतीय संगीत की सूझ–बूझ की नींव मुझमें मेरे जीवन के आरम्भिक वर्षों में ही पड़ी। मेरी बहन शशि गाया करती थी और श्रीमाताजी की भी अत्यन्त मधुर आवाज़ थी जो उन्होंने बाद में सहजयोग प्रचार–प्रसार के लिए दिए गए असंख्य भाषणों के कारण खो दी। तबला बजाने की मैंने कोई औपचारिक शिक्षा ग्रहण नहीं की परन्तु मेरे स्वाभाविक रुझान ने बचपन में मुझे एक विशेष स्तर तक तबला बजाने की योग्यता प्रदान की।

इस घर से श्रीमाताजी हर सुबह माँ लोड्रस (Mother Lodrus) के मन्दिर तक पैदल जाया करती थीं। मैं सदैव उनका साथी होता। वे मंदिर के कोने में बैठकर ध्यान किया करतीं, या कम से कम मैं ऐसा सोचा करता था, परन्तु हाल ही में उन्होंने मुझे बताया कि ''वहाँ बैठकर वो इस बात पर विचार किया करती थीं कि सामूहिक कुण्डलिनी जागृति द्वारा किस प्रकार वे संसार के लोगों को उनकी समस्याओं से मुक्ति दिलवा सकती हैं।'' मंदिर में जो चीज़ मुझे वास्तव में प्रभावित किया करती थी वह थी माँ लोड्रस की प्रतिमा जिसके स्थान पर अब कोई और प्रतिमा लगा दी गई है।'' इस प्रतिमा की श्रीमाताजी से इतनी समानता थी कि मैं सोचता था प्रतिमा बनाते हुए प्रतिमाकार की कल्पना में श्रीमाताजी ही रही होंगी। प्रात:काल की हवा इतनी शक्ति तथा ताज़गी प्रदायक होती थी कि प्राय: मैं उस शक्ति को उपयोग करने के लिए श्रीमाताजी से आगे–आगे दौड़ा करता था। प्रात: भ्रमण के बाद श्रीमाताजी भी अत्यन्त स्फूर्त प्रतीत होतीं।

स्थानीय स्कूल में पढ़ने वाले ईसाई धर्म प्रचारकों ने यह मंदिर बनाया था परन्तु यहाँ स्थापित देवी किसी जाति या धर्म की प्रतिनिधि नहीं है। वास्तव में गरीब, गैर ईसाई जातियों के लोग अपनी मनोकामनाओं को प्राप्त करने तथा देवी से प्रसारित होने वाली शान्ति एवं प्रेम को प्राप्त करने के लिए उसकी पूजा करते हैं। आज भी हजारों लोग उस देवी की पूजा करने के लिए जाते हैं।

यद्यपि हम लोग ऐंग्लोइण्डियन और भूरे साहिबों के इलाके में रहते थे जहाँ पर मिशनरियों द्वारा चालित बहुत से स्कूल थे। परन्तु मेरे माता–पिताजी नहीं चाहते थे हम इन पाठशालाओं में जाएं। मेरी पाठशाला तो घर के बिल्कुल समीप थी परन्तु बाकी बच्चों को पढ़ने के लिए बहुत दूर स्थित पाठशालाओं में जाना पड़ता था। घर का अनुशासन था कि पाठशाला चाहे बहुत दूर हो फिर भी बच्चों को पैदल भेजना है। श्रीमाताजी और मेरी बहन शान्ताबाई को भी पैदल पाठशाला जाना पड़ता था। घर नागपुर स्थानांतरित करने का मेरे पिताजी के लिए एक महत्वपूर्ण कारण ये था कि बच्चों को अच्छी शिक्षा दी जा सके जो छिंदवाड़ा में उपलब्ध न थी। सेन्ट उर्सुल्स (St.Ursulas) स्कूल में प्रारम्भिक शिक्षा उपलब्ध थी। श्रीमाताजी ने भिड़े कन्या उच्च विद्यालय (Bhide Girls High School) में प्रवेश लिया जो सीता बर्दी (Sita Burdy) क्षेत्र में स्थित था। ये स्कूल हमारे घर सदर हाऊस से काफी दूर था–लगभग छः सात किलोमीटर दूर। परन्तु जैसे मैंने बताया है बच्चों को सारी दूरी पैदल तय करनी पड़ती थी। दूरी को कम करने के लिए श्रीमाताजी और शान्ताबाई, सीताबर्दी टेकड़ी नामक पहाड़ी पर चढ़ जातीं जिससे स्कूल जाने की दूरी घट जाती। वे पहाड़ी चढ़ाई का आनन्द भी लेतीं। एक बार मानसून के मौसम में मूसलाधार बारिश हुई थी और बरसाती नाला जो कि प्रायः सूखा हुआ होता था वर्षा के पानी से लबालब भरा हुआ भयानक तेज गति से बह रहा था हमारी कार क्योंकि मरम्मत के लिए गई हुई थी तो उन दोनों को स्कूल से सुरक्षित लाने के लिए एक व्यक्ति को भेजा गया। जब वो टेकड़ी को पार कर रहे थे तो काले बादल उमड़ पड़े और पलक झपकते ही मूसलाधार बारिश होने लगी। जब तक वे उस नाले पर पहुँचे नाला लबालब भर चुका था। उसके धारा प्रवाह की तेज़ी को देखते हुए शान्ताबाई उसे पार नहीं करना चाहती थी। परन्तु श्रीमाताजी नाले को पार करने के लिए दृढ़ संकल्प थीं। जैसा हम सब जानते थे शान्ताबाई अत्यन्त भीरु बालक थी, वे खतरों से बहुत घबराती थीं। परन्तु श्रीमाताजी उनसे बिल्कुल उलट थीं– अत्यन्त बहादुर और खतरों से निडर। शान्ताबाई की हालत को देखते हुए नौकर ने उसे अपनी बाजुओं में उठा लिया और नाला पार करवाया। नाला पार करके नौकर मुड़कर श्रीमाताजी की सहायता के लिए जाने ही वाला था तो उसे एक चीख सुनाई दी। ऐसा प्रतीत होता है अकेले नाला पार करने के लिए श्रीमाताजी

ने निर्णय किया परन्तु उन्हें महसूस हुआ कि नाले का बहाव बहुत तेज है। जब वो धारा में बहने लगी तो उन्होंने एक पेड़ को कसकर पकड़ लिया। उन्हें नाले से निकालने के लिए नौकर तुरन्त वहाँ पहुँचा। तो आरम्भ से ही श्रीमाताजी का स्वभाव इतना साहसी था।

जब भी अवसर मिलता वो पैदल चलना पसन्द करतीं जबकि शान्ताबाई कार से या टाँगे से जाना पसन्द करतीं। श्रीमाताजी को नंगे पांव चलने की भी आदत थी। मेरी माँ उन्हें चप्पल पहनकर चलने के लिए कहा करतीं परन्तु रास्ते में श्रीमाताजी चप्पल उतार कर हाथ में पकड़ लेतीं और नंगे पांव चलतीं। गरीबों के प्रति वे अत्यन्त सुहृद एवं करुणामय थी। उनमें गहन धैर्य भी था। एक बार जब एक गरीब मित्र ने कहा कि उसके घर में खाने के लिए अन्न न था तो श्रीमाताजी ने अपने घर के अन्न भण्डार से अनाज की भरी बोरियां उस सहेली को दे दी। मेरे माताजी को इस बात से परेशानी हुई परन्तु श्रीमाताजी के उदार हृदय के विषय में वे जानती थीं, इसलिए उन्होंने उनकी इस गलती को सहन कर लिया। वे सदैव हमें बताया करती थी कि श्रीमाताजी गरीबों के कष्टों को देखकर बहुत विचलित हो जाती हैं और उनकी आँखों से आँसू बहने लगते हैं। ये आँसू कभी–कभी तो बहकर उनके गालों से नीचे गिरते हैं।

ऐसे बहुत से उदाहरण हैं जब लोगों ने अपने दुखों और कष्टों का दिखावा करके श्रीमाताजी के इस करुणामय स्वभाव का दुरुपयोग किया। परन्तु वे कभी भी अपनी इस उदारता में पीछे न हटीं, यद्यपि वे जानती थी कि उनकी अच्छाई का दुरुपयोग किया जा रहा है।

श्रीमाताजी बहुत अच्छी उपचारिका (Nurse) भी थी। जब बाला साहिब टाइफाइड से पीड़ित थे तो हर समय वे अपनी माताजी के साथ उनकी सेवा सुश्रुषा में जुटी रहती थीं। उनका ज्वर नीचे रखने के लिए उनके सिर पर बर्फ की पट्टी रखी जाती थी। बीमारी के कारण वे लगभग एक महीना बातचीत करने के काबिल भी न थे। मेरे पिताजी जो उन दिनों में मेयर थे उन्होंने हमें नागपुर से पन्द्रह किलोमीटर दूर स्थित कैम्पटी (Kamptee) स्थानांतरित करने का निर्णय किया। बाला साहिब क्योंकि बोल न पाते थे, श्रीमाताजी ने इशारों की भाषा विकसित की। यदि वे दो उंगलियाँ उठाते तो इसका मतलब होता उन्हें जो खाने को दिया जा रहा है उसके लिए वे सहमत हैं और यदि वे एक उंगली उठाते

तो इसका मतलब इन्कार होता। इन दिनों वे रॉर्बट ब्लेक (Robert Blake) और सैक्सटन ब्लेक (Sexton Blake) की पुस्तकें पढ़ा करते। श्रीमाताजी ने एक दिन उनसे पूछा कि वो कौन सी पुस्तक पढ़ना चाहेंगे? तो वो बुदबुदाए, ''सेक्सटन ब्लेक''। इस तरह उन्होंने अपनी सेवा सुश्रुषा से बाला साहिब को बोलने लायक बनाया। अगली बार उन्होंने बाला साहिब से पूछा कि वो किसका संगीत रिकार्ड सुनना चाहेंगे और श्रीमाताजी ने बहुत से संगीतज्ञों के नाम लिए। अत्यन्त कठिनाई पूर्वक उन्होंने पन्ना लाल घोष का नाम लिया और उसके पश्चात् वे बहुत अच्छी तरह से बोलने लग पड़े।

मेरे माताजी पाँच बार जेल गए और पूरी गृहस्थी का दायित्व उस समय श्रीमाताजी पर होता।

राजनीतिक मोर्चे पर वर्ष १९३९ से १९४१ में कांग्रेस ने बहुत से उतार चढ़ाव देखे। वर्ष १९३९ में जबलपुर के समीप नर्मदा नदी के तट पर त्रिपुरी में कांग्रेस का एक अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में मेरे पिताजी, जो कि त्रिपुरी कांग्रेस कमेटी के सदस्य थे, मेरे माताजी और श्रीमाताजी के अतिरिक्त मुझ सहित परिवार के सभी सदस्यों ने भाग लिया। यद्यपि उस समय मैं केवल छः वर्ष का था परन्तु मुझे वहाँ पर एकत्र हुए विशाल जनसमूह की स्पष्ट याद है। जवाहर लाल नेहरु, वल्लभ भाई पटेल, मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद और, निःसन्देह, गाँधीजी को मंच पर बिठाया गया। यह वह समय था जब मेरे माता–पिताजी की वारधा यात्राओं की आवृत्ति बढ़ गई। गाँधीजी श्रीमाताजी को 'नेपाली' कहकर बुलाया करते थे क्योंकि उनका कहना था कि उनके (श्रीमाताजी के) नैन–नक्श सीताजी जैसे हैं जिनका जन्म नेपाल में हुआ था। मेरे पिताजी जब परिवार के सभी सदस्यों के साथ गाँधी जी से मिलने गए तो गाँधी जी ने कहा, ''आपके कौन से बच्चे को मैं राष्ट्र के कार्यों के लिए ले लूं और उन्होंने श्रीमाताजी को चुना। सात वर्ष की आयु में ही श्रीमाताजी को महात्मा का बहुत प्रेम तथा प्रशंसा प्राप्त हो गई।

इन दिनों में श्रीमाताजी तथा अन्य बच्चों ने अपनी शिक्षा जारी रखी। प्राथमिक स्कूल में श्रीमाताजी को एक नृत्य में श्री कृष्ण की भूमिका करने के लिए चुना गया और उन्होंने ये भूमिका इतनी अच्छी तरह से की कि लोग उन्हें कृष्णा बुलाने लगे। मेरे पिताजी के मित्र भी उन्हें 'कृष्णा' कहकर बुलाते।

१९३८/१९३९ के शैक्षिक वर्ष में श्रीमाताजी भिड़े कन्या उच्च विद्यालय (Bhide Girls High School) में दसवीं कक्षा में (मैट्रिक पूर्व) पढ़ रहीं थीं। विद्यालय विशेष रूप से ब्राह्मण लड़कियों के लिए था। श्रीमाताजी वहाँ प्रसिद्ध थीं। ईसाई होने के कारण ब्राह्मण लड़कियाँ उनके साथ खाना खाने से घबराती थीं। परन्तु उनका खाना उन्हें बहुत अच्छा लगता था। स्कूल के पीछे छिपकर वे उनके साथ खाना खातीं। हाल ही में उनके मित्रों ने एक बहुत बड़े स्वागत समारोह में उनका अभिनन्दन करना चाहा परन्तु उन्होंने इसे टाल दिया। वे अत्यन्त मेधावी छात्रा थीं तथा भाषाओं और गणित का उन्हें अच्छा ज्ञान था। उनके गणित के अध्यापक एक ब्राह्मण थे और कक्षा में श्रीमाताजी एकमात्र ईसाई लड़की थीं। अध्यापक को अपनी चापलूसी तथा प्रशंसा बहुत पसन्द थी। परन्तु श्रीमाताजी को किसी की अनावश्यक प्रशंसा या खुशामद करना कभी न भाता था। परिणामस्वरूप अध्यापक को उनमें अरुचि हो गई और वो बात–बात में जातिप्रथा के विरुद्ध स्पष्टवादिता पर उन पर व्यंग्य करने लगे। एक समय पर अध्यापक की घृणा श्रीमाताजी के प्रति इतनी बढ़ गई कि श्रीमाताजी के गणित के सभी प्रश्न हल कर लेने के बावजूद भी उन्होंने श्रीमाताजी को गणित की अन्तिम परीक्षा में असफल घोषित कर दिया। ईर्ष्यालु दृष्टिकोण के कारण ऐसा किया गया था। श्रीमाताजी ने सभी कुछ मेरे माता–पिताजी को बताया और मेरे माता–पिताजी श्रीमाताजी के साथ अध्यापक से मिलने गए। मुख्य अध्यापक फर्ग्युसन कॉलेज, पूना (Ferguson College) में मेरे माताजी से अवर था। इसलिए मेरी माताजी विश्वस्त थीं कि वे उन्हें समझा पाएंगी। परन्तु जो घटित हुआ वह मेरी माताजी की आशाओं के बिल्कुल विरुद्ध था। यदि वह गणित विषय लेना चाहती हैं तो अध्यापक ने उन्हें अगली कक्षा में बिठाने से साफ इन्कार कर दिया। मेरी माताजी तथा श्रीमाताजी ने उनके पर्चे की पुन: जाँच करने की प्रार्थना की परन्तु मुख्यअध्यापक ने इसके लिए भी इन्कार कर दिया। मुख्यअध्यापक का पक्षपात पूर्ण दृष्टिकोण देखकर मेरे माता–पिताजी ने श्रीमाताजी को सेवा–सदन नामक स्कूल में भेजने का निर्णय किया। उस स्कूल के मुख्यअध्यापक श्री गरुड़ मेरे पिताजी के अच्छे दोस्त थे और वे श्रीमाताजी को दसवीं कक्षा में लेने के लिए तुरन्त तैयार हो गए। उनकी दसवीं कक्षा मैट्रिक के समकक्ष थी। इस प्रकार श्रीमाताजी को अपनी शिक्षा का एक वर्ष खोना न पड़ा।

सदैव वे विद्यालय में मंचित नाटकों में भूमिका करने पर इनाम जीततीं तथा वे स्कूल की मुखिया थीं। श्री गरुड़ ने उन्हें छात्रावास में ही ठहराया। श्री गरुड़ ब्राह्मण थे और शाकाहारी थे। श्रीमाताजी के लिए वे दो अण्डे उबालते और कोट की जेब में छिपाकर चुपके से श्रीमाताजी को खाने के लिए दे देते और बाद में अण्डों के छिलके फेंकने के लिए भी चुपके से उनसे ले लेते। वे मेरे पिताजी के बहुत अच्छे दोस्त थे। वे श्रीमाताजी का बहुत ध्यान रखते क्योंकि श्रीमाताजी सेवासदन छात्रावास में रह रही थीं जो कि पूरी तरह से शाकाहारी था।

वर्ष १९४० में श्रीमाताजी ने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। उन्हें मराठी और अंग्रेजी भाषा तथा गणित में विशिष्टता (Distinction) प्राप्त हुई। उन्हें बहुत अच्छे नम्बर प्राप्त हुए थे इसलिए विज्ञान में प्रवेश प्राप्त करना अब कोई समस्या न थी। जैसे पहले वर्णन किया जा चुका है, विज्ञान में उनकी बहुत रुचि थी। वे कहा करती थीं कि भारत में अच्छे चिकित्सकों की बहुत आवश्यकता है। विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्र में। परन्तु अब ऐसा लगता है कि चिकित्सा विज्ञान का अध्ययन उन्होंने इसलिए किया था कि वे कुण्डलिनी की गतिविधियों का वर्णन बुद्धिवादी तथा चिकित्सक लोगों से भली–भांति कर सकें। आयुर्वेद ने कुण्डलिनी का वर्णन किया है परन्तु कहा गया है कि इसकी जागृति सर्व–साधारण मानव की पहुँच से ऊपर की चीज़ है।

उनके बड़े भाई नरेन्द्र लखनऊ विश्वविद्यालय में पढ़ रहे थे और उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय की ये कहते हुए बहुत सराहना की थी कि यहाँ शिक्षा का स्तर नागपुर विश्वविद्यालय के मुकाबले बहुत अच्छा तथा ऊँचा है। मेरे माता–पिताजी क्योंकि अपने बच्चों को सर्वोत्तम शिक्षा देना चाहते थे, उन्होंने श्रीमाताजी को लखनऊ भेजने का निर्णय किया। परिणामस्वरूप श्रीमाताजी ने लखनऊ के ईसा बैला थोबान महाविद्यालय (Isa Bella Thoban College I.T.College) में प्रवेश लिया। मुझे याद है कि जब भी दिवाली या क्रिसमस की छुट्टियों के लिए वे घर लौटतीं तो सदैव परिवार के सभी सदस्यों के लिए उपहार लेकर आतीं। परन्तु मेरे भाई भी, जो छुट्टियों के लिए वापिस आया करते थे, हमेशा खाली हाथ आते। वो कहते कि जो पैसा उन्हें भेजा जाता था उससे तो उनकी जरुरतें भी पूरी नहीं होती, यद्यपि श्रीमाताजी को उनसे कम पैसा मिलता था फिर भी वो हमारे लिये उपहार खरीदने के लिए पर्याप्त रकम बचा लेती थीं।

परिणामस्वरूप हम सदैव अपने भाई की अपेक्षा श्रीमाताजी के वापिस आने की प्रतीक्षा करते। नि:सन्देह उपहार आनन्द का स्रोत हैं। परन्तु जो प्रेम और स्नेह वो हमें देती थीं हम सदैव उसका आनन्द लिया करते थे। मेरे बड़े भाई को कपड़ों का बहुत शौक था। वो बड़ा कोट लेना चाहते थे और इसके लिए वो मेरी माताजी के पीछे पड़ गए और मेरी माताजी को यह कोट उन्हें देना पड़ा। उनके प्रति वे बहुत सहिष्णु थीं और सदैव उन्हें अन्य बच्चों से अधिक देती थीं।

नागपुर में बैडमिंटन खेलते हुए श्रीमाताजी के दाएँ हाथ की हड्डी टूट गई। दिसम्बर की छुट्टियों में वार्षिक परीक्षा के समीप यह घटना घटित हुई। उनके साथ जब हम अस्पताल गए तो रागीलाल नाम के डॉक्टर ने उनकी बाजू को जोड़ा। उन्होंने श्रीमाताजी से पूछा कि क्या वह पीड़ा सहन कर सकेंगी, और बिना बेहोशी की दवा दिए डॉक्टर ने उनकी बाजू जोड़ दी। अत्यन्त अभिभूत होकर उन्होंने मेरे पिताजी से कहा कि उनकी पुत्री देवी दुर्गा हैं। श्रीमाताजी क्योंकि तब प्रथम वर्ष की छात्रा थीं और प्रथम वर्ष की परीक्षा विश्वविद्यालय की परीक्षा न होकर कॉलेज की परीक्षा होती है, उन्होंने अधिकारियों से प्रार्थना की कि उनके हाथ का पलस्तर खुलने के बाद उन्हें परीक्षा देने की आज्ञा दी जाए। महाविद्यालय के अधिकारियों ने उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की और परिणामस्वरूप बिना प्रथमवर्ष की परीक्षा दिए उन्हें नागपुर लौटना पड़ा। मेरे माता–पिताजी ने तब उन्हें स्थानीय विज्ञान महाविद्यालय (आजकल Institute of Science) में प्रवेश दिलाने का निर्णय किया। इस प्रकार वे नागपुर के विज्ञान महाविद्यालय (Science College) में जाने लगी।

इस समय, वर्ष १९३९–४० में, मेरे पिताजी की नियुक्ति सरकारी वकील के पद पर हुई। इस पद पर रहते हुए उन्होंने बहुत से मुकदमें लड़े। एक कत्ल का मुक़दमा था जिसे पारिस्थितिक साक्ष्य के रूप में आज भी मुख्य माना जाता है। मुक़दमा क्योंकि अत्यन्त दिलचस्प था इसलिए इसे मैं नीचे संक्षिप्त में वर्णन कर रहा हूँ।

एक ससुर ने गुजरात के गाँव से आई अबोध बालिका जो कि उसकी पुत्रवधू थी, के लिए नाजायज़ भावनाएं बना लीं। उसने पुत्रवधू को भयंकर परिणामों की धमकी दी और भय के कारण लड़की ने उसकी इच्छाओं के सम्मुख घुटने टेक दिए। बेटे (लड़की के पति) को पता लग गया और उसने

अपने पिता से कहा इस कुकृत्य के लिए वह उसे समाज के सम्मुख नंगा कर देगा। लज्ञा के कारण पिता ने अपने ही पुत्र की हत्या करने का निर्णय किया। मौका मिलते ही पिता ने एक खिड़की से शक्तिशाली लम्बी बंदूक से बेटे को पीछे से बहुत कम दूरी से गोली मार दी। गोली पीठ में से लगी और सीने से बाहर आ गई। परिणामस्वरूप बेटे की वहीं मृत्यु हो गई। इस सारी घटना को बेटे की पत्नी देख रही थी। पिता ने चिकित्सा अधिकारियों को रिश्वत देकर अपने पक्ष में रिर्पोट बनवा ली परन्तु पुलिस को अब भी उस पर सन्देह था। पुलिस के सत्यापित किए बिना ही मृत शरीर का संस्कार कर दिया गया और कत्ल के समय लड़के ने जो कमीज़ पहनी हुई थी वह नष्ट करने के लिए धोबी को दे दी गई।

बचाव पक्ष का कहना था कि बेटा अपनी जिंदगी से तंग था और उसने बंदूक की नाली अपने सीने पर रखकर पैर के अंगूठे से बंदूक का घोड़ा दबा दिया। लड़के की कमीज़ ही एक ऐसा साक्ष्य थी जो मुकदमे को अभियोजन के पक्ष में ला सकती थी। अत: मेरे पिताजी ने उस कमीज़ को खोजने के लिए जोर–शोर से तलाश शुरु की। परंतु बताया गया कि कमीज़ को कान्हा नदी में बहा दिया गया था। तीन–चार दिन की खोज के पश्चात् नदी में बहकर आई हुई लकड़ी पर उलझी हुई वह कमीज़ मिल गई। सौभाग्यवश कमीज़ में जिस स्थान से गोली घुसी थी और जहाँ से निकली थी वह दोनों ही सही सलामत थे। कमीज़ पर पीठ की तरफ बारूद का छिड़काव था और जहाँ से गोली घुसी थी वह छेद भी छोटा था। परन्तु आगे की तरफ जहाँ से गोली बाहर निकली थी वह छेद पीछे के छेद की अपेक्षा बड़ा था और कमीज़ में आगे की तरफ बारूद का छिड़काव न था। मेरे पिताजी ने सफाई में कहा कि नियमानुसार शरीर के जिस हिस्से से गोली प्रवेश करती है वहाँ छोटा सुराख होता है और जहाँ से बाहर आती है वहाँ अपेक्षाकृत बड़ा सुराख होता है। क्योंकि गोली की गति खांचे में होती है। उन्होंने बहस में ये भी कहा कि गोली यदि समीप से चलाई जाए तो कपड़े पर बारूद का छिड़काव हो जाता है क्योंकि कमीज़ के सामने की ओर बारूद का छिड़काव न था इसलिए प्रतिरक्षा पक्ष के वकील का ये कहना गलत है कि मृत व्यक्ति ने सीने पर बन्दूक की नाल रखकर घोड़ा दबा लिया था। प्रतिरक्षा वकील, बैरिस्टर केदार, का कहना ये था कि मेरे पिताजी की बहस तो ऐसी है मानो प्रक्षेपास्त्र

विशेषज्ञ (Ballistics Expert) हों। परन्तु क्योंकि मेरे पिताजी प्रक्षेपास्त्र विशेषज्ञ न थे, इसलिए उनका कथन मात्र सामान्य व्यक्ति की रॉय थी जिसे स्वीकार करना अदालत के लिए आवश्यक न था।

न्यायाधीश, जो कि अंग्रेज था, अत्यन्त निष्पक्ष था। उसने मेरे पिताजी के सारे साक्ष्य और बहस को बम्बई पुलिस और फिर स्काटलैण्ड यार्ड को भेजा। दोनों संस्थाओं के प्रक्षेपास्त्र विशेषज्ञों ने मेरे पिताजी के सिद्धान्त से पूरी सहमति जताई और इस प्रकार पारिस्थितिक साक्ष्यों के माध्यम से अभियुक्त को आजीवन कारावास का दण्ड मिला।

वर्ष १९४२ के आरम्भ में गाँधी जी ने देखा कि अंग्रेजों के साथ सौदेबाजी करना बेकार होगा, इसलिए उन्होंने 'भारत छोड़ो आन्दोलन' आरम्भ करने का निर्णय लिया। उन्होंने सभी कांग्रेस कार्यकर्ताओं से कहा कि अंग्रेजी कानून से असहयोग एवं उसकी अवज्ञा को तेज कर दें। उस समय मेरे पिताजी सरकारी वकील थे और पहला कार्य जो था वह था अपने पद से त्याग पत्र देना। उच्च न्यायालय के शिखर पर बर्तानवी झण्डा (Union Jack) फहरा रहा था। गाँधीजी के अच्छे अनुयायी के रूप में वे उच्च न्यायालय की छत पर चढ़े और बर्तानवी झण्डे को फाड़ डाला। उन्होंने हमें कहा कि हम सब 'वन्दे मातरम्' गाएं। अंग्रेज सिपाहियों ने उनकी बाईं कनपटी पर गोली मारी, तेजी से उनका रक्त बह रहा था परन्तु उन्होंने तिरंगा फहराया और तब तक खड़े रहे जब तक तिरंगा लहराने न लगा। तब उन्होंने जोर से 'वन्दे मातरम्' का नारा लगाया और झण्डे को सलाम किया। उनकी इस कारगुज़ारी से अंग्रेज शासक बहुत चिढ़ गए थे। समय से पूर्व ही मेरे पिताजी घर लौट आए और आकर मेरी माताजी से कहा कि आज वह कुछ मेहमानों के आने की आशा कर रहे हैं इसलिए वे बिरयानी बनाएं। मेरी माताजी जानती थी कि 'मेहमानों' से उनका क्या अर्थ है क्योंकि वह उन्हें पहले ही बता चुके थे कि उनकी कनपटी पर गोली मारी गई है और ये भी कि अंग्रेज अब और प्रतीक्षा न करेंगे।

इस घटना का मुझे स्पष्ट स्मरण है। शनिवार का दिन था और तीन बजे तक मेहमान न आए थे। मेरे पिताजी ने बच्चों को कहा कि पैलेस थियेटर जाकर सिनेमा देखें। पैलेस सिनेमा हमारे घर के बहुत समीप था, आजकल इसका नाम टॉकीज़ है। परन्तु मैं घर पर ही रुक गया क्योंकि सिनेमाहॉल का अंधेरा मुझे

अच्छा न लगता था। ३.३० बजे सांय श्री.मुश्ताक अहमद, जो कि परिवार के मित्र थे और पुलिस इंस्पेक्टर भी थे, अपने सहायकों के साथ आए। मेरे पिताजी ने दोनों हाथों से उनका स्वागत किया, जैसी उनकी परम्परा थी, और उन्होंने मेरी माताजी को खाना लगाने के लिए कहा। इसी दौरान उन्होंने मुझे अपने भाई–बहनों को लाने के लिए भेजा। नौकर के साथ थियेटर जाकर मैं मैनेजर से मिला और उससे प्रार्थना की कि पर्दे पर एक स्लाइड दिखाए। स्लाइड पर लिखा गया था, ''पी.के.साल्वे को गिरफ्तार किया जा रहा है, उनके बच्चे तुरंत घर लौट जाएं।'' ज्यों ही पर्दे पर स्लाइड दिखाई गई बच्चों के साथ–साथ सारे दर्शक बन्दी पी.के. साल्वे के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए बच्चों के साथ निकल पड़े। सारे बच्चे जब एकत्र हुए तो मेरे पिताजी ने बच्चों से कहा कोई भी रोए नहीं। रोने के स्थान पर जोर से चिल्लाएं 'वन्दे मातरम्' अर्थात् हे मातृभूमि मैं आपको नमन करता हूँ। यह गीत बंकिम चंद्र ने लिखा था और स्वतंत्रता प्राप्त करने के पश्चात् भी इसे राष्ट्रीय गीत के रूप में उपयोग किया गया। परन्तु कुछ मुसलमान नेताओं ने इस पर एतराज किया क्योंकि यह संस्कृत में लिखा गया था और इसमें मातृभूमि का यश देवी दुर्गा के रूप में गाया गया था। अत: सभी भारतीय स्वतंत्रता सेनानियों के ह्रदय को धड़काने वाले इस महान गीत को सरकार ने स्वीकार किया।

मेरे पिताजी ने तब इंस्पेक्टर से पूछा कि क्या वो उन्हें हथकड़ी लगाकर ले जाना चाहेंगे? इंस्पेक्टर पूर्णतया अवाक हो गया था। कहने लगा, ''साल्वे साहिब आपको बंदी बनाने का बोझ मेरी सत्यनिष्ठा पर पड़ रहा है। कृपा करके हथकड़ी लगाने को कहकर मेरे अन्दर के दोष भाव को न बढ़ाएं। तत्पश्चात् मेरे पिताजी ने पूछा कि क्या वह उन्हें अपनी वैन में ले जाना चाहेगा या हमारी कार में। हमारी एक सुन्दर शैवरलेट कार थी और श्री.मुश्ताक अहमद ने कहा कि उन्हें उस कार में मेरे पिताजी को ले जाते हुए अच्छा लगेगा। मेरे पिताजी ने ड्राइवर को कार की छत पीछे करने को कहा। उनके दोनों तरफ दो सिपाही बैठे थे और बीच में खड़े होकर वो ज़ोर से चिल्लाए 'वन्दे मातरम्' और कार जब चलने लगी तो बहुत दूर तक जनता की भीड़ उसके साथ गई। रोने के स्थान पर अपनी अश्रुपूर्ण आँखों के साथ मेरी माँ चिल्लाई 'वन्दे मातरम्'। ऐसी थी मेरे पिताजी की देशभक्ति। और यही कारण है कि हम सारे भाई बहन, विशेष रूप से

श्रीमाताजी, अपने पिताजी का गहन सम्मान करते हैं।

अगस्त १९४२ में मेरे पिताजी जेल में थे और परिवार के सम्मुख आर्थिक समस्याएं थीं। इस स्थिति में श्रीमाताजी, जो कि साइन्स कॉलेज में पढ़ रहीं थीं, ने हमारे स्वाधीनता दिवस १५ अगस्त के दिन कॉलेज छोड़ने का निर्णय किया और कॉलेज के द्वार पर ही धरना दिया। मेरी माताजी यद्यपि पुराने विचारों की थीं फिर भी उन्होंने श्रीमाताजी की राजनीतिक गतिविधियों का विरोध नहीं किया। विरोध के रूप में श्रीमाताजी ने धरना देने का तथा कॉलेज में प्रवेश करने वाले सभी विद्यार्थियों को रोकने का निर्णय किया। कॉलेज के प्रधानाचार्य परिवार के अच्छे मित्र थे परन्तु उन्हें अंग्रेज अधिकारियों की आज्ञा थी कि धरना देने वाले तथा महाविद्यालय के नियमों का उल्लंघन करने वाले सभी लोगों को निकाल दिया जाए। उपप्रधानाचार्य श्री.कृष्णमूर्ति को भेजा गया कि श्रीमाताजी को रोकें और उन्हें बताएं कि अब यदि उन्होंने धरना दिया तो उन्हें कॉलेज छोड़ने का प्रमाणपत्र दे दिया जाएगा। निकाले जाने का अर्थ उन दिनों ये होता था कि आप किसी अन्य कॉलेज में भी प्रवेश नहीं ले सकेंगे। श्रीमाताजी के सम्मुख जब ये बात रखी गई तो श्रीमाताजी ने कहा कि अंग्रेजों द्वारा चलाए गए कॉलेज के अधिकारियों का एहसान लेने के स्थान पर वे कॉलेज से निकाला जाना पसन्द करेंगी। धरना देने से श्रीमाताजी को रोक पाने से असफल होकर श्रीकृष्णमूर्ति वापिस प्रधानाचार्य श्री.शाब्दे के पास लौटे। प्रधानाचार्य अंग्रेजों के पक्ष में थे और उन्होंने विद्यार्थियों को कक्षा में आने से रोकने की अवज्ञा के लिए प्रेरित करने और कॉलेज को चलाए जाने का विरोध करने के जुर्म में, श्रीमाताजी को कॉलेज से निकाले जाने का पत्र (Letter of Rustication) पकड़ाया। दिलचस्प बात ये है कि सेवानिवृत्त होने के पश्चात् श्रीकृष्णमूर्ति पुणे में बस गए। मेरे विचार से वर्ष १९९१ में वृद्ध श्रीकृष्णमूर्ति श्रीमाताजी से मिले, उनके चरण कमलों को छुआ और कहा कि ऐसे दिव्य व्यक्ति को कॉलेज से निकालने के लिए वे आज भी लज्जित हैं। परन्तु श्रीमाताजी के चरण स्पर्श करने से उनके सारे पाप धुल गए। उनकी इस भंगिमा से श्रीमाताजी का हृदय बहुत आड़ोलित हुआ और उन्होंने कहा कि उस समय उन्होंने जो किया था वह कॉलेज के प्रति कर्तव्य था और जो उस समय श्रीमाताजी ने किया था वह उनका राष्ट्र के प्रति कर्तव्य था। इसलिए किसी ने भी अपराध नहीं किया। श्रीमाताजी के मन में

उनके प्रति किसी भी प्रकार का गिला शिकवा न था क्योंकि श्रीकृष्ण मूर्ति तो अत्यन्त सज्जन व्यक्ति थे। वे कहने लगे कि जब उन्होंने श्रीमाताजी को निर्भीकता पूर्वक अंग्रेज सिपाहियों और उनकी बन्दूकों का सामना करते हुए देखा तो उनके मन में एक ही विचार आया कि वे दुर्गा अवतार हैं।

उन्हें कॉलेज से निकाले जाने का एक और भी कारण था। श्री.पॉल नामक एक व्यक्ति हमारे परिवार के अच्छे मित्र थे और वे शिक्षा निदेशक भी थे। उनका बेटा कॉलेज में श्रीमाताजी की कक्षा में सहपाठी था। जिस दिन श्रीमाताजी धरना दे रही थीं उन्होंने छोटे पॉल से कहा यदि वह सच्चा भारतीय है तो वह कक्षा में नहीं जाएगा और धरना देने में उनकी मदद करेगा। छोटे पॉल ने जो कि भूरे साहिबों (Brown Sahib) का विशेष उदाहरण था श्रीमाताजी का साथ देने से साफ इन्कार कर दिया और खुल्लम–खुल्ला गाँधीजी और उनके अहिंसात्मक आन्दोलन की आलोचना की। उसने ये भी कहा कि अंग्रेजों के शासन में वह बहुत प्रसन्न है तथा अहिंसात्मक आन्दोलन से भारत किसी भी प्रकार स्वतंत्रता प्राप्त नहीं कर सकता। उसने आगे कहा, कि भारतीय देश को नहीं चला सकते क्योंकि उनमें इसकी योग्यता ही नहीं है। उसकी बात सुनकर श्रीमाताजी और उनकी सहेलियों ने अपनी चूड़ियाँ उतारीं और उसे पेश की। भारत में पुरुषों का चूडियाँ पहनना पुरुषत्वहीनता, कायरता और भीरुता का पर्याय माना जाता है। छोटे पॉल को इस बात पर बहुत क्रोध आया और उसने इस मामले की शिकायत अपने पिता से की। श्री.पॉल यद्यपि परिवार के मित्र थे फिर भी उन्होंने श्रीमाताजी को कॉलेज से निकलवा दिया।

एक अन्य घटना का भी मैं वर्णन करना चाहूँगा। एक दिन श्रीमाताजी ने सेन्ट उर्सुला हाई स्कूल (St.Ursula School) के सम्मुख धरना देने का निर्णय किया। ये वही स्कूल है जिसमें मेरे माताजी वर्ष १९१९ में मुख्य अध्यापिका थीं। भारत का झण्डा हाथ में पकड़कर श्रीमाताजी स्कूल के मुख्य द्वार के सामने खड़ी हुईं थीं और विरोध के रूप में विद्यार्थियों से अनुरोध कर रहीं थीं कि वे घर वापिस चले जाएं। दूर–दूर के इलाकों से बच्चों को लेकर आने वाली एक बस की वे प्रतीक्षा कर रही थीं। ज्यों ही उन्होंने बस को आते हुए देखा तो वे स्कुल के गेट के ठीक सामने ज़मीन पर लेट गई ताकि बस स्कूल के अहाते में प्रवेश न कर सके। स्कूल अधिकारियों ने जब ये सब कुछ घटित होते हुए देखा तो उन्होंने

एक चपरासी को भेजकर बस को गेट से सौ गज़ दूरी पर रुकवा लिया। मैं श्रीमाताजी के बिल्कुल समीप खड़ा हुआ था और मैं ये बात सहन न कर सका कि वे बिना कुछ बिछाए इस तरह से ज़मीन पर लेट जाएं, इसलिए मैंने दौड़कर घर जाने का प्रयत्न किया ताकि दरी ला सकूं। मैं जब घर की ओर दौड़ता हुआ जा रहा था तो मैंने चपरासी को ड्राइवर से कहते हुए सुना कि बस को स्कूल लाने के लिए दूसरा रास्ता ले लें। जो भी हो मेरी पहली प्राथमिकता श्रीमाताजी के लिए दरी लाना था, इसलिए मैं दौड़कर घर पहुँचा और तुरन्त एक दरी उठाकर स्कूल के लिए दौड़ पड़ा। लेकिन जब मैं वापिस आया तो श्रीमाताजी के चारों ओर पुलिस को खड़े देखा। बस ने दूसरी ओर के दरवाजे से स्कूल के अन्दर प्रवेश करने के लिए एक अन्य सड़क पकड़ ली थी। श्रीमाताजी झण्डा उठाकर खड़ी हुई थीं और नारे लगा रही थीं, 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' तत्पश्चात् वैन में बिठाकर श्रीमाताजी को थाने ले जाया गया और वहाँ बर्फ की सिल्लियों पर लिटाकर यातनाएं दी गईं। उन्होंने श्रीमाताजी को बिजली के झटके (Electric Shocks) भी दिए। चेतावनी देकर पुलिस ने श्रीमाताजी को छोड़ दिया कि यदि उन्होंने अंग्रेज विरोधी नारे लगाए या किसी संस्था के सामने उन्होंने धरना दिया तो उन्हें जेल में डाल दिया जाएगा। उनकी तुरन्त प्रतिक्रिया यह थी कि बिना स्वतंत्रता के भारतीय पहले से ही जेल में हैं, इसलिए वो जेल के अंदर होंगे या बाहर उन्हें क्या फर्क पड़ता है।

उन्हें कॉलेज से निकाला जा चुका था और राज्य के किसी अन्य कॉलेज में प्रवेश लेने की आज्ञा उन्हें न थी। घर पर खाली बैठे रहना उनके वश की बात न थी, विशेष रूप से जब 'भारत छोड़ो आन्दोलन' शिखर पर था। अन्तत: एक दिन उन्होंने मेरी माताजी के सम्मुख घोषणा की कि उन्होंने एक ऐसे दल में सम्मिलित होने का निर्णय लिया है जो गुप्त रूप से कार्य कर रहा है। ये समूह पुस्तिकाएं और पर्चे बाँट रहे हैं तथा इश्तिहार लगा रहे हैं।

मेरे माताजी अत्यन्त पुराने विचारों की महिला थीं और उन्होंने अपनी अठारह वर्षीय अत्यन्त सुन्दर बेटी को बिना किसी रक्षक के बाज़ार में अकेले जाने की आज्ञा न दी होती, परन्तु उसी माँ ने श्रीमाताजी को इस खतरनाक कार्य को करने की आज्ञा दे दी जिसके कारण उन्हें जेल हो सकती थी और यदि अंग्रेज गोली चालक दल से उनका सामना हो जाता तो उनकी जान भी जा

सकती थी। मेरी माताजी के लिए उनके बच्चे अत्यन्त बहुमूल्य थे, विशेषरूप से श्रीमाताजी। परन्तु देश की स्वतंत्रता उनके लिए बच्चों से भी अधिक बहुमूल्य थी तथा उनकी सर्वोच्च प्राथमिकता थी। अत: उन्होंने श्रीमाताजी को गुप्त रूप से कार्य करने की आज्ञा दे दी।

बहुत वर्ष पश्चात् एक शाम जब मैं अपनी माँ की सेवा कर रहा था और इस घटना की बात कर रहा था तो उन्हें छेड़ते हुए मैंने कहा, 'उनके भिन्न मापदण्ड हैं' एक लड़कों के लिए, एक लड़कियों के लिए। मैंने उनसे कहा कि लड़कों के प्रति उनका व्यवहार बहुत कठोर है और लड़कियों के प्रति बहुत कोमल और उस छोटी उम्र में श्रीमाताजी को गुप्त रूप से कार्य करने की आज्ञा देना लड़कियों के प्रति उनकी प्राथमिकता का ज्वलंत उदाहरण है। पूर्ण गम्भीरता पूर्वक उन्होंने मुझे उत्तर दिया कि यद्यपि इतनी छोटी आयु में लड़की का गुप्त रूप से कार्य करना उन्हें पसंद न था परन्तु वर्ष १९४२ की परिस्थितियों में राष्ट्र को श्रीमाताजी की आवश्यकता उनकी माँ की अपेक्षा कहीं अधिक थी। उन्होंने मुझे ये भी बताया कि श्रीमाताजी दृढ़ चरित्र व्यक्ति हैं। अपने सिद्धांतों और विश्वास के विरुद्ध भी मेरी माताजी ने श्रीमाताजी को चोरी छिपे कार्य करने की आज्ञा दी थी।

बड़ी आयु का एक व्यक्ति ठाकुर निरंजन सिंह जो कि अंग्रेजों को उखाड़ फेंकने के लिए कृत–संकल्प था श्रीमाताजी के दल का नेता था। उनकी गुप्त गतिविधियों में एक गाँव से दूसरे गाँव, एक कस्बे से दूसरे कस्बे, एक नगर से दूसरे नगर जाकर लोगों में अंग्रेजों को भारत से निकाल फेंकने और स्वयं को दासता की जंजीरों से मुक्त करने की चेतना जागृत करना भी सम्मिलित था। उनके कार्यों में अंग्रेज विरोधी इश्तिहार बाँटना भी सम्मिलित था। मुझे याद है कि श्रीमाताजी हमारे घर में ऐसे इश्तिहार सम्भाल कर रखती थीं। रात को किसी भी अटपटे समय पर वे चुपके से घर में घुसतीं इश्तिहार उठातीं ओर चुपके से बाहर निकल जातीं। मुखबिरों से अंग्रेजों को सूचना मिली कि हमारे घर में किसी प्रकार की सरकार विरोधी गतिविधि चल रही है। अत: उन्होंने घर पर छापा मारा, परन्तु उन्हें कुछ भी न प्राप्त हुआ। मेरी माताजी इन इश्तिहारों को अनाज के भूसे के नीचे दबाकर रखती थीं क्योंकि उन्होंने घर में हाथ से निकाले हुए चावल और गुड़ बेचने की दुकान खोल ली थी। मेरी माताजी गाँधी द्वारा

ग्रामोद्योग संस्था की एजेंट के रूप में कार्य कर रहीं थीं।

परिवार में क्योंकि मेरे पिताजी ही कमाने वाले व्यक्ति थे, इसलिए परिवार की आय बहुत ही कम हो गई थी और बच्चों को ठीक से भोजन आदि देने के लिए, घर के रोज़मर्रा के खर्चे चलाने के लिए, घर की चीज़ें एक–एक करके बेची जाने लगीं। समस्या और भी बढ़ गई जब मेरी एक बहन शान्तशीला (शान्ताबाई) गर्मियों के अतिसार (Diarrhoea) से गम्भीर रूप से बीमार हो गईं। ये रोग कई बार जानलेवा भी हो सकता है। उनका इलाज करने के लिए मेरी माताजी को अपने कुछ गहने बेचने पड़े। स्थिति इतनी खराब थी कि अपने बड़े घर के बिल भी हम न चुका पाते थे।

१९४२–४३ के शैक्षिक वर्ष में हममें से कुछ को अपनी पढ़ाई छोड़नी पड़ी। ऐसा करने की मुझे आवश्यकता न पड़ी परन्तु किसी तरह से मैंने भी एक साल की पढ़ाई से मुक्ति पा ली। कॉलेज से निष्कासित हो जाने के कारण श्रीमाताजी का एक वर्ष खराब हो गया था परन्तु वे अपनी पढ़ाई को और राजनीतिक गतिविधियों को चालू रखने की बहुत इच्छुक थीं। वर्ष १९४२–४३ बहुत उथल–पुथल तथा परिवार के लिए भयानक कठिनाइयों का वर्ष था। जैसे पहले वर्णन किया गया है, पैसे की कमी के कारण माउंट रोड पर स्थित इतने बड़े घर के बिल और टैक्स दे पाने में हम असमर्थ थे। अत: हम लोग सीतावर्दी में बुती की चाल (Buti-ki-Chawl) नामक छोटे घर में चले गए। सभी बच्चों को मितव्ययता सिखाई गई और व्यर्थ के खर्चे से बचने के लिए कहा गया।

स्वतंत्रता संग्राम में श्रीमाताजी के गुप्त रूप से कार्य करने के दिनों के बहुत से दिलचस्प किस्से हैं। एक बार श्रीमाताजी को विस्फोटकों का एक ट्रंक अपने साथ ले जाना पड़ा। एक मित्र उनके साथ यात्रा कर रहा था। अचानक उन्हें पता लगा कि माधव आश्रम नामक जिस होटल में वे ठहरे हुए थे वहाँ पुलिस आने वाली है। श्रीमाताजी ने ट्रंक में रस्सी बांधकर उसे खिड़की के बाहर लटका दिया। पुलिस जब तलाशी लेने के लिए आई तो उसे कमरे से कुछ भी न मिला। एक बार फिर श्रीमाताजी को एक मित्र के साथ श्री बागड़ी, जो कि बहुत लम्बे व्यक्ति थे, को लेने जाना पड़ा। उन सबने मुसलमान औरतों का बुर्का पहना हुआ था। थाने के सामने जब वे गुजरे तो पुलिस इंस्पेक्टर ने उस लम्बी महिला के विषय में पूछा, इंस्पेक्टर जब इस मामले की रिपोर्ट देने के लिए अंदर गया तो

इनके कार चालक ने बहुत तेज़ गति से कार दौड़ा दी। कुछ दूरी तक पुलिस ने मोटर साईकिल पर इनका पीछा किया। चालक कार को एक जंगल में ले गया और घने जंगल में तीनों लोगों को उतार दिया। बिना भोजन के ये लोग तीन दिन वहाँ रहे। वहाँ पर पानी की एक सरिता थी जिसके सहारे ये जीवित रहे। तीन दिन बाद चालक कार लेकर आया और इन्हें वापिस बम्बई ले गया। एक बार ये बस से उज्ज़ैन जा रहे थे और उनके समीप ही निरंजन सिंह बैठा हुआ था। उससे जब पूछा गया कि यह लड़कियाँ कहाँ जा रही हैं तो उसने पुलिस को बताया कि अपने विवाह का फैसला करने के लिए जा रही हैं। वह जिनसे मिलने जा रहा था उनका नाम उसने नहीं बताया। अपने घर में उसने श्रीमाताजी और उनके मित्रों को अत्यन्त सम्मान से रखा। उसकी पत्नी के मन में श्रीमाताजी के लिए बहुत प्रेम उमड़ा और उसने उन्हें एक साड़ी भेंट की। श्रीमाताजी ने जब अपने मेज़बानों को अपने वहाँ आने का वास्तविक लक्ष्य बताया कि उन्हें वहाँ पर जेल से भागे हुए कुछ लोगों से मिलना है और उन्हें अपने साथ दिल्ली ले जाना है तो वे अत्यन्त भावुक हो उठे और कहा, ''यदि इतनी अबोध बालिकाएं देश की स्वतंत्रता के लिए लड़ रही हैं तो हम क्या कर रहे हैं,'' और वो लोग भी स्वतंत्रता संग्राम में सम्मिलित हो गए। तीन दिनों के पश्चात् ये दल कोटा के रास्ते कार द्वारा दिल्ली के लिए रवाना हुआ। कोटा में ये दो दिन रुके। श्रीमाताजी आज भी सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों से घिरी हुई कोटा की सुन्दर झील को याद करती हैं। पाँच भगोड़ों के साथ वे दिल्ली पहुँचीं और एक मित्र देशभक्त के घर पर रुकीं। गुप्त रूप से इन्हें यूनानी मैडिकल स्कूल में ले जाना था। सड़क पर बहुत से लड़के खड़े थे। ज्योंही उन्होंने युवा लड़कियों को आते देखा तो सभी बन्दरों की तरह से आचरण करने लगे, कुछ पेड़ों पर चढ़ गए, कुछ डालियों पर लटक रहे थे, कुछ ताली बजा रहे थे। घबराने के स्थान पर श्रीमाताजी जोर–जोर से हँसने लगी और उनकी निर्भीकता को देखकर सारे बन्दर नीचे आ गए। यह अत्यन्त विनोदमय स्थिति थी क्योंकि महाराष्ट्र में श्रीमाताजी ने ऐसी स्थिति कभी न देखी थी। वहाँ तो लोग महिलाओं का सम्मान करते थे। पहली बार श्रीमाताजी दिल्ली आए थे। वे जब घर पहुँचीं तो अत्यन्त प्रसन्न थीं। परन्तु हमारी माताजी ने कहा, कि वे बहुत दुर्बल हो गई हैं।'' श्रीमाताजी ने कहा, हमारी माँ ने यह बात इसलिए की थी ताकि वे लौट कर न जाएं। परन्तु अब ऐसी स्थिति न थी कि वे

अपने बढ़े हुए कदम वापिस ले लेतीं क्योंकि उन्होंने तो अपनी मातृभूमि को अंग्रेजों के शिकंजे से मुक्त कराने का बीड़ा उठाया था। नौ महीने तक वे फ़रार रहीं। निरंजन सिंह को गिरफ्तार करके कठोर कारावास का दण्ड दिया गया। एक दिन अचानक वो हमारे दरवाजे पर आया। कुछ अन्य फ़रार कार्यकर्ताओं की सहायता से वह जेल से भाग निकला था। श्रीमाताजी ने अपने शिक्षक (Tutor) को कहा कि उन्हें अपने घर पर छिपाये क्योंकि शिक्षक का घर बहुत दूर था। श्रीमाताजी की एक सहेली का घर हमारे घर के बहुत समीप था। इस सहेली के माध्यम से वो रोज निरंजन जी का खाना भिजवाती थीं। घर के पिछले दरवाजे से श्रीमाताजी निरंजन सिंह को मिलने जातीं ताकि पुलिस इस बात को जान न ले। परन्तु किसी तरह से इस गुप्त स्थान का पुलिस को पता लग गया। ये स्थान गुप्त गतिविधियाँ चलाने का मुख्यालय भी था। निरंजन सिंह को पुन: गिरफ़्तार कर लिया गया और उन्हें स्वतंत्रता के बाद ही मुक्त किया गया। जेल की इतनी लम्बी अवधि ने उन्हें अत्यन्त दुर्बल कर दिया और जेल से अपने घर गदरवाला आने के कुछ ही माह पश्चात् उनकी मृत्यु हो गई।

समाचार पत्रों में चीमोर अष्टि (Cheemor Ashti) के कत्ले आम के समाचार को पढ़कर श्रीमाताजी परेशान हो गईं। कुछ मित्रों के साथ उन्होंने इस स्थल का दौरा किया और आज तक उस भयानक दृश्य को वे भूल नहीं पाती जहाँ नन्हीं बालिकाओं का भी बलात्कार करके उनका कत्ल कर दिया गया था।

श्रीमाताजी जब बालकराम मैडिकल कॉलेज में शिक्षा प्राप्त कर रही थी तो देश का विभाजन घटित हुआ और पाकिस्तान में हिन्दुओं तथा गैर मुस्लिम लोगों का कत्लेआम होने लगा था। इन परिस्थितियों में श्रीमाताजी ने तुरन्त अपना कॉलेज छोड़ दिया। टाँगे में जब वो स्टेशन की ओर जा रही थीं तो उन्होंने कुछ हिन्दुओं का कत्ल करने के लिए उनके पीछे दौड़ती हुई एक बहुत बड़ी भीड़ को देखा। टाँगे वाला व्यक्ति बहुत अच्छा व्यक्ति था और उसने श्रीमाताजी को दूसरे मार्ग से ले जाकर सुरक्षित स्टेशन पहुँचाया। भारत में पहुँचने वाली उनकी अंतिम रेलगाड़ी थी जिसमें कत्लेआम न हुआ था।

आज तक भी श्रीमाताजी के हृदय में देश भक्ति की भावना इतनी गहन है कि जब भी वो राष्ट्रीय झण्डे को देखती हैं तो उनकी आँखों में आँसू आ जाते हैं।

आरम्भ में मेरे पिताजी को नागपुर जेल में रखा गया था जहाँ मैं अपनी माताजी के साथ उनसे मिलने जाया करता था। मेरी माताजी को उनसे दूर से ही मिलने की आज्ञा थी परन्तु छोटा होने के कारण मुझे जंगले के पास जाकर अपने पिताजी से मिलने की आज्ञा दे दी जाती थी। वर्ष १९४१ में मैं तबला बजाया करता था और अपने बड़े भाई बाला साहब के गुरु द्वारा दिए गए पाठ को ध्यानपूर्वक सुनता था। अपने घुटनों को बजाकर मैंने तबला बजाना आरम्भ किया और बाद में मेरे पिताजी ने मुझे तबला खरीद दिया था। जेल जाने से पूर्व वे स्वयं भी तबला सीखने लगे थे। हर सुबह वो मुझे अपने सामने बिठाकर रियाज़ करवाते और खुद भी अभ्यास करते। सातवर्ष की कोमल आयु में मेरे लिए तबले के सभी बोल, मुखड़ा और कायदा लिख पाना कठिन न था। मैंने इन सबको याद कर लिया था और आवश्यकता पड़ने पर इन्हें दोहरा सकता था। जेल में अपने पिताजी से मिलने पर हमारा मिलन उन्हें मुखड़े और कायदे बताने तक ही सीमित होता और वे जेल के अपने साथियों को गर्वपूर्वक तबलावादन में मेरी उपलब्धियों के विषय में बताते।

नागपुर जेल में लगभग डेढ़ महीना रहने के पश्चात् इंस्पेक्टर मुश्ताक अहमद का दूत आया। उसने कहा कि मेरे पिताजी को वैलोर जेल स्थानांतरित करना है (वेलौर मद्रास के समीप एक छोटा शहर है)। तुरन्त हम लोग स्टेशन की ओर दौड़े। वहाँ जाकर हमने देखा कि रेलगाड़ी में विनोबा भावे बैठे हैं। उन्होंने श्रीमाताजी को बुलाया और उन पर बहुत बिगड़े। वो कह रहे थे, ''तुम्हें देश के लिए कार्य करने की क्या आवश्यकता है? तुम बहुत छोटी हो, तुम्हारी माँ को सदैव तुम्हारी चिन्ता लगी रहती है।'' मेरे पिताजी ने श्रीमाताजी को अपने पास बुलाया और कहा, ''इस बूढ़े व्यक्ति की बातों पर ध्यान नहीं देना। मुझे तुम पर गर्व है और यदि मेरे सारे बच्चे राष्ट्र के लिए कार्य करें तो मैं सर्वाधिक गौरवशाली पिता होऊंगा।'' मेरी माँ की तरफ मुड़कर उन्होंने कहा, ''तुम जाधव परिवार से हो (शिवाजी की माताजी का परिवार) तुम इतनी चिन्तित क्यों हो? निर्मला झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई है जो अंग्रेजों से लड़ी थी। वे अत्यन्त प्रसन्न नज़र आ रहे थे और मुस्कराते हुए उन्होंने हमारी तरफ देखा। वह मुस्कान मुझे आज तक याद है। उस समय तक हमें इस बात का ज्ञान न था कि अब हम उन्हें पन्द्रह महीनों तक नहीं देख पाएंगे। ये घटना मई १९४२ में घटित हुई।

जेल में मेरे पिताजी को परिवार को पत्र लिखने की आज्ञा थी। परन्तु भेजे जाने से पूर्व सारे पत्रों का पूर्व–निरीक्षण जेल अधिकारी करते थे। पत्र के जिस भी भाग को वे परिवार तक न भेजना चाहते उस पर काली स्याही उड़ेल दी जाती थी। किसी ने मेरी माताजी को बताया कि पत्र के सैंसर किए हुए हिस्से पर पड़ी स्याही पर यदि पेट्रोल डाल दिया जाए तो स्याही का रंग फीका पड़ जाएगा और आप उसके नीचे लिखे हुए शब्दों को पढ़ सकेंगी। हमारे घर के समीप ही एक पेट्रोल पम्प था जिसके मालिक का पुत्र एक पंजाबी सरदार था। वो मेरा अच्छा मित्र था और सदा मुझे बोतल में पैट्रोल दे दिया करता जिसे मैं घर ले आता। इस प्रकार पत्र के सैंसर किए हुए हिस्सों को भी मेरे माताजी पढ़ पाती। मेरी माताजी भी उन्हें पत्र लिखा करती थी। ये पत्र भी उन्हें पहुँचाने से पूर्व सेंसर किए जाते थे। मेरी माताजी सदैव परिवार की अच्छी–अच्छी बातें लिखतीं ताकि उन्हें चिन्ता न हो। वो जानती थी कि राष्ट्र ही परिवार की प्राथमिकता है और राष्ट्र बहुत बड़ी विपत्ति का सामना कर रहा है। राष्ट्र की विपत्ति के सम्मुख परिवार की समस्याएं बहुत छोटी थीं। इन सभी समस्याओं के बावजूद भी हम कभी निराश या परेशान नहीं हुए। इसके विपरीत हम मातृभूमि का स्तुति गान किया करते थे। चौदह वर्ष की नन्हीं आयु में श्रीमाताजी ने मातृ भूमि के सम्मान में एक बहुत अच्छी कविता लिखी थी जिसको हम अन्य गानों के साथ गाया करते थे।

१९४३–४४ का शिक्षा वर्ष जब आरम्भ हुआ तो हमें भिन्न स्कूलों और कॉलेजों में प्रवेश दिलवाया गया। श्रीमाताजी को लुधियाना के एक चिकित्सा विद्यालय में प्रवेश मिला (लुधियाना अब पंजाब में है) और मेरे बड़े भाई नरेन्द्र अपनी स्नातक शिक्षा को पूर्ण करने के लिए लखनऊ चले गए। यद्यपि उस समय हमारी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी न थी फिर भी मेरी माताजी चाहती थीं कि हमारी शिक्षा चलती रहे। यद्यपि इस प्रकार हमारे सीमित आर्थिक साधनों पर इसका बहुत दबाव पड़ा फिर भी उन्होंने ये निर्णय किया कि सभी बच्चे स्कूलों में वापिस जाएंगे। श्रीमाताजी वर्ष १९४३ से १९४५ तक लुधियाना के चिकित्सा स्कूल में थी। बहुत वर्ष पश्चात् १९८५ से १९८७ तक मुझे उसी स्कूल में लेखापरीक्षण (Audit) का काम सौंपा गया था। ये स्कूल अब बहुत बड़े चिकित्सा विद्यालय और अस्पताल में परिवर्तित हो चुका है। लेखा निरीक्षक के रूप में मुझे

दिया गया एक कार्य होस्टल के कमरों की सम्पत्ति का वास्तविक सत्यापन (Physical Verification) करना भी था।

उस समय गगन अहलुवालिया मेरे सहायक थे। एक दिन वौ दौड़ते हुए मेरे पास आए और कहने लगे कि महिला छात्रावास के प्रथम तल के एक कमरे से बहुत तेज चैतन्य लहरियाँ आ रही हैं। मैं भी वहाँ गया और चैतन्य लहरियाँ महसूस की। बाद मैं मैंने ये कहानी श्रीमाताजी को बताई तो उन्होंने बताया कि प्रथम तल के एक कमरे में वे वहाँ रही थीं। निश्चित रूप से जिस कमरे से शीतल चैतन्य लहरियाँ बह रही थीं वहीं श्रीमाताजी रही होंगी।

वर्ष १९४३ के दिसम्बर महीने में मेरे पिताजी को जेल से मुक्त किया गया। एक बीमार व्यक्ति के रूप में वे घर लौटे। जेल का खाना उन्हें रास न आया था, परिणाम–स्वरूप उन्हें आम्ल रोग (Acidity) हो गया था जिसने बाद में आँत के अल्सर का रूप धारण कर लिया। लोगों ने यहाँ तक कहा कि उन्हें हल्का ज़हर दिया गया है। परन्तु वापिस आते ही उन्होंने अपनी वकालत आरम्भ कर दी जिसके कारण हमें तुरन्त आर्थिक सहायता मिली। परिणामस्वरूप हमने एक बार फिर अपना घर रामदास पीठ क्षेत्र में स्थानांतरित कर लिया। ये क्षेत्र आज नागपुर का सबसे वैभवशाली क्षेत्र माना जाता है। ये घर बहुत बड़ा था परन्तु हाल ही में बनाया गया था। इसमें बिजली भी न लगी थी। अत: हम लोगों को लैम्प या लालटेन जलाकर पढ़ना पढ़ता था। मेरे माताजी ने इन लालटेनों की चिमनियां साफ करने का काम मुझे सौंपा था। ये कार्य मुझे बहुत आनन्द देता था। ये खुशी कार्य करने की नहीं होती थी परन्तु यह कार्य करते हुए पढ़ाई से बचने की होती थी।

वर्ष १९४४ के आरम्भ में राजनीतिक दृश्य तेजी से परिवर्तित हो रहा था। सरकार में भारतीय लोगों की भागीदारी बढ़ गई थी और अंग्रेज केन्द्र तथा राज्यों के स्तर पर सरकार बनाने के लिए भारतीय लोगों को आमंत्रित कर रहे थे। कांग्रेस ने मेरे पिताजी को केन्द्रीय विधानसभा (Central Legislative Council) के लिए टिकट दिया। यह सभा बाद में संसद के नाम से जानी गई। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के राजनीतिक मोर्चे हिन्दू महासभा ने कर्नल परांजपे को मेरे पिताजी के मुकाबले पर खड़ा किया। मेरे पिताजी का निर्वाचन क्षेत्र बहुत विशाल था। यह लगभग १५० किलोमीटर क्षेत्र में था। मेरी माताजी के साथ वे कार द्वारा व्यापक रूप से यात्रा किया करते। उनके समर्थकों में जनरल अवारी, श्री.रुईकर, पूनम

चन्द्रांका और श्री.कानम थे जो बाद में महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री बने।

गोंदिया के बीड़ी निर्माता श्री.परमानन्द पटेल ने मेरे पिताजी को कार और पेट्रोल की सुविधा उपलब्ध करवाई। जनता में राष्ट्रीयता की भावना और कांग्रेस को जनता का इतना समर्थन था कि मेरे पिताजी जहाँ भी भाषण देने के लिए जाते तो वहाँ हजारों लोग उपस्थित होते और सबकी एक ही प्रार्थना होती कि किसी तरह से भारत को दासता से मुक्त हो जाना चाहिए। ये कहना अनावश्यक होगा कि मेरे पिताजी बहुत बड़े बहुमत से जीते। इतने बड़े बहुमत से कि उनके विरोधी कर्नल परांजपे की जमानत जब्त हो गई। चुनाव १९४५ में हुए थे परन्तु संविधान सभा वर्ष १९४६ में बनाई गई।

मेरे एक चाचा श्री डेविड, मैहार रियासत के डी.आई.जी. (Deputy Inspector General of Police) थे। (स्वतंत्र होने से पूर्व भारत में अंग्रेजों ने अपने शुभचिन्तकों को कुछ क्षेत्र दे दिए थे और उन्हें वहाँ का राजा या महाराजा बना दिया था। इन क्षत्रों को रियासत कहा जाता था) मैहार के राजा ने भी इस बात को सुना कि अंग्रेज अब देश को देशवासियों के हवाले करने वाले हैं। ऐसी घटना यदि हो जाती है तो उसे अपना राज्य और रियासत खोनी पड़ेगी क्योंकि सरदार वल्लभ भाई पटेल ने, जो कि महात्मा गाँधी और मेरे पिताजी के बहुत नजदीकी साथी थे, स्पष्ट घोषणा कर दी थी कि भारत स्वतंत्र होने के पश्चात् बड़ी छोटी सभी रियासतों को प्रभुसत्ता सम्पन्न भारत में मिला लिया जाएगा।

मेरे चाचाजी जानते थे कि मेरे पिताजी का सरदार वल्लभ भाई पटेल से अत्यन्त सानिध्य है। उन्होंने ये बात महाराजा को भी बताई। ये सारी घटनाएं वर्ष १९४६ में घटित हो रही थीं। मेरे पिताजी जब दिल्ली आए तो मैहार से एक दूत दिल्ली आया। उसने मेरे पिताजी को बताया कि मैहार के महाराजा उन्हें अपना कानूनी सलाहकार (Legal Adviser) बनाना चाहते थे और इसलिए उन्होंने मेरे पिताजी से मिलने की इच्छा प्रकट की थी। मेरे चाचाजी ये भी जानते थे कि मेरे पिताजी को आँत का अल्सर (Dudodenal Ulcer) रोग है और उन्होंने सलाह दी कि मेरे पिताजी मैहार जाकर महाराजा की रियासत के चिकित्सक श्री मौइतरा से अपना इलाज करवाएं। मेरे पिताजी ने इसलिए महाराजा के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और दिल्ली या नागपुर से वर्ष १९४६ और १९४७ में कई बार मैहार की यात्रा की।

वास्तव में श्रीमाताजी समेत पूरे परिवार ने मैहार की यात्रा की। वहाँ हम रियासत के अतिथियों के रूप में गए। हमारी यात्राओं ने भिन्न प्रकार से महत्व हासिल किया। सर्वप्रथम इसलिए कि डॉक्टर मौइतरा न केवल एक चतुर चिकित्सक थे बल्कि उनके हाथ में शफ़ा भी थी। दूसरे स्थान पर ५६ वाद्य यन्त्रों के सिद्ध हस्त और पंडित रविशंकर, उस्ताद अली अकबर खाँ साहिब, अपने बेटे और अपनी बेटी अन्नपूर्णा देवी के गुरु उस्ताद अलाउद्दीन खाँ साहिब दरबारी संगीतज्ञ के रूप में मैहार के महाराजा की नौकरी में थे। उस समय युवा छात्र पंडित रविशंकर उस्ताद अलाउद्दीन से सितार सीख रहे थे। एक बार जब हम उस्ताद अलाउद्दीन के घर गए तो उन्होंने मेरे पिताजी से पूछा कि क्या वे कुछ मधुर संगीत सुनना चाहेंगे? शाम का समय था और मेरे पिताजी जिज्ञासु संगीतकार थे। वे तुरन्त उनके प्रस्ताव से सहमत हो गए। उस्ताद ने रविशंकर को आवाज लगाई और उनसे राग यमन बजाने को कहा। हम सबको ये संगीत अत्यन्त मधुर लगा और हम उनके सितार में खो गए। परन्तु दस मिनट के बाद अलाउद्दीन खाँ साहिब ने उन्हें रोक दिया और कहा कि उनके सितार से राग की शुद्धता नहीं बह रही है तथा उन्हें और अधिक अभ्यास की आवश्यकता है। तब उन्होंने अपनी बेटी अन्नपूर्णा को बुलाया और उसे सुरबहार पर वही राग बजाने को कहा। उनका वादन बहुत आनन्ददायी था और संगीत समाप्त होने के पश्चात् उस्ताद ने कहा राग यमन इस प्रकार बजाया जाना चाहिए।

इस प्रकार निश्चित रूप से रविशंकर के अहं को चोट पहुँची। शाम के समय एक तबला वादक को साथ लेकर रवि शंकर उस स्थान पर आए जहाँ हम रुके हुए थे और उन्होंने प्रार्थना की कि पन्द्रह मिनट उनका संगीत सुनने के लिए दें। मेरे पिताजी एक दम तैयार हो गए। तब रविशंकर ने राग मियां मल्हार बजाया और वो भी लगभग एक घण्टे तक। यद्यपि उनकी प्रस्तुति अत्यन्त श्रेष्ठ थी फिर भी उस समय पर हम ये भविष्यवाणी न कर सकते थे कि आने वाले समय में वे विश्व विख्यात संगीत विशारद बनेंगे। डा.मौइतरा की दो पत्नियां और एक प्यारा बेटा था। संगीत में उनकी बहुत अधिक रुचि न थी परंतु वे मेरे पिताजी से अल्लाउद्दीन खाँ साहिब की अपने शिष्यों के प्रति व्यवहार की शिकायत किया करते थे। उन्होंने हमें बताया कि एक रात दो बजे जब सभी लोग सो रहे थे तो उस्ताद अल्लाउद्दीन खाँ साहिब के शिष्य ने उनका दरवाजा खट–खटाया।

उसके सिर से खून बह रहा था। उसने बताया कि ज़रा सा बेसुरा हो जाने पर सिर पर तबला दे मारा। ये कहते हुए मुझे शर्म आ रही है कि मुझे भी खाँ साहिब और महाराजा के सम्मुख तबला बजाने का अवसर प्राप्त हुआ था और अपनी अज्ञानतावश मैंने यही सोचा कि मैंने बहुत अच्छा तबला बजाया। मुझे ये बात न महसूस हुई थी कि मेरे वादन का अनुभव दोनों संगीतज्ञों के लिए कितना भयानक होगा। डा.मौइतरा मेरे पिताजी का इलाज कर रहे थे। श्रीमाताजी ने कहा कि उनके हाथ में शफ़ा है। डा.मौइतरा से ये जान–पहचान बहुत सामीप्य बन गई और बाद में श्रीमाताजी के लिए बहुत उपयोगी बनी।

लुधियाना चिकित्सा विद्यालय से श्रीमाताजी ने वर्ष १९४५ में मध्यवर्ती विज्ञान परीक्षा (Intermediate Science) उत्तीर्ण की। उन्होंने बहुत अच्छे अंक प्राप्त किए। वे क्योंकि चिकित्सा विज्ञान पढ़ना चाहती थीं इसलिए उन्होंने भारत वर्ष के भिन्न चिकित्सा महाविद्यालयों में प्रवेश के लिए प्रार्थना पत्र भेजे। अन्य बहुत से प्रत्याशियों के साथ उन्हें भी साक्षात्कार के लिए लाहौर के चिकित्सा महाविद्यालय में बुलाया गया। जब तक वो लाहौर पहुँचीं तब तक प्रधानाचार्य छ: लड़कियों को प्रवेश के लिए चुन चुके थे। कॉलेज में क्योंकि केवल छ: ही खाली स्थान थे इसलिए उसने श्रीमाताजी के प्रार्थनापत्र को अस्वीकार कर दिया। श्रीमाताजी के अंक क्योंकि प्रवेश की गई लड़कियों से अधिक थे, उन्हें लगा कि उन्हें प्रवेश न दिया जाना बिल्कुल अन्याय है। अत: क्षतिपूर्ति के लिए उन्होंने प्रधानाचार्य से साक्षात्कार की प्रार्थना की। आरम्भ में तो प्रधानाचार्य ने उनके अनुरोध पर ध्यान न दिया परन्तु जिस जोश एवं साहस से श्रीमाताजी ने अपना पक्ष उसके सामने रखा उससे वह बहुत प्रभावित हुआ। अचानक उसने पूछा कि वे कहाँ से आई हैं। जब उसने सुना कि वे नागपुर से आईं हैं और श्री.पी.के.साल्वे की पुत्री हैं तो वे पूरी तरह से बिछ गए। कहने लगे कि वे भी नागपुर के हैं और मेरे पिताजी का बहुत सम्मान करते हैं। उन्होंने ये भी कहा कि क्योंकि सारी सीटें भर चुकी थीं इसलिए वे नि:सहाय थे। परन्तु ये आश्वासन दिया कि प्रविष्ट किए गए प्रार्थियों में से यदि कोई नियत समय पर न आया तो वे श्रीमाताजी को प्रवेश दे देंगे। ऐसा हुआ कि एक लड़की नहीं आई और श्रीमाताजी को बालकराम मैडिकल कॉलेज में प्रवेश मिल गया। दिसम्बर १९४५ में श्रीमाताजी नागपुर क्रिसमस की छुट्टियों के लिए आईं और चुनावोपरांत समय में पिताजी की

सहायता करने के लिए छुट्टियों से कुछ दिन अधिक रुक गईं।

मेरे माता–पिताजी फरवरी १९४६ में संवैधानिक सभा के प्रथम सत्र में भाग लेने के लिए दिल्ली गए। सभा में जब आरक्षण के मामले पर बहस होने लगी तो मेरे पिताजी ने बहस की कि आरक्षण आर्थिक स्थिति के आधार पर होना चाहिए जाति के आधार पर नहीं। परन्तु डा.अम्बेडकर ने ये कहकर सबको डरा दिया कि एक दिन उच्च जाति के लोग हम पर प्रभुत्व जमा लेंगे।

दिल्ली में मेरे पिताजी को जो घर आवंटित किया गया था वह पंद्रह फिरोजशाह मार्ग था। ये घर बहुत विशाल था। इसमें बहुत से कमरे और दो प्रांगण थे। सर्वोपरि इस घर में बिजली थी। इससे पूर्व हमारे रामदास पैठ वाले घर में बिजली न हुआ करती थी। टेलिफोन एक अन्य आकर्षण था जिसे उन दिनों विलासिता माना जाता था। हमारे पास अगर किसी चीज़ की कमी थी तो वह कार की थी। दिवाली के समय जब हमारे स्कूल बन्द हुए तो मैं अपनी माँ के साथ दिल्ली आया।

मुझे याद है कि मेरे पिताजी संसद के अन्य सदस्यों जैसे श्री गंगाधर राव गाडगिल, श्री.मावलंकर (अध्यक्ष), श्री.मीनु मसानी (सुप्रसिद्ध पुस्तक 'Our India' के लेखक) के साथ पैदल संसद जाया करते थे। उस समय के बहुत से प्रसिद्ध नेता पैदल चलकर संसद जाया करते थे और वह भी बिना किसी सुरक्षा प्रबन्धों के। जब मैं उस समय के भारतीय नेताओं की तुलना आज के भारत के नेताओं से करता हूँ तो मुझे बहुत विषमता दिखाई देती है। मेरे पिताजी के समकालीन नेताओं की प्राथमिकता उनकी स्वार्थहीनता तथा राष्ट्र हित के लिए समर्पण था। वे अत्यन्त सत्यनिष्ठ और पूर्णत: निर्भीक थे। परन्तु आज के बहुत से राजनीतिज्ञ न केवल आत्मसीमित तथा स्वार्थी हैं बल्कि मतदाताओं के सम्मुख वो अपनी कुछ और छवि प्रस्तुत करते हैं जबकि वास्तव में वे अत्यन्त ऐश्वर्यमय और सुखपूर्ण जीवन बिताते हैं। उनमें एक विशेष गुण भी है – वह है भ्रष्टाचार। क्योंकि वे सदैव गलत लोगों का पक्ष लेते हैं इसलिए वे सदैव भयभीत रहते हैं और उन्हें सुरक्षा की बहुत आवश्यकता होती है।

लाहौर और दिल्ली की दूरी बहुत अधिक न थी। श्रीमाताजी कभी–कभी सप्ताहान्त पर या छुट्टियों में लाहौर से आ जाया करते थे। कभी–कभी मेरे माताजी लाहौर चले जाया करते थे। एक बार उन्होंने मुझे भी अपने साथ ले

जाने की योजना बनाई परन्तु ये कार्यक्रम सफल न हुआ और मैं न जा पाया। दिल्ली में मेरा ठहरना अत्यन्त उबाऊ होता था क्योंकि यहाँ मेरे कोई मित्र न थे। फिर भी मैं दिल्ली में रहना पसन्द करता था क्योंकि इस प्रकार मैं स्कूल से बच सकता था। नागपुर मैं एक अन्य कारण से आना चाहता था। एक मित्र के पत्र से मुझे पता चला कि मुझे स्कूल की कनिष्ठ क्रिकेट टीम के लिए चुन लिया गया था और अन्तर्पाठशाला खेल प्रतियोगिता बहुत शीघ्र आरम्भ होने वाली थी। अत: पढ़ाई की समस्या के बावजूद भी मैं नागपुर वापिस आ गया। खेल प्रतियोगिता में हमारा पहला मुकाबला प्रसिद्ध कुरुवे न्यू मॉडल हाईस्कूल की टीम से हुआ। मैं हडास हाईस्कूल के लिए खेल रहा था। मैं नहीं जानता कि क्रिकेट में मेरी योग्यता या इसके अभाव के कारण मैं तीस रन और तीन विकेट ले सका जिसके फलस्वरूप हमारे स्कूल ने ताकतवर प्रतिद्वन्दी पर विजय प्राप्त कर ली। मेरे इस प्रदर्शन ने मेरे मन में अपने विषय में बड़े–बड़े विचार उत्पन्न कर दिए और मैं सोचने लगा कि मैं अत्यन्त महान क्रिकेट खिलाड़ी बनने वाला हूँ। स्कूल में मेरी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई और घर का काम न करने के कारण जो अध्यापक मुझे दण्डित किया करते थे वे भी अब नम्र हो गए। परन्तु ये स्वप्नावस्था अधिक देर तक न चली क्योंकि अगले ही मैच में मुझे कोई भी रन न मिला, केवल एक विकेट मिला। जैसी आशा की जा सकती थी, पूर्वस्थिति लौट आई जिसमें मेरे अध्यापकों का कठोर व्यवहार भी सम्मिलित था।

मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं कभी भी मेघावी छात्र न था, किसी तरह से अपनी परीक्षा पास कर लिया करता था। क्रिसमस की छुट्टियों में मैं फिर दिल्ली गया। एक शाम को टेलिफोन की घण्टी बजी और दूसरी ओर से एक पतली आवाज़ ने पूछा कि क्या मेरे भाई नरेन्द्र (विख्यात नाम पोलीन) (Polean) घर पर हैं। मैंने पूछा कि, 'कौन बोल रहे हैं?' तो उस व्यक्ति ने उसी पतली आवाज़ में कहा कि, 'चन्द्रिका भाई बोल रहे हैं।' पतली आवाज़ के कारण उनके 'भाई' शब्द को 'बाई' (महिला) समझा और मैं टेलिफोन चोगे को ढके बिना ही चिल्लाया, 'पोलीन भैया, कोई महिला आपको बुला रही है।' दूसरी ओर से टेलिफोन पर तुरन्त मुझे इसका विरोध सुनने को मिला। अत्यन्त ठहरी हुई आवाज़ में वो मुझे बता रहे थे कि वो 'भाई' हैं 'बाई' नहीं। सर सी.पी.श्रीवास्तव, जिन्होंने बाद में श्रीमाताजी से विवाह किया, से ये मेरी पहली

बातचीत थी। छब्बीस वर्ष की अत्यन्त युवा आयु में ही वे भारत सरकार के अफ़सरों के एक प्रतिनिधि मण्डल के नेता के रूप में स्विटज़रलैण्ड गए और स्विटज़रलैण्ड की बर्फ़ीली हवाओं ने कोमल गले पर असर किया जिसके कारण उनकी आवाज़ पतली निकल रही थी। अगले दिन एक बहुत लम्बा कठोर शक्ल वाला व्यक्ति दरवाजे.पर नज़र आया और उसने बताया कि वह 'चन्द्रिका भाई' हैं। उन्हें देखते ही उन के प्रति मेरे अन्दर अरुचि जाग उठी क्योंकि गम्भीर चेहरों वाले लोग मुझे कभी पसन्द नहीं आए। मैं हैरान था कि मेरा भाई जो स्वयं इतना तबियतदार व्यक्ति था, किस प्रकार ऐसे व्यक्ति से मित्रता कर सकता है। परन्तु मैं इतना छोटा था कि पूरी शक्ति से अपना निर्णय भी न दे सकता था इसलिए मैंने अपने विचार स्वयं तक ही सीमित रखे।

मार्च १९४७ में, जब मेरी परीक्षा समाप्त होने वाली थी, दिल्ली से मेरी माताजी का पत्र आया जो उन्होंने मेरे बड़े भाई को लिखा था। इस पत्र में उन्होंने श्रीमाताजी और चन्द्रिका भाई के विवाह की घोषणा की थी। मैंने कभी न सोचा था कि चन्द्रिका भाई श्रीमाताजी के पति बनेंगे। चन्द्रिका भाई से श्रीमाताजी के विवाह के विचार से मुझे इतना खेद हुआ कि मैं रो पड़ा। वास्तव में इस विचार से कि श्रीमाताजी अपना पूरा जीवन इस उबाऊ व्यक्ति के साथ गुजारेंगी, मेरी आँखों से आँसू झरने लगे। परमात्मा का लाख–लाख शुक्र है कि उनके विषय में मेरी पहली राय बिल्कुल गलत थी। वास्तव में सर सी.पी., जैसा प्रेम से हम बुलाते हैं, में अथाह विनोद संवेदना है। उनकी बाह्य अभिव्यक्ति मूलत: विश्व भर में उनकी दफ्तरशाही की गम्भीरता का परिणाम थी। ७ अप्रैल १९४७ का दिन विवाह के लिए निश्चित किया गया और हमें पूरे सामान के साथ आने के लिए कहा गया। ग्वालियर से मेरी बहनें भी आईं। दिल्ली में सारे परिवार का एकत्र होना अत्यन्त आनन्ददायी था।

मेरे बड़े भाई पहले ही शासपत्रित (Chartered Accountant) बनने के लिए लेखा–सहायक का कार्य कर रहे थे। अपने मित्र चिन्नपा के साथ वे मेरे पिताजी के घर में एक कमरे में रहते थे। मार्च के अन्त में हम वहाँ पहुँचे। पहली अप्रैल को श्रीमाताजी ने सबको बेवकूफ़ बनाने का निर्णय किया। प्रात: वह जल्दी उठ गईं और भाई तथा उसके मित्र के सम्मुख घोषणा की कि विजय हज़ारे (उस समय के विख्यात क्रिकेट खिलाड़ी) बाहर उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उन्होंने ये सोचा

भी न था कि श्रीमाताजी उन्हें अप्रैलफ़ूल (April Fool) बना रही हैं। अधजगे व चकाचौंध आँखों से वे अपने बिस्तरों से निकले और विजय हज़ारे का स्वागत करने और उसे गले से लगाने के लिए दौड़ पडे। लेकिन अप्रैलफ़ूल कहकर उनको चिढ़ाने के लिए उन्होंने श्रीमाताजी को वहाँ खडे पाया। अगला शिकार बाला साहिब थे, जिनके मित्र ने पहली अप्रैल को श्रीमाताजी के विवाह में सम्मिलित होने के लिए दिल्ली आना था। उसकी गाड़ी दोपहर के बाद आनी थी परन्तु जब श्रीमाताजी ने उसके आने की घोषणा की तो बाला साहिब बिल्कुल भी सन्देह किए बिना बाहर आ गए और इस प्रकार श्रीमाताजी सभी को अप्रैलफ़ूल बनाती चली गईं। बाला साहिब ने मुझे और शशि को बेवकूफ़ बनाने की कोशिश की परन्तु वह श्रीमाताजी की तरह से अच्छा कलाकार न था और उसके चेहरे के भाव उसे धोखा दे गए और इस प्रकार हम बेवकूफ़ बनने से बच गए। इसके पश्चात् श्रीमाताजी ने सर सी.पी. को अप्रैलफ़ूल बनाने का निर्णय किया। उन्हें सूचना भेजी गई कि श्रीमाताजी बीमार हैं और वे उन्हें देखने के लिए आएं। कुछ दूत भेजे गए परन्तु सर सी.पी. को शक हो गया और वे नहीं आए। अन्त में मुझे भेजा गया क्योंकि सर सी.पी. जहाँ रह रहे थे वह स्थान हमारे घर से बहुत दूर न था। मैंने अत्यन्त गम्भीर मुँह बनाकर उनके सभी प्रश्नों का उत्तर दिया और उन्होंने मुझे आश्वस्त किया कि वो मेरे पीछे–पीछे आ रहे हैं। योजना इस प्रकार थी कि ज्यों ही वो आएंगे श्रीमाताजी काँपती हुई कम्बल लपेटकर सोफे पर लेट जाएंगी और जब सर सी.पी. उनका चेहरा देखेंगे केवल तभी इस बात का पता चलेगा कि उन्हें बेवकूफ़ बना दिया गया है। आधा घण्टा गुज़र गया परन्तु वो न आए। अचानक बाला साहिब दौड़ते हुए आए और कहने लगे सर सी.पी. आ रहे हैं। श्रीमाताजी एक दम सोफे पर लेट गईं और कम्बल से अपना चेहरा ढ़क लिया। ज्यों ही उन्होंने ऐसा किया हम सब चिल्लाए ''अप्रैलफ़ूल।'' यद्यपि यह श्रीमाताजी के लिए कहा गया था फिर भी उन्होंने सोचा कि हम यह सब सर सी.पी. को कह रहे हैं। उन्होंने इस बात का सन्देह न किया था कि बाला साहिब, जो कि हम सबसे अधिक अबोध थे, उनके साथ ऐसी शरारत कर सकते थे। जब उन्होंने देखा कि सर सी.पी. नहीं आए थे तो वे अपने अप्रैलफ़ूल बनाए जाने पर खूब हँसीं। अचानक शाम को सर सी.पी. आ गए और श्रीमाताजी को पूरी तरह से स्वस्थ देखकर हँसने लगे। उन्होंने कहा उन्हें मूर्ख बनाना इतना आसान नहीं है। परिवार में हम इस प्रकार का हँसी मज़ाक किया करते थे।

योग्य अविवाहित युवक के रूप में कायस्थ जाति में सर सी.पी. साहब का मूल्य बहुत ऊँचा था। राष्ट्रपति श्री.राजेन्द्र प्रसाद जो कि मेरे पिताजी के बहुत अच्छे मित्र थे, को बहुत से पत्र भेजे गए। उन्होंने उत्तर प्रदेश के कायस्थों को बताया कि पी.के.साल्वे उनके बहुत अच्छे मित्र हैं और वे साल्वे साहब और उनकी पुत्री का बहुत सम्मान करते हैं। इस प्रकार राष्ट्रपति ने इस पावन विवाह में दखलंदाजी करने से इन्कार कर दिया। ७ अप्रैल को शादी से पूर्व हल्दी की रस्म हुई। सब लोगों ने बहुत आनंद लिया। यह विवाह क्योंकि अदालत में होना था इसलिए हिन्दू शैली में या ईसाई शैली में कोई भी रस्में न होनी थीं। मुझे याद है कि सर सी.पी. रेशम का सूट पहने हुए थे और श्रीमाताजी ने ज़री के काम वाली लाल रंग की साड़ी पहनी हुई थी। मैंने शॉर्टस् और हाथ की बुनी खादी का दोहरी तह का (Double Breast) कोट पहना था। घर के बगीचे में सुन्दर शामियाना लगाया गया था। मुझे ये भी याद है कि चोटी के राष्ट्रीय नेता और अधिकतर सांसद विवाह में सम्मिलित हुए और वर–वधू को आशीर्वाद दिया। प्रो.जॉन मथाई, जो कि तत्कालीन वित्तमंत्री और मेरे पिताजी के बहुत अच्छे दोस्त थे, ने वर–वधू की सलामती का जाम पीने का प्रस्ताव रखा। उत्तर में सर सी.पी. ने कहा कि पश्चिम में लोग पहले प्रेम करते हैं फिर विवाह करते हैं और विवाह के पश्चात् प्रेम को भूल जाते हैं। पूर्व में लोग पहले विवाह करते हैं और विवाह के पश्चात् प्रेम करते हैं। परन्तु जहाँ तक उनका सम्बन्ध है वे प्रेम करते हैं और अपनी प्रेमिका से विवाह कर रहे हैं तथा विवाह के पश्चात् भी वे प्रेम करते रहेंगे। उनके इस उत्तर पर सभी लोगों ने बहुत तालियाँ बजाई परन्तु श्रीमाताजी लज्ज़ा से लाल हो गईं। मेरे पिताजी यद्यपि केन्द्रीय विधानसभा में उन दिनों के राजनीतिक लोगों में से अकेले ईसाई सदस्य थे फिर भी इस अवसर पर इतनी बड़ी संख्या में राष्ट्रीय नेताओं की उपस्थिति मेरे पिताजी की प्रतिष्ठा तथा उनकी प्रसिद्धि का प्रमाण थी। उत्सव क्योंकि शाम के समय मनाया गया था इसलिए मेहमानों को नाश्ता और नमकीन पेश किया गया। शान्ताबाई ने एक शास्त्रीय राग प्रस्तुत किया जिसकी सभी उपस्थित लोगों ने सराहना की।

अध्याय–५
१९४७ से १९५५
राष्ट्र का जन्म

विवाह के पश्चात् कुछ दिन श्रीमाताजी हमारे साथ रुकीं और उसके पश्चात् नए निवास स्थान पर चली गईं। ये निर्णय किया गया कि मुझे भी नए शिक्षा वर्ष १९४७–४८ के लिए ग्वालियर चला जाना चाहिए। अत: हमारा नागपुर का घर व्यवहारिक रूप से बन्द कर दिया गया। वहाँ पर केवल बाला साहिब, सैनी भैया और सुशील के अतिरिक्त कोई न था। ग्वालियर में मुझे जनक गंग माध्यमिक स्कूल में आठवीं कक्षा में प्रवेश दिलाया गया। इसका श्रेय मेरी माताजी और उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व को जाता है। ग्वालियर माध्यमिक स्कूल में बोर्ड की परीक्षा होती थी।

ग्वालियर में हम लोग श्री.मलगांवकर के घर के बाहरी हिस्से में रहने लगे। शान्ता बाई अध्यापन करती थीं और शशि, इन्दु और मैं स्कूल जाते थे। इन्दु मैट्रिक में पढ़ रही थी और शशि उससे एक दो कक्षाएं पीछे थी तथा मैं जैसा पहले बताया है आठवी कक्षा की बोर्ड की परीक्षा दे रहा था। मेरे दो भांजे थे (बड़ी बहन के दो बेटे) वो भी ग्वालियर में पढ़ रहे थे। जब मैं ग्वालियर में था तब कुछ महत्वपूर्ण घटनाएं घटी।

१४ अगस्त मध्य रात्रि को भारत स्वतंत्र हुआ। मेरे पिताजी, जो कि केन्द्रीय विधानसभा के लिए चुने गए थे, अंग्रेजी हुकुमत के भारत सरकार को हस्तांतरण समारोह में भाग लेने के लिए गए। तीन सौ वर्षों की दासता का अन्त होना था।

डा.राजेन्द्र प्रसाद स्वतंत्र भारत की संविधान सभा के अध्यक्ष थे और जवाहर लाल नेहरु प्रधानमंत्री। वे मंत्रालय के सदस्यों के साथ पावन अग्नि, जो कि वैदिक रीति अनुसार प्रज्ज्वलित की गई थी, के इर्द–गिर्द घूमे। पुजारी मंत्रोच्चारण द्वारा त्रिदेवों की स्तुति कर रहे थे। मैं सोचता हूँ प्रतीकात्मक रूप से वे लोग आदि शक्ति, जो कि त्रिगुणात्मिका हैं, कि स्तुति कर रहे थे। ठीक मध्य रात्रि के समय पंडित जवाहरलाल नेहरु ने राष्ट्र को सम्बोधित किया। उन्होंने

कहा कि राष्ट्र को भाग्य के साथ प्रेम भेंट का अवसर प्राप्त हुआ है और नियत (Destined) उपलब्धियाँ प्राप्त करने का अवसर आ गया है। पूरा राष्ट्र उल्लसित था और हमें इस बात पर गर्व था कि मेरे पिताजी, जिन्होंने अपना सबकुछ बलिदान कर दिया था, साक्षात् इस उत्सव के साक्षी थे।

अगले दिन इण्डिया गेट पर एक विशाल जलूस का आयोजन किया गया जिसमें स्वतंत्र भारत के गवर्नर जनरल लार्ड माऊंट बैटन और पंडित जवाहर लाल नेहरु ने घोड़ों पर सवार होकर, वहाँ आकर बर्तानवी झण्डे को उतारकर उसके स्थान पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के ध्वज का आरोहण करना था। परन्तु भीड़ इतनी अधिक थी कि पंडित नेहरु और लार्ड माऊंट बैटन के लिए घोड़ों पर चढ़कर आना असम्भव था। मेरे पिताजी को तथा सी.पी. और श्रीमाताजी को वहाँ बनाए गए एक अहाते में बैठने के लिए आमंत्रित किया गया था। परन्तु बाकी के हम सभी लोग आम जनता थे और हमें उस भीड़ में अपना स्थान खोजना पड़ा। भीड़ की संख्या दस लाख से भी ऊपर होगी, परन्तु मेरी माताजी भीड़ से बिल्कुल भी नहीं घबराईं। उन्होंने मेरा हाथ पकड़ा और मुझे उस स्थान तक खींचते हुए ले गई जहाँ पर बर्तानवी झण्डे को उतारकर राष्ट्रीय ध्वजारोहण किया जाना था। ज्योंही पंडित नेहरु और माऊंट बैटन वहाँ पहुँचे, भीड़ मेरे सामने एकदम उमड़ पड़ी और मेरी गर्दन लोगों के दो कंधों के बीच में फंस गई और मैं हवा में लटककर सहायता के लिए चिल्लाने लगा। मुझे लगा कुछ ही क्षणों में मेरी जान निकल जाएगी क्योंकि मेरा सांस घुट रहा था। अचानक एक हाथ बढ़ा और मेरी गर्दन को दबाने वाले दोनों कंधों को दूर धकेल दिया। इस क्षणिक सहायता से मैं पृथ्वी पर खड़ा हो गया और श्वास ले सका यद्यपि उसमें मुझे बहुत कठिनाई हुई। सहायता के लिए बढ़ा हुआ हाथ किसी और का न होकर मेरी अपनी माँ का था। वहाँ पर मुझे इस बात का एहसास हुआ कि आवश्यकता पड़ने पर एक माँ कितनी शक्ति अपने अंदर जुटा सकती है! भीड़ में पुन: फंस जाने के भय से मैं और मेरी माँ बर्तानवी झण्डे को उतारकर तिरंगे झण्डे को फहराए जाने की रस्म को बिल्कुल न देख सके। हम वापिस चलने लगे और जब तक एक सुरक्षित स्थान पर न पहुँच गए चलते ही गए। अवसर अत्यन्त आनंददायी था और शीघ्र ही मैं अपने साथ घटी घटना को भूल गया। अत्यन्त गर्वपूर्वक मैं ग्वालियर लौटा। मेरे मन में गर्व भाव था कि मैं भी बर्तानवी झण्डे को

उतरते हुए और तिरंगे को चढ़ाए जाते हुए देखने के लिए वहाँ उपस्थित था।

स्वतंत्रता के साथ ही जातीय हिंसा भड़क उठी। बैरिस्टर मोहम्मद अली जिन्ना के दबाव में पाकिस्तान का सृजन हुआ और उन्होंने अपनी स्वतंत्रता का उत्सव १३ अगस्त १९४७ की मध्य रात्रि को मनाया। इसके तुरंत पश्चात् पाकिस्तान के मुसलमानों ने वहाँ रहने वाले हिन्दुओं को मारना और वहाँ से खदेड़ना शुरु कर दिया। बदले में भारत के हिन्दुओं ने भी भारतीय मुसलमानों की हत्या करनी शुरू कर दी।

१९४७ के जातीय दंगों से सम्बन्धित एक कहानी है जो श्रीमाताजी के लोगों के प्रति प्रेम और उदारता को दर्शाती है। विवाह के तुरन्त पश्चात् श्रीमाताजी और सर सी.पी. दिल्ली में मेरे पिताजी के बंगले में ही रहते थे। एक शाम जब सर सी.पी. अपने दफ्तर गए हुए थे और मेरे भाई एन.के.पी. किसी लेखा परीक्षण (Audit) के लिए गए हुए थे, किसी ने घर का दरवाज़ा खट–खटाया। श्रीमाताजी ने जब दरवाज़ा खोला तो एक महिला और दो पुरुषों को वहाँ खड़ा हुआ पाया। वे लोग अत्यन्त डरे तथा घबराए हुए थे। उन्होंने श्रीमाताजी को बताया कि वे पाकिस्तान से आए हुए शरणार्थी हैं और उनमें से एक क्योंकि मुसलमान है इसलिए यहाँ के हिन्दू लोग तलवारें निकालकर हत्या करने के लिए उनका पीछा कर रहे हैं। बिना एक क्षण की हिचकिचाहट के श्रीमाताजी उन्हें अंदर ले गईं ओर एक कमरे में छिपा दिया। कुछ देर पश्चात् हाथों में तलवारें लिए कुछ लोग वहाँ आए और कहने लगे कि इस घर में एक मुसलमान छिपा हुआ है। श्रीमाताजी ने साफ–साफ इन्कार कर दिया और झूठ बोलते हुए उनसे कहा कि वे स्वयं कट्टर हिन्दू हैं, किस प्रकार वे किसी मुसलमान को अपने यहाँ शरण दे सकती हैं। हाथों में तलवारें पकड़े हुए लोगों को पहले तो उन पर बिल्कुल विश्वास न हुआ। विवाहिता हिन्दू महिलाओं के माथे पर प्रतीक के रूप में लगी हुई बड़ी सी बिन्दी को जब उन्होंने देखा तो उन्हें विश्वास हो गया कि वे हिन्दू हैं।

तीनों छिपे हुए व्यक्ति श्रीमाताजी के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ थे। श्रीमाताजी ने उन्हें तब तक वहाँ रहने के लिए कहा जब तक बाहर जाकर वे पूर्णत: सुरक्षित न हों। शाम को जब सर सी.पी. और पोलेन भैया लौटे तो उन्होंने श्रीमाताजी को अजनबी लोगों को अपने घर शरण देने के लिए चेतावनी दी, विशेष रूप से ऐसे

समय पर जबकि जातीय दंगे भड़के हुए थे। श्रीमाताजी ने कहा कि मनुष्यों की पहचान उन्हें कहीं बेहतर है और जो कुछ भी उन्होंने किया है वो उन्होंने बिल्कुल ठीक किया है तथा ये घर क्योंकि उनके पिता का है अतैव उन्हें निर्णय करने का पूर्ण अधिकार है कि इसमें कौन व्यक्ति ठहरेगा और कौन नहीं।

तीन व्यक्तियों में से एक मुसलमान था और बाकी दोनों पाकिस्तान से दौड़े हुए हिन्दू थे। बाद में जैसा घटित हुआ, हिन्दू महिला और पुरुष भारतीय फिल्म उद्योग के प्रसिद्ध कलाकार बन गए। महिला का नाम अचला सचदेव है और पुरुष का नाम बलराज साहनी। हिन्दी फिल्मों को जानने वाले लोगों को फिल्म उद्योग में उनके योगदान का पूरा ज्ञान है। तीसरा मुसलमान सज्ञन भी बाद में फिल्म उद्योग में आ गया उस नाम साहिर लुध्यानवी है। आज उन्हें देश के सर्वोत्तम उर्दू कवियों में माना जाता है। श्रीमाताजी ने सामयिक सहायता करके यदि उन्हें न बचाया होता तो ये लोग हिन्दी फिल्म जगत को न मिल पाते। बहुत वर्ष उपरान्त जब श्रीमाताजी बम्बई में थीं तो उन्हें युवा संघ संस्था का अध्यक्ष चुना गया। यह युवा संघ भारत में संस्कृति को बचाने तथा परिवर्तित करने के विषय पर चलचित्र बनाना चाहता था। ये लोग अचला सचदेव को माँ की भूमिका देना चाहते थे परन्तु उसने इस भूमिका के लिए बहुत बड़ी कीमत मांगी। फिल्म के निर्माता श्रीमाताजी के पास आए परन्तु श्रीमाताजी ने उनसे कहा कि वे श्रीमती सचदेव को उनके विषय में कुछ भी न बताएं। निर्माता ने अत्यन्त कठिनाई के साथ अचला सचदेव की माँगों को स्वीकार कर लिया। बाद में फिल्म के मुहूर्त के समय अचला सचदेव ने जब श्रीमाताजी को वहाँ देखा तो उसकी आँखों से अश्रुधारा बह निकली और दौड़ कर वह श्रीमाताजी के गले लग गईं। इससे सभी दर्शक आश्चर्यचकित हो गए। इन दर्शकों में फिल्म के निर्माता भी थे। वे हैरान थे कि अभिनेत्री को क्या हो गया है! उन्होंने श्रीमाताजी से पूछा। अभिनेत्री के आँसुओं के पीछे छिपी कहानी के बताए जाने पर उसे जो परेशानी होती उसको ध्यान में रखते हुए श्रीमाताजी ने यह कहकर उस प्रश्न को घुमा दिया कि यह एक पुरानी कहानी है (ऐसा है श्रीमाताजी का चरित्र, सभी की भावनाओं का सम्मान करना)। अचला सचदेव ने स्वयं सब लोगों को बताया कि श्रीमाताजी ही वह फरिश्ता थीं जिसने उनका जीवन बचाया। उसने अपने पति तथा कवि साहिर लुध्यानवी को फोन किया। वे लोग दौड़े हुए वहाँ आए और

श्रीमाताजी के चरण स्पर्श किए। अश्रुपूर्ण आँखों से उन्होंने पूछा, 'इतने समय तक आप कहाँ खो गई थीं' ?

२२ दिसम्बर १९४७ को ग्वालियर के विक्टोरिया मैमोरियल अस्पताल में श्रीमाताजी ने अपने प्रथम शिशु को जन्म दिया। प्रसूति के दिनों में मेरी माँ उनके साथ रहीं। कुछ दिनों पश्चात् सर सी.पी. ग्वालियर आए। उन्हें एक पुत्री का पिता बन जाने की सूचना देने वाला मैं प्रथम व्यक्ति था। शिशु का जन्म सामान्य रूप से हुआ था इसलिए अपनी सुन्दर और प्यारी सी बच्ची के साथ श्रीमाताजी दस दिनों के बाद घर लौट आईं। बच्ची को उन्होंने कल्पना नाम दिया।

अगले वर्ष में एक भयानक घटना ने पूरे राष्ट्र को हिला दिया। ३० जनवरी १९४८ के दिन दिल्ली के बिड़ला भवन प्रार्थना के लिए जाते हुए महात्मा गाँधी की हत्या कर दी गई। श्रीमाताजी उन दिनों २२ रत्नदान मार्ग पर रहती थीं और उनका घर बिड़ला भवन के समीप होने के कारण उन्होंने गोली चलने की तीन आवाजें सुनीं। ग्वालियर में हमारे घर पर कुछ मेहमान आए हुए थे और मैं उनके लिए बाज़ार से मिठाईयाँ लेने के लिए गया हुआ था। महात्मा गाँधी की हत्या का समाचार पूरे राष्ट्र में दावानल की तरह से फैल गया और कुछ ही क्षणों में दुकानदारों ने अपनी दुकाने बंद कर दीं। यह सब इतनी तेजी से होता हुआ देखकर मैं भौचक्का रह गया। मैंने सोचा कि यह सब जातीय दंगों के कारण हुआ होगा। मैं जब घर पहुँचा तो यह समाचार मेरी माँ तथा बहनों तक पहुँच चुका था। समाचार सुनकर मुझे सदमा पहुँचा जिसके कारण हाथ का मिठाई का डिब्बा गिर गया। अपनी माँ की आँखों से बहते हुए आँसु और उनका खुला हुआ मुँह, जिससे उनकी व्याकुलता और समाचार पर अविश्वास छलक रहा था, मुझे स्पष्ट याद है। कुछ ही क्षणों में प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने राष्ट्र को सम्बोधित किया। घोषणा की गई कि अगले दिन दोपहर पश्चात् संस्कार किया जाएगा। मेरी माँ अंतिम संस्कार में भाग लेने के लिए दिल्ली जाना चाहती थीं परन्तु दिल्ली जाने वाले लोग पागलों की तरह से उमड़ पड़े थे। नागपुर में मेरे पिताजी भी इसी कारण से रेलगाड़ी पर न चढ़ सके थे। शीघ्र ही पता चला कि नथूराम गोडसे नामक एक ब्राह्मण ने महात्मा गाँधी को गोली मारी थी और उनकी हत्या करने की योजना ग्वालियर में बनी थी। ग्वालियर में पहले से ही

जातीय तनाव था। हम सब रेडियो से चिपके हुए बैठे थे और उस समय नींद और भोजन का हमें कोई ध्यान न था। महात्मा गाँधी के अंतिम संस्कार के जुलूस में लाखों लोगों ने भाग लिया। चन्दन की लकड़ी से उनकी चिता बनाई गई थी। चिता में जब अग्नि प्रज्वलित की गई तो हमें याद आया कि हमने चौबीस घण्टों से भी अधिक समय से कुछ नहीं खाया था और वास्तव में पूरी रात सोए भी न थे। लगभग तीन दिनों पश्चात् महात्मा गाँधी के शरीर की राख को ग्वालियर लाया गया और मुझे याद है कि राख के कलश को लेकर चलने वाले रथ के पीछे एक विशाल जुलूस निकाला गया। सबसे बड़ा दु:ख इस बात का था कि महात्मा गाँधी की हत्या महाराष्ट्र के नथूराम गोडसे नामक कट्टर ब्राह्मण ने कर दी थी। सर सी.पी. ने मुझे बताया कि किस प्रकार महात्मा गाँधी की मृत्यु से एक दिन पूर्व श्रीमाताजी उनसे मिली थीं और किस प्रकार उन्होंने उनकी नन्हीं बेटी को गोदी में उठाकर कहा था, '' नेपाली तुम माँ बन गई हो परन्तु आज भी तुम वैसी की वैसी दिखाई पड़ती हो। कब तुम अपना आध्यात्मिक कार्य आरम्भ कर रही हो? अब हम स्वतंत्र हैं और जो भी तुम करना चाहती थी वो अब आरम्भ कर देना चाहिए।''

राष्ट्र अभी तक इस सदमें से उबरा भी न था कि जातीय दंगे आरम्भ हो गए। ब्राह्मण जाति के लोगों की हत्या की जा रही थी। हम भी ब्राह्मण क्षेत्र में रहते थे। वहाँ तनाव बहुत जोरों पर था और कुछ समय के लिए सभी स्कूल और कॉलेज बन्द कर दिए गए थे। महात्मा गाँधी की मृत्यु के परिणामस्वरूप बहुत से गैर ब्राह्मणों ने ब्राह्मणों को मार देने की धमकी दी थी। किसी तरह से मेरे पिताजी ने हस्तक्षेप किया और कहा कि इस तरह का कोई भी कार्य करना उन उद्देश्यों के प्रति विश्वासघात होगा जिनके लिए महात्मा गाँधी जीवन पर्यन्त संघर्ष करते रहे और जिन्हें उन्होंने प्रेम किया।

बैरिस्टर मोहम्मद अली जिन्ना के दबाव में पाकिस्तान के सृजन के समय जब १९४७ में देश का विभाजन हुआ था, राष्ट्र ने जातीय दंगे देखे थे। उसके पश्चात् पाकिस्तान क्षेत्र में बसे हुए हिन्दुओं की मुसलमानों ने हत्या शुरु कर दी। भारतीय हिन्दुओं ने भी बदले की भावना से भारत के मुसलमानों की हत्या आरम्भ कर दी। पाकिस्तान में हिन्दुओं का कत्लेआम होने के कारण हिन्दू लोग वहाँ पर अपने घरों को छोड़–छोड़कर शरणार्थियों के रूप में बहुत बड़ी संख्या में

भारत आने लगे। ऐसे शरणार्थियों की संख्या लाखों में थी। १९४७ के जातीय दंगों में घटी एक घटना की दिलचस्प कहानी मुझे याद है।

अगस्त के अन्त या सितम्बर के आरम्भ में मेरी माँ एक मुसलमान रक्षक के साथ मैहर से दिल्ली यात्रा कर रही थीं उन्हें जातीय दंगों का ज्ञान था परन्तु दिल्ली में दंगों की गम्भीरता से वे बेखबर थीं। सम्भवत: यह दैवी हस्तक्षेप हो, परन्तु उनकी रेलगाड़ी दिल्ली स्टेशन न पहुँच पाई क्योंकि दिल्ली पहुँचने से पूर्व रेल को यमुना नदी का पुल पार करना होता है और नदी का पानी पुल के ऊपर से बह रहा था। जितनी बार भी रेल के चालक ने पुल को पार करने का प्रयत्न किया उसे वापिस आना पड़ा। दिल्ली पहुँचने का क्योंकि कोई मार्ग न था इसलिए रेलगाड़ी पिछले स्टेशन पर लौट आई और फिर आगरा लौट गई। आगरा के रास्ते पर हिंसा भड़क उठी। यद्यपि मेरे माताजी गाड़ी के डिब्बे में थे फिर भी उन्हें मुसलमानों की चीखें सुनाई दे रहीं थीं क्योंकि उन्हें तलवारों से काटा जा रहा था। मेरे माताजी के अंगरक्षक का नाम श्री.अमीन था। ये सोचकर कि उसपर भी आक्रमण हो सकता है मेरी माँ ने उसका नाम बदलकर उसे अमर बुलाना शुरु कर दिया।

गाड़ी जब आगरा पहुँची तो दिल्ली जाने के इरादे से मेरे माताजी रेलगाड़ी से उतरे। परन्तु गाड़ियों में अथाह भीड़ थी। अन्तत: उन्हें ग्वालियर वापिस आना पड़ा। ग्वालियर आना वैसा ही था जैसे आकाश से गिरे खजूर में अटके, क्योंकि ग्वालियर की स्थिति भी अन्य स्थानों की तरह से भयानक थी। अत्यन्त कठिनाई के साथ और अपने मालिक मकान श्री.मलगांवकर और मेरे जीजाजी की सहायता से हम उन्हें अमीन उर्फ अमर के साथ हवाईजहाज़ द्वारा दिल्ली भेज पाए। दिल्ली पहुँच कर जब तक उन्होंने अपने सुरक्षित पहुँचने की टेलिफोन द्वारा सूचना न दे दी हम सब अत्यन्त तनावग्रस्त रहे।

महात्मा गाँधी की मृत्यु के पश्चात् जब स्कूल खुले तो वार्षिक परीक्षाएं बहुत समीप थीं, इसलिए मैं भी अपनी पढ़ाई में जुट गया। एक बात का वर्णन करना मैं भूल गया था कि श्रीमाताजी प्रसूति के दिनों में जब हमारे साथ रुकी हुई थीं तो वो मुझे भौतिक विज्ञान पढ़ाती थीं। उनकी पढ़ाने की शैली इतनी स्पष्ट एवं प्रभावशाली थी कि आज भी मैं उनकी बताई हुई उस शैली को अक्षरश: बता सकता हूँ। एक चीज़ जो उन्होंने पढ़ाई थी, और मुझे स्पष्ट याद है, वह थी पारे

के गुण तथा थर्मामीटर में उसकी उपयोगिता। मई १९४८ में मेरी बोर्ड परीक्षाओं के परिणाम घोषित हुए और मुझे सफल घोषित किया गया। मैंने नागपुर के पटवर्धन हाई स्कूल में प्रवेश के लिए प्रार्थना पत्र दिया। यह स्कूल अत्यन्त उच्च स्तर का माना जाता था। इस स्कूल में मुझे प्रवेश प्राप्त होने का एक कारण यह भी था कि कनिष्ठ क्रिकेट टीम में मैंने अपने स्कूल का प्रतिनिधित्व किया था।

१९४८ से १९५२ तक का समय मेरे लिए कोई महत्वपूर्ण नहीं था सिवाय इसके कि मैं ठण्ड और टाइफाइड के कारण बीमार पड़ गया और मैट्रिक की परीक्षा पास न कर पाया। परिणामत: उसी कक्षा में मुझे दोबारा पढ़ना पड़ा। परन्तु ये समय श्रीमाताजी के लिए बहुत महत्वपूर्ण था। सर सी.पी. को भारतीय विदेश सेवाओं आई.एफ.एस. और भारतीय प्रशासनिक सेवाओं आई.ए.एस. दोनों के लिए चुन लिया गया था और उन्हें इन दोनों में से एक का चयन करने की छूट दी गई थी। उन्होंने जब ये बात श्रीमाताजी को बताई तो श्रीमाताजी ने कहा कि देश में रहकर राष्ट्र की सेवा करना, विदेश में पद लेने से कहीं बेहतर है। इसका अर्थ बहुत सी आर्थिक हानि थी। परन्तु राष्ट्रवादी होने के नाते उन्होंने सर सी.पी. को भारतीय प्रशासनिक सेवा की नौकरी स्वीकार करने के लिए सहमत कर लिया। चिकित्सकीय बोर्ड के समक्ष जब वे प्रस्तुत हुए तो शारीरिक रूप से अनुपयुक्त पाया गया क्योंकि उनका वजन निर्धारित वजन से चौदह पाउण्ड कम था। अत: श्रीमाताजी उन्हें डा.मौइतरा के पास मैहार ले गईं जहाँ वे पहले अपने इलाज के लिए भी जा चुकी थीं। मैहार में वे सर सी.पी. के साथ तब तक रुकीं जब तक उनका आठ–नौ किलो वजन नहीं बढ़ गया। जब वो वापिस आए तो चिकित्सकीय बोर्ड ने उन्हें शारीरिक रूप से उपयुक्त पाया और उन्हें उत्तर प्रदेश के आई.ए.एस. सेवा–स्तर के लिए चुन लिया गया।

भारतीय प्रशासनिक सेवाओं के लिए चुने जाने के पश्चात् उन्हें लखनऊ के नगर दण्डाधिकारी (मजिस्ट्रेट) के पद पर नियुक्त किया गया। मेरी कहानी यहाँ पर आपको सर सी.पी. के परिवार की पृष्ठभूमि के विषय में बताने के लिए विराम लेगी।

बहुत ही छोटी आयु में पिताजी की मृत्यु हो जाने के कारण सर सी.पी. का पालन पोषण लखनऊ के समीप 'उनाव' नामक छोटे कस्बे में संयुक्त परिवार शैली में उनके चाचाओं ने किया। वे हिन्दुओं की कायस्थ जाति से सम्बन्धित थे

और परिवार की सभी महिलाएं पारम्परिक कायस्थ हिन्दू महिलाएं थीं। सर सी.पी. का शैक्षिक जीवन अत्यन्त शानदार था तथा स्कूल और विश्वविद्यालय में वे सदैव प्रथम रहे। उन्हें कानून की अन्तिम परीक्षा में स्वर्ण पदक प्राप्त हुआ और उन्होंने ९२% अंक प्राप्त किए। आज तक ऐसा लगता है वह रिकार्ड टूटा नहीं। अपने स्कूल और कॉलेज के दिनों से ही वे संगीत एवं खेलों के बहुत शौकीन थे। उर्दू भाषा का भी उन्हें बहुत शौक था। आज भी वे उर्दू के शेर पढ़ा करते हैं।

यद्यपि उनका पालन पोषण हिन्दू परम्पराओं के अनुरूप हुआ था फिर भी उनका दृढ़ विश्वास था कि परमात्मा एक है तथा धर्म के बंधन मानव रचित हैं। इसलिए ईसाई परिवार से सम्बन्धित श्रीमाताजी से विवाह करने में उन्हें कोई कठिनाई न हुई। परन्तु उनके कट्टर पारम्परिक हिन्दू सम्बन्धियों को उनका ये विवाह स्वीकार्य न था। इसी कारण से उनके बहुत कम सम्बन्धी विवाह सामरोह में भाग लेने के लिए आए। उनके सभी सम्बन्धियों के मन में ईसाई लड़कियों के लिए बड़े अजीबो–गरीब विचार थे। उन्होंने सोचा था कि श्रीमाताजी फ्रॉक पहनेंगी, लिपस्टिक लगाएंगी और बाल–रूम डाँस के लिए अजनबी लोगों के साथ जाएंगी।

परिणामस्वरूप अपनी दुल्हन दिखाने के लिए जब सर सी.पी. उनाव गए तो उनके सभी सम्बन्धी साड़ी के पल्ले से अपना सिर ढके बुज़ुर्गों के चरण स्पर्श करने वाली इस पारम्परिक भारतीय लड़की को देखकर आश्चर्यचकित रह गए। जो व्यक्ति उन्होंने देखा वह उनके मस्तिष्क में बनाई गईं कल्पना से बिल्कुल भिन्न था। आरम्भ में वे सभी सशंकित थे परन्तु श्रीमाताजी से प्रसारित होने वाले प्रेम तथा स्नेह से वे अधिक देर तक दूर न रह सके। जब श्रीमाताजी के जाने का समय आया तो सभी लोग उदास थे कि श्रीमाताजी जा रही हैं। ये देखकर सर सी.पी. आश्चर्य चकित थे कि किस प्रकार श्रीमाताजी ने उनके रूढ़िवादी पारम्परिक सम्बन्धियों का हृदय जीता है! तब से ले कर आजतक श्रीमाताजी सर सी.पी. के सभी सम्बन्धियों के लिए शक्ति स्तम्भ हैं और कोई भी समस्या पड़ने पर समाधान के लिए वे उनके पास आते हैं। श्रीमाताजी उनकी ओर इस प्रकार से ध्यान देती हैं मानो वे उनके अपने बच्चे हों।

लखनऊ के नगर दण्डाधिकारी के पद पर दो वर्ष रहने के पश्चात् सर

सी.पी. अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट के पद पर मेरठ चले गए।

फरवरी १९५२ में मैं सदर–गृह वापिस आ गया और सदर से मैंने मैट्रिक की परीक्षा दी। परीक्षा जब समाप्त हुई तो मैं बहुत प्रसन्न हुआ। मेरी प्रसन्नता का स्पष्ट कारण ये था कि आने वाले दो–तीन महीनों तक मुझे पढ़ना नहीं पडेगा तथा एक और निहित कारण ये भी था कि श्रीमाताजी ने मुझे और मेरी बहन शशि को मेरठ आमंत्रित किया था। मार्च १९५२ के अन्त में हम दिल्ली के लिए चले जहाँ सर सी.पी. हमें लेने आए और कार द्वारा मेरठ ले गए। अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट का बंगला (बहुत) विशाल था और इसे ठीक–ठाक रखना श्रीमाताजी को बहुत कठिन लगा। इसलिए उन्होंने एक अन्य सरकारी अधिकारी को आधा बंगला रहने के लिए दे दिया। बंगला पारम्परिक अंग्रेजी शैली में बना था और इसमें बहुत बड़ा प्रांगण था जिसमें कुत्तों के लिए कुत्ताघर और पच्चीस घोड़ों के लिए अस्तबल था। परन्तु ये सब व्यर्थ पड़ा हुआ था। सर सी.पी. का वेतन क्योंकि बहुत कम था इसलिए श्रीमाताजी ने बंगले के साथ जुड़ी भूमि पर खेती करने का निर्णय किया। उन्होंने एक किसान की मदद से उस भूमि पर कार्य किया और बंजर पड़ी भूमि उर्वरक कृषि भूमि में परिवर्तित हो गई। वहाँ उन्होंने भिन्न प्रकार की सब्जियाँ उगाई जिन्हें घर के लिए उपयोग किया जाता और जितनी फालतू होती उन्हें अपने पति की आय को बढ़ाने के लिए वे बिकवा देतीं। शाम को हम लोग अफसरों के क्लब में जाते जहाँ मैंने पहली बार बैडमिंटन खेलना सीखा। दिन या तो खेत में बीतते या श्रीमाताजी के मित्रों के घर जाने में। यहाँ मैं बताना चाहूँगा कि श्रीमाताजी का फार्म जिले में सर्वोत्तम फार्म माना गया था। बैंगन इतने बड़े–बड़े होते कि मुझसे उठाए न जाते। श्रीमाताजी ने बहुत बड़े–बड़े गोभी के फूल, बहुत बड़े–बड़े टमाटर व खीरे उगाए। विश्वास नहीं होता था कि किस प्रकार इतनी बड़ी–बड़ी सब्जियाँ वे उगा पाईं! उन्होंने मुझे बताया कि ये शाकम्भरी देवी की भूमि है। बाद में मैंने देखा कि उनकी उपस्थिति में रखे गए फूलों का आकार भी बहुत बड़ा हो जाता है।

मनोरंजन का एकमात्र साधन चलचित्र देखना था। परन्तु फिल्में देखना भी समस्या थी। सिनेमा का मालिक जानता था कि अतिरिक्त जिला दण्डाधिकारी का परिवार फिल्म देखने के लिए आया है। अत: वह इस बात का ध्यान रखता था कि सर सी.पी. को न केवल टिकटों के पैसे न देने पड़े बल्कि

परिवार के सदस्यों को शीतल पेय तथा नाश्ता आदि भी भेंट किए जाएं। अतिरिक्त जिला दण्डाधिकारी का पद क्योंकि अत्यन्त महत्वपूर्ण है इसलिए वे अतिरिक्त जिला दण्डाधिकारी तथा उसके परिवार के प्रति सत्कारशील होना चाहते थे।

सर सी.पी. बहुत अधिक ईमानदार और अत्यन्त सावधान व्यक्ति थे। अत: वे टिकटों के पैसे देने के लिए भी जोर लगाते तथा नाश्ते आदि के लिए भी भुगतान करना चाहते। इसका मतलब होता उनका बहुत सा खर्चा होना। समस्या का समाधान करने के लिए, जब भी हमने फिल्म देखने जाना होता वे अपनी गाड़ी सिनेमा हॉल से कुछ दूरी पर रुकवाते ओर ड्राइवर रघुवीर को टिकटें लाने के लिए भेजते। इसके पश्चात् वे हॉल में प्रवेश करते। वो सोचते थे कि उन्हें सिनेमा हॉल के मालिकों ने नहीं देखा परन्तु उनके लम्बे कद और तीन खण्ड सूट (Three Piece Suit) सदैव उन्हें धोखा देते और सदैव शीतल पेय तथा नाश्तों का खर्च उन्हें वहन करना पड़ता। स्थिति क्योंकि बहुत दुष्कर होती जा रही थी इसलिए एक सहमति बना ली गई कि सरकार को जाने वाली टिकटों की उत्पाद कर राशि वे अवश्य देंगे तथा सिनमे का मालिक मेहमाननवाज़ी के रूप में उन्हें कुछ भी भेंट नहीं करेगा।

श्रीमाताजी की दूसरी बेटी साधना का जन्म फरवरी १९५० में लखनऊ में हुआ था। वह विकास की अत्यन्त दिलचस्प अवस्था में थी और अपनी तोतली बातों से हम सबका दिल लगाए रखती थीं। मुझे याद है कि उसे आइस्क्रीम बहुत पसन्द थी और श्रीमाताजी सदैव अच्छे रेस्तरां जाने से बचती थीं कि कहीं साधना खाने के लिए जिद़ न करे।

मेरठ में मैंने सर्वप्रथम गाड़ी चलानी सीखी। आरम्भ में सर सी.पी. ने हमें गाड़ी चलाना सिखाने का निर्णय किया। परन्तु समय अभाव के कारण वे ऐसा न कर सके। अत: मैंने ड्राइवर रघुवीर से गाड़ी चलानी सीखी। सीखने में मैं बहुत चुस्त था और थोड़े से दिनों में ही मैं सड़क पर गाड़ी चलाने लगा। परंतु ड्राइवर सदैव मुझे यातायात पुलिस से बचने की सलाह देता क्योंकि मेरे पास गाड़ी चलाने का लाइसैंस न था एक बार ऐसा हुआ कि मेरी पूरी कोशिश के बाद भी यातायात पुलिस के चौराहे से गुजरना पड़ा। मुझे डर था कि मुझसे लाइसैंस के विषय में पूछा जाएगा। परन्तु मेरी हैरानी की सीमा न रही। गाड़ी जब उसके समीप पहुँची तो उसे रोकने के स्थान पर उसने मुझे सलाम किया। तब मेरी

समझ में आया कि उसने अतिरिक्त जिला दण्डाधिकारी की गाड़ी पहचान ली थी।

मेरी गाड़ी की शैली से रघुवीर बहुत प्रसन्न था और इसके कारण मुझे बहुत आत्मविश्वास हो गया था। अन्तत: एक दिन मुझसे दुर्घटना हो गई। मैं एक टाँगे से आगे निकलना चाह रहा था और घोड़े के पास पहुँचकर मैंने भोंपू बजा दिया। घोड़ा चौंका और मेरी कार की तरफ दौड़ने लगा और टाँगे का पिछला हिस्सा कार से टकरा गया। घर आकर मैंने सभी कुछ श्रीमाताजी को बताया और ये भी कहा कि मैं अपने किए पर लज्जित हूँ। परन्तु उनसे भी कहीं अधिक मैं सर सी.पी. से डरा हुआ था। दोपहर के भोजन के लिए जब वो आए तो मैं खेत में छिप गया और सर सी.पी. के बुलाने के बावजूद भी बाहर नहीं आया। शाम को जब मैंने उनके सामने पड़ने की हिम्मत जुटाई तो उन्होंने कहा कि दुर्घटनाओं की भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। क्योंकि ये दुर्घटनाएं हैं इसलिए न तो इनका पूर्वाभास हो सकता है और न ही इनसे बचा जा सकता है। उस दिन मैंने पाठ सीखा जिसने भविष्य में मेरी बहुत सहायता की, विशेष रूप से गाड़ी चलाते हुए।

जब हम वहाँ थे तो श्रीमाताजी दो बार हमें सरधाना नामक स्थान पर स्थित बहुत पुराने चर्च में ले गईं और उन्होंने हमें बताया कि चर्च की तथा महामठ की दीवारों पर की गई सुन्दर नक्काशी और शीशे की खिड़कियों पर की गई चित्रकारी को देखने से बहुत ठंडक महसूस होती है। ईमानदारी की बात तो ये है कि मुझे कोई ठंडक महसूस नहीं हुई, हाँ मैंने चित्रकारी का आनन्द लिया। ये बात साबित करती है कि केवल आत्मसाक्षात्कारी को ही ठंडक महसूस होती है।

एक दिन मेरे बड़े भाई का एक पत्र आया जिसमें उसने लिखा था कि मैंने मैट्रिक की परीक्षा पास कर ली है और बहन शान्ताबाई का विवाह भी निश्चित हो गया है। उनका सेवाग्राम में रहने वाले केरल के एक रूढ़िवादी हिन्दू परिवार से सम्बन्धित गाँधीवादी श्री.साथिया नाथन से होना था। इसका अर्थ था एक और अन्तर्जातीय विवाह, लगातार तीसरा। हम सब अत्यन्त उत्तेजित थे। विवाह मई में होना निश्चित हुआ था और परिणामस्वरूप हमें मेरठ में रुकने का समय कम करना पड़ा। मैं इसलिए भी उत्तेजित था कि मुझे अब महाविद्यालय में प्रवेश लेना था। मैंने भू–विज्ञान विभाग में प्रवेश लेने का निर्णय लिया था क्योंकि कोयले की खान में काम करने वाले एक भाई के पास जब मैं गया था तो खान के प्रबन्धक की रहने की शैली से बहुत प्रभावित हुआ था। उसका बहुत बड़ा बंगला

था, कार तथा उसका थैला ले जाने के लिए नौकर था, दफ्तर तक गाड़ी में ले जाने के लिए उनके पास चालक था। मेरे बाल–मस्तिष्क के लिए ये सब चीज़ें सुख–सुविधा की पराकाष्ठा थीं। मैंने जब अपने चचेरे भाई से पूछा कि खान का मैनेजर किस प्रकार बना जा सकता है तो उसने बताया था कि इसके लिए विश्वविद्यालय में भू–विज्ञान की विद्या प्राप्त करनी होगी। इस प्रकार मैंने ये निर्णय किया कि यदि मैंने अंक प्राप्त कर लिए तो विज्ञान महाविद्यालय में प्रवेश लूंगा। मेरी बहन का विवाह अत्यन्त सादगी से हुआ क्योंकि मेरे पिताजी और दूल्हा किसी भी प्रकार के दिखावे के लिए पैसा बर्बाद न करना चाहते थे। गाँधीजी के सेवाग्राम आश्रम में रहने वाले सभी लोग आ गए थे। उनकी सादगी और निश्छलता को देखकर मैं हैरान था। मैं इस बात से भी बहुत प्रभावित था कि उच्च क्षमता और उपलब्धियों वाले लोगों ने भी गाँधीजी का अनुयायी बनने के लिए सभी कुछ त्याग दिया था। विवाह के पश्चात् हम सब सेवाग्राम गए और गाँधीजी के आतिथ्य से हमारा सत्कार किया गया।

जब मेरे भाई को मेरी इस मंशा का पता चला कि मैं भू–विज्ञान विभाग में प्रवेश लेना चाह रहा हूँ तो वे अत्यन्त अशान्त हो गए क्योंकि वो चाहते थे कि मैं वाणिज्य विभाग में प्रवेश ले कर शासपत्रित लेखाकर बनूं ताकि उनके पेशे में मैं उनकी सहायता कर सकूं परन्तु मेरे पिताजी ने कहा कि मेरी इच्छा ही सर्वोपरि होगी तथा उनके सभी बेटों को अपना पेशा चुनने का पूर्ण अधिकार है। मैंने हिस्लोप कॉलेज (Hislop College) में प्रवेश के लिए आवेदन किया। अपने स्कूल का क्योंकि मैंने क्रिकेट में प्रतिनिधित्व किया था इसलिए मुझे खेल कोटे में प्रवेश दिया गया। लॉरी जिसने हॉकी में भारत का प्रतिनिधित्व किया था उसके आवेदन को स्वीकार करने के पश्चात् मेरा आवेदन विधिवत स्वीकार किया गया। मैं अभी अपने आवेदन पत्र को औपचारिक रूप से स्वीकार करने की प्रतीक्षा कर रहा था कि मुझे अपने स्कूल के दो मित्र मिले जो वाणिज्य कॉलेज में पढ़ रहे थे उनमें से एक के.के. अधिकारी था जो बाद में जबलपुर उच्च न्यायालय का जज बना और दूसरे श्री.एम.टी. गाभे बाद में नागपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति बने। एम.टी. गाभे 'मोरु' नाम से प्रसिद्ध थे और के.के. अधिकारी 'डाकू' नाम से। मोरु ने मुझे सलाह दी कि मैं वाणिज्य विभाग में प्रवेश लूं क्योंकि इस प्रकार मैं प्रथम वर्ष से ही कॉलेज की क्रिकेट टीम में

खेलने का अवसर प्राप्त कर लूंगा जबकि हिस्लोप कॉलेज में मुझे अवसर मिलने के बहुत कम मौके हैं। अगर मुझे अवसर मिल भी गया तो मुझे दो वर्ष प्रतीक्षा करनी पडेग़ी। इसके साथ–साथ डाकू ने मुझे कहा कि वाणिज्य कॉलेज में उसे बहुत अकेलापन महसूस होता है इसलिए मैं वाणिज्य कॉलेज में प्रवेश लूं ताकि उसे साथ मिल सके। मैंने इस प्रस्ताव पर दो दिन तक विचार किया और क्रिकेट के लिए मेरा प्रेम अन्य सभी चीज़ों पर विजयी हुआ। अत: मैं गया और जाकर अपने भाई को बताया कि मैंने वाणिज्य कॉलेज में प्रवेश लेने का निर्णय किया है। वह बहुत प्रसन्न हुआ, परन्तु वह न जानता था कि मेरे निर्णय बदलने के पीछे वास्तव में क्या कारण है।

मेरे पिताजी ने मुझे वाणिज्य कॉलेज के प्रधानाचार्य श्री.टोखी के नाम से परिचय पत्र दिया। श्री.टोखी सैद्धान्तिक रूप से गाँधीवादी थे और उनके मन में मेरे पिताजी के लिए बहुत सम्मान था। चपरासी के हाथ जब मैंने अपने पिताजी का पत्र भेजा तो प्रधानाचार्य वरॉंडे से मुझे मिलने के लिए बाहर आए क्योंकि मैं वहाँ अपनी बारी की प्रतीक्षा मैं बैठा हुआ था। एक अन्य लड़का भी वहाँ प्रवेश के लिए प्रतीक्षा कर रहा था। प्रधानाचार्य ने पूछा कि दोनों में से साल्वे कौन है? जब मैंने अपना परिचय दिया तो उन्होंने कहा कि मेरे अच्छे अंक है फिर भी मैं वाणिज्य विभाग में प्रवेश लेने की प्रतीक्षा कर रहा हूँ क्योंकि ये विभाग तो प्राय: अन्यत्र अस्वीकार किए हुए प्रार्थियों की सल्तनत माना जाता है। मैंने प्रधानाचार्य को बताया कि अपने अंकों के बावजूद भी मैंने वाणिज्य कॉलेज में प्रवेश लेने का निर्णय किया है क्योंकि मैं शासपत्रित (Chartered Accountant) बनना चाहता हूँ। यह सीधा–झूठ मैंने उनके सम्मुख बोला था क्योंकि उस आयु में ऐसा कहना बहुत अधिक भविष्यवादी होना होता और पेशे के विषय में सोचना बहुत दूर की बात होती। तुरंत लाभ जो मुझे दिखाई दिया वो था कि मैं कॉलेज क्रिकेट टीम के लिए खेलूंगा। इन सतही और उथले कारणों के लिए मैंने वाणिज्य कॉलेज में प्रवेश लिया। जिस कक्षा में डाकूने प्रवेश लिया था उसी मैं मैंने भी प्रवेश लिया। परन्तु जब मैं वास्तव में कॉलेज गया तो उससे एक दिन पूर्व डाकूने वह कॉलेज छोड़कर विज्ञान विभाग में प्रवेश ले लिया था। कक्षा में मेरे स्कूल का एक भट्ट नाम का मित्र भी था जो अत्यन्त मेघावी एवं परिश्रमी था (अत: मेरी पसन्द के अनुरूप न था) इच्छानुसार मुझे क्रिकेट टीम के प्रथम ग्यारह

खिलाड़ियों में चुन लिया गया। केवल इतना ही नहीं मैंने कॉलेज का बैडमिंटन में भी प्रतिनिधित्व किया। श्रीमाताजी स्वयं बैडमिंटन की प्रथम दर्जे की विजेता थीं। प्रथम वर्ष में ही मैं बैडमिंटन विजेता बन गया और सिंगल और डबल कप जीते। इसका सारा श्रेय श्रीमाताजी को जाता है क्योंकि उन्होंने ही मुझे खेलना सिखाया था। क्रिकेटर के रूप में अपनी योग्यता दिखाने की मेरी आशाएं विफल हो गईं क्योंकि अन्तरकॉलेज प्रतियोगिता के पहले दौर में ही हमारा मुकाबला उस वर्ष के विजेताओं से हो गया और परिणामत: हम बुरी तरह से हारे।

दिवाली के समय श्रीमाताजी नागपुर में हमारे साथ थीं, वो मेरठ से आईं थीं। मेरे महाविद्यालय की सामाजिक गोष्ठी में मुजादीद न्याज़ी नामक एक बहुत बड़े गज़ल गायक को संगीत संध्या के लिए बुलाया गया था और श्रीमाताजी , मेरे पिताजी तथा परिवार के सभी सदस्यों को भी आमंत्रित किया गया था। जब प्रधानाचार्य ने मुझे केवल साल्वे या मेरे पहले नाम से न बुलाकर श्री.साल्वे नाम से सम्बोधित किया तो श्रीमाताजी दंग रह गईं। उन्होंने मेरे पिताजी से कहा कि सम्भवत: मैंने प्रधानाचार्य पर अच्छा प्रभाव डाला होगा। मेरे प्रथम वर्ष की परीक्षा महाविद्यालय की ही परीक्षा थी और मैं अपने ऐसे मित्र के साथ पढ़ता था जो प्रात: दो बजे रेडियो सुनने का शौकीन था। उसके विनोदशील होने के कारण मुझे उसका साथ बहुत पसंद था। भाग्यवश या दुर्भाग्यवश उसने प्रथम वर्ष के पश्चात् कॉलेज छोड़ दिया। तथा धनु भट्ट भी कॉलेज से चला गया। इसके पश्चात् मैंने कुछ अन्य मित्र बनाए जिनमें मधु जोशी, श्याम जोध और आबा फड़नवीस मुख्य थे। मेरी कक्षा में दो लड़कियाँ थीं और दोनों ने ही मुझे अपना भाई बना लिया था। वो मुझे अपने डेस्क के पीछे बिठातीं ताकि अन्य लड़के उन्हें परेशान न करें। अपनी वार्षिक परीक्षा के लिए मैं मुश्किल से पन्द्रह दिन पढ़ा फिर भी मैं पास हो गया। तब तक श्रीमाताजी बम्बई आ गईं थीं क्योंकि सर सी.पी. जहाज़रानी निगम के मुख्य निदेशक (Director General of Shipping Corporation) थें।

एक घटना या एक साहसिक कार्य का यहाँ मैं वर्णन करना चाहूंगा। इंटरमीडिएट की परीक्षा समाप्त होते ही हम पाँच छ: मित्रों ने साईकिलों पर नागपुर से बम्बई जाने का निर्णय किया। नागपुर से बम्बई की दूरी लगभग ९०० कि.मी. है। मुझे विश्वास था कि यदि घर पर मैंने सच्ची बात बता दी तो ४८ गर्मी

वाले इस मौसम में कोई भी मुझे इस साहसिक कार्य को करने की आज्ञा न देगा। अत: मैंने एक कहानी घड़ी कि मैं अपने मित्र की शादी में जा रहा हूँ। ये कहानी स्वीकार कर ली गई परंतु केवल इतने से ही मेरी समस्या का अन्त नहीं हुआ। दूसरी ओर अत्यन्त महत्वपूर्ण समस्या पैसे का प्रबन्ध करना था और वो भी सौ रुपये की बड़ी रकम का। उन दिनों में हमें पुस्तकालय की पुस्तकें उधार लेने के लिए पैंतालीस रुपये ज़मानत की राशि के रूप में रखने होते थे जो वापिस लिए जा सकते थे। पुस्तकें उधार लेने की बात तो दूर रही मैंने तो पूरे वर्ष में लाइब्रेरी की शक्ल ही न देखी थी। अत: मुझे बड़ी आसानी से पैंतालीस रुपये की पूरी रक़म वापिस मिल गई जिसे मैंने अपनी जेब में डाल लिया। उन दिनों रेडियो नाटकों में मुझे छोटी–छोटी भूमिकाएं मिल जाया करती थीं जिनके लिए वे मुझे पन्द्रह रुपये दिया करते थे। किसी तरह से मैंने एक भूमिका प्राप्त कर ली और मेरी जेब की राशि साठ रुपये हो गई। मेरी एक भतीजी थी जो कार्यरत लड़की थी उसने मुझे पच्चीस रुपये इस शर्त पर उधार देने का वादा किया कि जब भी तुम इन्हें लौटाने के योग्य हो जाओ तो लौटा देना। इस प्रकार मैंने ८५ रुपये एकत्र कर लिए। क्योंकि श्रीमाताजी उन दिनों बम्बई में रहती थीं तो वहाँ ठहरने का खर्च वो सम्भाल लेतीं और मुझे विश्वास था कि पन्द्रह रुपये का प्रबन्ध तो मैं बम्बई में कर ही लूंगा। ८५ रुपये में से पाँच रुपये साईकिल की मरम्मत पर खर्च किए गए। नागपुर के कलेक्टर से एक पत्र लिया गया तथा हमारे कॉलेज के प्रधानाचार्य से भी और हमारे प्रस्थान की तिथि नियत कर दी गई। प्रस्थान से पूर्व सेवाग्राम तक परीक्षण दौड़ की गई। सेवाग्राम में शान्ता ताई रहती थी। ८० कि.मी. की दूरी ढ़ाई से तीन घण्टों में तय कर ली गई और उसी शाम को हम नागपुर लौट आए क्योंकि दो दिनों बाद ही हमें अपनी यात्रा पर प्रस्थान करना था।

नियत तिथि को हम सब वैराइटी स्क्वैयर (नागपुर का अति प्रसिद्ध भवन समूह) पर एकत्र हुए और हमने विदा करने के लिए आए सभी मित्रों के साथ मज़ेदार चाय पी। ठीक साढ़े पाँच बजे हम छ: मित्र नागपुर से बम्बई के लिए चल पड़े। घटना इस प्रकार हुई कि मेरे एक मित्र का चाचा स्थानीय अखबार के लिए कार्यरत था। हमें प्रसिद्धि देने के लिए उसने उस दिन के समाचार पत्र में ये समाचार छापा कि वाणिज्य कॉलेज के छ: लड़के साईकिलों से बम्बई के लिए रवाना हुए और टीम का नेतृत्व एच.पी.साल्वे कर रहे हैं।

हमें इस समाचार की बिल्कुल भी खबर न थी तथा शाम तक हमने सौ किलोमीटर की दूरी तय कर ली। गाँव के प्रधान श्री.पाटील द्वारा दिए गए चिकन के स्वादिष्ट खाने का आनंद लेकर हम सरकारी अतिथि गृह में आराम कर रहे थे। श्री.पाटील, को हमने आश्वस्त कर लिया था कि हमें ग्रामीण भारत के सर्वेक्षण का कार्य सौंपा गया है ताकि हम ये देख सकें कि वहाँ पर भारत की आर्थिक उन्नति के लिए घरेलू उद्योग लगाने की कितनी सम्भाव्यता है। वास्तव में मेरी बड़ी–बड़ी बातों से श्री.पाटील इतने प्रभावित हो गए थे कि उसने हमें दो दिन गाँव में रुकने की प्रार्थना की ताकि हम गाँव का सर्वेक्षण भली–भांति कर सकें।

यह सोचते हुए कि अगले दिन हमने कितनी दूरी तय करनी है अभी हम बिस्तर पर सोने वाले ही थे कि हमें कार की मुख्य रोशनी हमारी दिशा में आती हुई दिखाई दी। हमने सोचा कि अतिथि गृह में रहने के लिए कोई यात्री आए हैं इसलिए आने वाली कार को हमने कोई महत्व न दिया। इसलिए भी हमने कार की चिन्ता नहीं की क्योंकि श्री.पाटील ने अतिथि गृह के चौकीदार को हिदायत दी थी कि नए यात्रियों के आने के कारण हमें परेशान न किया जाए।

हमने कार से एक व्यक्ति को उतरते हुए देखा। उसके हाथ में राइफल गन थी जिससे हमने यह अन्दाजा लगाया कि वो कोई शिकारी होगा जो अतिथि गृह में रात गुजारने के लिए आया है। जब वह समीप आया तो मुझे सदमा लगा क्योंकि ये तो सन्नी भैया थे।

घटना इस प्रकार हुई कि हम छः लड़कों की साईकिल से बम्बई के लिए प्रस्थान की खबर एन.के.पी. ने पढ़ी और वो दौड़कर वहाँ पहुँचे जहाँ हम रहते थे तथा उन्हें पता चला कि हम वास्तव में बम्बई के लिए चल पड़े हैं और वो भी बिना कोई पैसा लिये। इससे उन्हें बहुत परेशानी हुई। मेरे पिताजी को भी बहुत कष्ट हुआ और ये निर्णय किया गया कि मुझे नागपुर वापिस लाने के लिए सन्नी भैया को भेजा जाए। ये बात जानते हुए कि मैं बम्बई जाने के लिए दृढ़ संकल्प हूँ सन्नी भैया ने मुँह लटका कर कहा कि मेरे इस प्रकार चले आने से पिताजी को बहुत बड़ा सदमा लगा था जिसके कारण उन्हें अस्पताल भर्ती कराना पड़ा। इस हालात में मुझे सन्नी भैया के अनुरोध के सम्मुख झुककर नागपुर जाना पड़ा। मैं जब वापिस आया तो सबसे पहले मिलने वाले व्यक्ति मेरे पिताजी थे। मुझे इतना क्रोध आया कि मैंने परिवार के किसी भी सदस्य से एक सप्ताह तक बात

नहीं की और इस प्रकार मेरे साहसिक कार्य का अन्त हुआ। मेरे मित्र बम्बई गए और पूना और औरंगाबाद के रास्ते २५०० कि.मी. की दूरी तय करके वापिस आए। एक तरह से ऐसा होना बहुत अच्छा हुआ क्योंकि उसी सप्ताह श्रीमाताजी गर्मी की छुट्टियाँ हमारे पास बिताने के लिए नागपुर आईं। हम छिंदवाड़ा के समीप स्थित पंचमढ़ी नामक पहाड़ पर गए और वहाँ पन्द्रह दिन की शानदार छुट्टियाँ बिताईं।

मेरे पिताजी का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा था। अतैव मेरी माताजी ने कहा कि उन्हें पूर्ण शारीरिक परीक्षण के लिए बम्बई जाना चाहिए। तो मेरी माँ, पिताजी और मैं बम्बई में श्रीमाताजी के यहाँ ठहरने के लिए चले गए। वे वहाँ पर कफ पेरेड (Culf Parade) में ईवानहो भवन (Ivanhoe Building) में रहती थीं। जे.जे. स्कूल आफ आर्ट में चित्रकारी और ललितकला पढ़ने के लिए इन्दु पहले से ही वहाँ थी। बम्बई में मैं अपने पिताजी को टाटा कैंसर रिसर्च इन्स्टीट्यूट परीक्षण के लिए ले गया ताकि कैंसर का शक दूर किया जा सके। यहाँ पर कैंसर विशेषज्ञ डा.बोर्जिस ने उनका परीक्षण किया और कहा कि संघातिकता (Malignancy) की कोई सम्भावना नहीं है। बम्बई में जब हम थे तो बड़ी घटनाएं घटित हुईं। मेरे भाई सुशील की नागपुर में मृत्यु हो गई, इसकी सूचना एन.के.पी. के एक मित्र ने दी। ये समाचार मेरे माता–पिता तथा हम सबके लिए बहुत ही दु:खद था वह अपंग तो था परन्तु अत्यन्त अबोध तथा प्रेम एवं स्नेहमय था। दूसरा समाचार ये था कि मैंने इन्टरमीडिएट की परीक्षा पास कर ली थी। ये विश्वविद्यालय की परीक्षा थी और अब में स्नातक स्तर की पढ़ाई के लिए योग्य हो गया था।

बम्बई में रहते हुए कुछ अटपटी घटनाएं हुईं जिनका सामना श्रीमाताजी और सर सी.पी. को करना पड़ा। इनमें से मैं केवल एक का वर्णन करूंगा। दोनों बहुत प्रसिद्ध थे और उन्हें मिलने के लिए बहुत से मित्र आया करते थे। उनका एक विशेष मित्र था जो बिना किसी पूर्व सूचना के कभी भी टपक पड़ता था। एक शाम सर सी.पी. दफ्तर से थके हुए आए और अपने इस मित्र के टपक पड़ने के डर से सहमे हुए बैठे थे। उनकी चिन्ता का अन्दाज़ा लगाकर श्रीमाताजी ने कहा कि क्योंकि इस मित्र ने अपने आने की कोई सूचना नहीं दी है तो इसलिए हम सब कहीं बाहर जाकर रात का खाना खाएंगे और फिल्म देखेंगे। घर को बन्द देखकर निश्चित रूप से वह लौट जाएगा। हम लोग घर से चले गए और रात का शो देखकर वापिस आए तो देखा कि उनका मित्र, उसकी पत्नी और बच्चा

पड़ोसियों से कुर्सियाँ मांगकर दरवाजे पर बैठे थे। तीन–चार घण्टों से वे वहाँ बैठे हुए थे। उनके जाने के पश्चात् हमने सर सी.पी. का बहुत मज़ाक बनाया कि ऐसे उबाऊ लोगों को अपने इर्द–गिर्द एकत्र करने की उनमें बड़ी योग्यता है। परन्तु हमें ऐसे लोगों से बचने के उपाय खोजने की भी चिन्ता थी। मेरे विचार से आज भी सर सी.पी. और श्रीमाताजी को इस मामले में सफलता प्राप्त नहीं हुई है।

एक अन्य घटना है जिसका वर्णन मैं करना चाहूंगा। जिस भवन में वे रहते थे वह मंत्रालय के समीप स्थित था। एक दिन बड़ा जलूस मंत्रालय पर आया परन्तु इसे वहाँ पहुँचने से पहले ही पुलिस ने रोक दिया जिसके परिणामस्वरूप पुलिस ने लाठी चार्ज किया जिसके कारण बहुत से लोग जख्मी हो गए, जिनमें से बहुत लोग निर्दोष थे जो वहाँ से गुज़र रहे थे। इसके बाद पुलिस को गोली चलानी पड़ी। पाँचवी मंजिल के अपने फ़्लैट की बैल्कॅनि से श्रीमाताजी पूरा तमाशा देख रही थीं। जख्मी लोगों की सहायता करने के लिए वे दौड़ पड़ीं। कुछ को प्रारम्भिक मदद के लिए वे फ़्लैट तक लाईं और उनकी गोलियां निकालीं और उनकी पट्टियाँ कीं। बाद में उनकी चिकित्सा की गई क्योंकि तब तक उन्होंने एम्बुलैंस बुला ली थी जो उन्हें अस्पताल ले गई। सर सी.पी. को जब पता चला तो वे अत्यन्त परेशान हुए क्योंकि श्रीमाताजी ने सरकार विरोधी आंदोलनकारियों की सहायता की थी और उनकी रक्षा की थी। सरकारी अधिकारी होने के कारण सर सी.पी. को सरकार की प्रतिक्रिया की चिन्ता थी क्योंकि उनकी पत्नी ने सरकार विरोधी लोगों की सहायता की थी और उन्हें बचाया था। उन्होंने अपने भय की चर्चा जब श्रीमाताजी से की तो श्रीमाताजी ने कहा कि उन्होंने यह सब अपने मानवीय स्वभाव के कारण किया है। जब वे इन लोगों की सहायता कर रही थीं तो उन्होंने इस बात को नहीं सोचा था कि पत्नी के रूप में उनकी पदवी मरने वाले जख्मी लोगों की सहायता से अधिक महत्वपूर्ण थी। उनके इस कथन ने निश्चित रूप से सर सी.पी. के अंदर सरकारी अधिकारी को शान्त कर दिया।

बम्बई में जब हम रुके हुए थे तो मेरे पिताजी श्री.हिरै (Mr.Hiray) नामक एक मंत्री से मिले। मंत्री जी ने मेरे पिताजी को पूर्ण सम्मान दिया। मेरे पिताजी उनके पास मौलाना अब्बुल कलाम आज़ाद की कुरान पर की गई टिप्पणियों के अनुवाद की पुस्तक को छापने के लिए साधन खोजने के लिए गए थे। मेरे

पिताजी मौलाना आजाद़ द्वारा लिखी गई कुरान पर टिप्पणियों का अनुवाद कर रहे थे। मौलाना आजाद़ उन दिनों केन्द्रीय शिक्षा मंत्री थे। कुरान के इस अनुवाद की प्रेरणा के पीछे भी एक छोटी सी कहानी है।

जैसा पहले वर्णन किया जा चुका है विभाजन के बाद के परिणामों के फलस्वरूप पाकिस्तान और भारत में बहुत बड़े स्तर पर जातीय दंगे भड़क उठे थे। पाकिस्तान में मुसलमान लोग वहाँ से निकलकर भारत आने वाले हिन्दुओं का वध कर रहे थे और बदले के रूप में भारत में हिन्दू लोग मुसलमानों की हत्या कर रहे थे। इन हत्याओं ने मेरे पिताजी को अत्यन्त गहन रूप से व्याकुल कर दिया। एक शाम मेरे पिताजी के फिरोज़ शाह रोड वाले घर में कुछ मुसलमान ये सोचकर घुस आए कि मेरे पिताजी ने हिन्दुओं को वहाँ छिपाया हुआ है। मेरे पिताजी ने उनके क्रोध को शान्त किया और उनसे पूछा वे ये हत्याएं क्यों कर रहे हैं। मुसलमानों ने इसका उत्तर देते हुए कहा कि इस्लाम विरोधी लोगों की हत्याएं करने से उन्हें जन्नत प्राप्त होगी। मेरे पिताजी ने जब उनसे पूछा कि यह गलत धारणा उनमें कहाँ से आई तो उन्होंने कहा कि पावन कुरान में यह लिखा हुआ है। तब मेरे पिताजी ने उनसे पूछा कि क्या उन्होंने स्वयं कुरान पढ़ा है या वे मौलवी के कहने पर यह कुकृत्य कर रहे हैं तो उन्होंने उत्तर दिया कि कुरान तो अरबी भाषा में लिखी हुई है और पूरा जीवन भारत में रहने वाले लोग तो उर्दू भी पूरी तरह से नहीं जानते। मेरे पिताजी ने उन्हें बताया कि उन्होंने कुरान को पढ़ा है। कुरान में किसी प्रकार की हत्या के विषय में नहीं लिखा गया और जो कुछ वे कर रहे हैं वह उनकी अज्ञानता से तथा मौलवियों पर अन्धविश्वास के कारण है। तब उन्हें महसूस हुआ कि कुरान का हिन्दी में अनुवाद करके भारत के लोगों के अज्ञानान्धकार को दूर करना उनकी जिम्मेदारी है। तब वे मौलाना आजाद़ से मिले जिन्होंने मेरे पिताजी से कहा कि वे उनकी कुरान पर लिखी गई टिप्पणियों का अनुवाद करें क्योंकि ये टिप्पणियाँ इस संकट की घड़ी में बहुत उपयुक्त और सामयिक हैं। केन्द्रीय असैम्बली के सदस्य होने के कारण अनुवाद कार्य के लिए मेरे पिताजी के पास समय न था। परन्तु वर्ष १९५२ में जब उन्हें चुनाव के लिए टिकट नहीं दिया गया तो उन्होंने अनुवाद कार्य को अधिक समय देने का निर्णय किया। अनुवाद के लिए क्योंकि अरबी, उर्दू और हिन्दी तीनों भाषाओं के ज्ञान की आवश्यकता थी इसलिए उन्हें कोई अच्छा सहायक न प्राप्त हो सका।

उन्होंने पूरे अनुवाद को अपने हाथ से लिखने का निर्णय किया। कुरान की पूरी टिप्पणियों का अनुवाद दो सौ पृष्ठ वाले चालीस रजिस्टरों में हुआ जिन्हें उन्होंने स्वयं लिखा ये रजिस्टर आजकल श्रीमाताजी के पास है। उर्दू भाषा में मेरी प्रारम्भिक दीक्षा सम्भवत: इसी कहानी से हुई क्योंकि खाने की मेज़ पर जब हम बैठते तो बातचीत का विषय कुरान ही होता।

श्री.हिरै ने उस समय के उर्दू पुस्तकों के मुद्रक मैसर्ज़ ताज बुक डिपो के नाम परिचय पत्र दिया। ताज बुक डिपो से जब सम्बन्ध स्थापित किया गया तो उन्होंने पुस्तक को छापने में असमर्थता जताई क्योंकि उनके पास अरबी भाषा का टाइप न था। इसलिए ये पुस्तक आज भी अनछपी है।

एन.के.पी. और उनकी पत्नी भी बम्बई में रहते थे और अब हम भी वहीं आ गए थे। इसलिए ये निर्णय किया गया कि नागपुर के घर को मेरे सबसे बड़े भाई को सौंपकर हम एन.के.पी के साथ रहने लगे। अत: हम जब बम्बई से वापिस आए तो अपना घर आशा विला (नई कॉलोनी, नागपुर) में ले आए। इस घर का एक उपगृह भी था जिसमें तीन कमरे थे जिनमें हम रहने लगे। श्रीमाताजी की बड़ी बेटी कल्पना ने स्थानीय बिशप कॉटन स्कूल में प्रवेश लिया था। श्रीमाताजी भी साधना के साथ नागपुर स्थानांतरित हो गई थीं। बिगड़ते हुए स्वास्थ्य के बावजूद भी पिताजी को न्यायालय जाते हुए देखना मेरे लिए चिन्ता का कारण था और श्रीमाताजी निश्चित रूप से मेरी मित्र और मार्गदर्शक थीं। मुझे लगा कि अगले चार पाँच वर्षों तक पिताजी पर बोझ बने रहना उचित न होगा। एन.के.पी. का व्यवहार भी परिवार के प्रति उत्साहजनक न था। इसलिए मैंने कोई नौकरी कर लेना उचित समझा। श्रीमाताजी ने सर सी.पी. से बात की और ये निर्णय किया गया कि मैं मर्चेन्ट नेवी में चला जाऊं। बम्बई में मेरा साक्षात्कार हुआ और प्रशिक्षण के लिए कलकत्ता के समुद्री जहाज पर जाने को कहा गया। ३० दिसम्बर १९५४ को मैंने परिवार को और अपने मित्रों को नमस्ते की और कलकत्ता चला गया। मुझे वाष्पीकरण कमरे (Boiler Room) की देखभाल का काम सौंपा गया। परन्तु लम्बे समय तक दम घोटू वातावरण में रह पाना मुझे कठिन लगा और मैंने कैप्टन से प्रार्थना की कि मुझे डैक पर कार्य दे दें। परन्तु उन्होंने इसके लिए मना कर दिया और मैंने वह कार्य छोड़ने का निर्णय कर लिया। मर्चेन्ट नेवी से मेरा ये प्रेम केवल तीन दिनों तक चला। केवल हानि

यही हुई कि कर्मी दल में कमी हुई। मैं नागपुर वापिस आया और वाणिज्य कॉलेज में पुन: प्रवेश ले लिया। मेरे आने से प्रोफेसरों समेत सभी लोगों को प्रसन्नता हुई। वर्ष १९५५ के जनवरी माह में मेरे पिताजी ने एक मुकदमा लिया जिसमें उन्हें सामूहिक हत्या के बारह अभियुक्तों की पैरवी करनी थी। बिगड़े हुए स्वास्थ्य के बावजूद भी वो इस मुकदमें की तैयारी में लगे रहते। शाम के समय मैं और मेरी बहन शशि बारी–बारी से उनके पैर और उनकी टांगे दबाते। आठ फरवरी के दिन रक्षा वकील के रूप में अपनी बहस समाप्त करके बुरी तरह से थके मांदे वे घर लौटे। मेरी परीक्षा क्योंकि समीप आ रही थी और में रात को देर तक पढ़ता था इसलिए मैं उनकी श्वास की बेचैनी को सुन सका। मैं उनके पास गया और दो तीन बार उनसे पूछा कि उन्हें किसी प्रकार की सहायता चाहिए? परन्तु सामान्य रूप से उन्होंने कहा कि सुबह तक वो ठीक हो जाएंगे। परन्तु प्रात:काल उनका दर्द बढ़ गया था और ये निर्णय किया गया कि उन्हें मेयो अस्पताल के सशुल्क वार्ड में भर्ती कराया जाए। सशुल्क वार्ड खाली न होने के कारण हमने उस समय के स्वास्थ्य मंत्री श्री.कन्नमवार को टेलिफोन किया जिन्होंने पारसी वार्ड उपलब्ध कराया। ये वार्ड सर्वोत्तम था। जब तक उन्हें ले जाया गया तब तक मेरे पिताजी दो बार खून की उल्टी कर चुके थे। उनके वहाँ भर्ती होते ही सिविल सर्जन डॉक्टर उद्दनवाडेकर के नेतृत्व में डॉक्टरों की एक टीम उनकी देखभाल के लिए उपस्थित थी। परन्तु इलाज शुरु होने तक सम्भवत: उनके पेट का अल्सर फट गया था और वे खून की उल्टियाँ करने लगे थे। उनके कष्ट को कम करने के लिए मेरे विचार से उन्हें नींद की गोली दे दी गई जिसके कारण वे सरसाम (delirium) की अवस्था में चले गए और सारी रात अपने शिकार तथा मछली पकड़ने के दिनों के बारे में बोलते रहे। पूरी रात मैं उनके बिस्तर के पास बैठा रहा। प्रात:काल के समाचार पत्र में उनके अस्पताल में भर्ती होने का समाचार छपा था और उनके बहुत से मित्रों और प्रशंसकों ने अस्पताल आना शुरु कर दिया। उन दिनों में कारों को सशुल्क वार्ड तक आने दिया जाता था। उन्हें देखने आने वालों की संख्या इतनी अधिक थी कि पूछताछ कक्ष अत्यन्त व्यस्त हो गया। एक बार मैं पूछताछ कक्ष के पास खड़ा हुआ था और एक कार आकर रुकी। इससे पूर्व की कार मैं बैठे हुए लोग कुछ पूछते कक्ष में नियुक्त व्यक्ति ने बिना ये जाने कि वे मेरे पिताजी से मिलने आए भी हैं या नहीं उन्हें पारसी वार्ड की तरफ इशारा कर दिया। मंत्री, न्यायाधीश,

वकील, खिलाड़ी, और मुवक्किलों ने उन्हें देखने के लिए लाइन लगा दी थी। हमने अपनी सारी बहनों को तार भेज दिए थे। दो बहनें ग्वालियर में रहती थीं इसलिए वो अभी तक न आई थी। श्रीमाताजी हर समय उनके सिराहने के समीप बनी हुईं थीं। उन्होंने हमें बताया कि पिताजी उन्हें अत्यन्त दिलचस्प कानूनी मुकदमे सुना रहे थे। १४ फरवरी के दिन डा.उद्दनवाडेकर ने मेरे पिताजी के जीवित रहने की सभी आशाएं छोड़ दीं और क्योंकि वे मेरे पिताजी के गहन प्रशंसक थे उन्होंने सलाह दी कि उनके जीवन का अन्त अस्पताल में नहीं होना चाहिए। १५ तारीख की प्रात: हम उन्हें एन.के.पी. के निवास पर ले गए। दस बजे प्रात: उनमें स्वस्थ होने के चिन्ह दिखाई दिए। श्रीमाताजी हर समय उनके समीप थीं। पिताजी ने उनकी चूड़ियाँ छूकर कहा, ''बाई क्या तुम मुझे भूखा मार दोगी?''

तुरन्त श्रीमाताजी ने उनसे कहा कि जो भी वो खाना चाहें खाएं। उन्होंने हमें डॉक्टर उद्दनवाडेकर को बुलाने के लिए कहा। हमने तुरन्त उन्हें बुलाया। वे हमारे पिताजी को राव साहिब कहकर बुलाया करते थे। ये जानने के लिए कि क्या मेरे पिताजी को अस्पताल से एन.के.पी के निवास पर आने का ज्ञान है (क्योंकि अधिकतर समय वे सरसाम की उत्तेजना की स्थिति में थे) डॉक्टर ने मेरे पिताजी से पूछा कि वे कहाँ थे? परन्तु उनके उत्तर से हम भौचक्के रह गए क्योंकि वे सदैव सही बात किया करते थे। यहाँ तक कि सरसाम कि स्थिति में भी उनकी बातें बेसिरपैर की नहीं होती थीं। जो उत्तर उन्होंने दिया उसकी आशा किसी ने भी न की थी। उन्होंने डॉक्टर को कहा कि वे 'वहाँ' स्वर्ग में गए थे परन्तु वहाँ उन लोगों ने कहा कि अभी उनके पास कोई डॉक्टर न था इसलिए उनके वहाँ पहुँचने में कुछ समय लगेगा। स्पष्ट रूप से उन्होंने कहा था कि वे दूसरे विश्व में गए थे परन्तु वहाँ उनका स्वागत करने के लिए अभी वो लोग तैयार न थे। १५ तारीख की शाम को उनके सारे बच्चे उनके चहुँ ओर एकत्र हो गए। उन्होंने श्रीमाताजी से पूछा कि क्या तुमने तरीका खोज लिया है? वो सामूहिक आत्मसाक्षात्कार के विषय में पूछ रहे थे। इस बात को हम बहुत समय बाद समझ पाए। उन्होंने सबको देखा और फिर बेहोशी में चले गए और १७ तारीख की प्रात: काल तक वो इस स्थिति में रहे। १७ फरवरी १९५५ को लगभग साढ़े नौ बजे वे स्वर्गलोक चले गए। अन्तिम समय पर मैं और मेरा मित्र उनके बिस्तर के पास थे। श्रीमाताजी गुसलखाने में थीं, जब वो बाहर आईं तो

पिताजी के प्राण पखेरू उड़ चुके थे। रातोंरात मेरी माताजी के बाल सफेद हो गए थे। श्रीमाताजी, जिनकी आँखों से किसी भिखारी को भी देखकर आँसू झड़ने लगते थे, ने अपना सारा साहस बटोरा और अंतिम संस्कार का प्रबन्ध करने में जुट गईं। पहली बार मैंने मौत को इतने निकट से देखा था और मेरे लिए ये समझ पाना अत्यन्त गहन सदमा था कि किस प्रकार जीवन से परिपूर्ण व्यक्ति एक दम जीवनहीन हो जाता है।

अंतिम संस्कार शाम के समय होना निश्चित हुआ और ये समाचार नगर में आग की तरह से फैल गया। सारे न्यायालयों में, उच्च न्यायालय समेत, ये नियम था कि किसी भी वकील की मृत्यु पर न्यायालय बन्द न होंगे। परन्तु उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों सहित सभी न्यायाधीश मेरे पिताजी का इतना सम्मान करते थे कि सभी न्यायाधीश आकस्मिक अवकाश लेकर अंतिम संस्कार में सम्मिलित होने के लिए आए।

कब्रिस्तान एन.के.पी. के निवास स्थान से अधिक दूर न था, इसलिए निर्णय लिया गया कि ताबूत को कन्धों पर उठाकर ले जाया जाए। न्यायाधीश, मन्त्रीगण और वकीलों में ताबूत को कन्धा देने की होड़ लग गई थी।

सम्माननीय एस.टी.नवगिरी, जो चर्च के पादरी होने के साथ–साथ परिवार के अच्छे मित्र भी थे, ने दफनाने की धर्मक्रिया कराई और १७ फरवरी १९५५ को मेरे पिताजी का मृत शरीर पूर्ण विश्राम के लिए सुला दिया गया। इस त्रासदी में श्रीमाताजी तथा मेरी माँ का साहस वर्णनीय था उन्होंने अपने दु:ख को एक ओर करके सभी बच्चों तथा अन्य शोकाकुल लोगों को ढाढ़स बँधाया और कहा कि हम सबको परमात्मा की इच्छा के सम्मुख सिर झुका देना चाहिए।

अगले दिन सामूहिक हत्या के मुकदमे का निर्णय आया और सभी बारह के बारह अभियुक्तों को बरी कर दिया गया। ये अभियुक्त मेरे पिताजी को समाचार देने के लिए आए। परन्तु उन्हें पता लगा कि उनकी मृत्यु हो चुकी है। उन्होंने कहा कि उस व्यक्ति ने हमारे मूल्यहीन जीवन बचाने के लिए अपना बहुमूल्य जीवन खो दिया है। उनका जीवन न केवल उनके तथा उनके परिवार और राष्ट्र के लिए बहुमूल्य था बल्कि यह तो पूरी मानव जाति के लिए मूल्यवान था।

अध्याय–६
१९५५ से १९६३

मेरे पिताजी की मृत्यु ने शनैः शनैः परन्तु निश्चित रूप से एहसास करवाया कि सुरक्षा के लिए मेरे सिर पर कोई साया न था। वो साया चला गया था। पहली बार मैंने महसूस किया कि मैं अब अकेला हूँ और बिना किसी की सहायता और सहयोग के मुझे स्वयं को बनाना है। ये स्थिति मेरे लिए बिल्कुल नई थी। अब मैं स्वयं को अपनी माँ तथा दो अविवाहित बहनों के प्रति बहुत जिम्मेदार महसूस करने लगा था। मेरा आचरण और दृष्टिकोण अचानक परिवर्तित हो गया था। आन्तरिक रूप से मैं अत्यन्त खिन्न एवं उदास था क्योंकि अपनी माँ तथा दो बहनों के प्रति प्रेम दर्शाने के लिए मेरे पास आर्थिक साधन न थे। बाहर से मैं ये दर्शाता था कि अब भी मैं तड़क–भड़क वाला वही निश्चिंत लड़का हूँ परन्तु अपने अन्दर मैंने बहुत बड़ा परिवर्तन होते हुए पाया।

इन परिस्थितियों में मैंने वर्ष १९५६ में वाणिज्य–स्नातक की परीक्षा दी। हमने अपना निवास स्थान बदल लिया था और बाला साहिब, जिन्होंने अपनी वकालत आरम्भ कर ली थी, ने घर चलाने की जिम्मेदारी ले ली। जनवरी १९५६ में श्रीमाताजी ने उसका विवाह विल्सन कॉलेज बम्बई की एक लड़की वीनू देवधर से निश्चित किया और अप्रैल १९५६ में यह विवाह सम्पन्न हुआ। विवाह का पूरा प्रबन्ध, भोजनव्यवस्था से चर्च को सजाने और निमंत्रण पत्र वितरित करने का सारा कार्य, मेरे और मेरे मित्रों के हिस्से में आया। कड़ाके की गर्मी थी। तापमान ११८ डिग्री फॅरनहाइट, लगभग ४७ सेल्सियस था। मैंने इस गर्मी के कारण पक्षियों को मरकर पेड़ों से गिरते हुए देखा। मैंने और मेरे मित्रों ने सभी सम्बन्धियों में निमंत्रण पत्र वितरित किए। श्रीमाताजी एक सप्ताह या दस दिन पहले आ गईं थीं। उन्होंने काम करने वालों का एक दल बनाया क्योंकि उन दिनों भोजन व्यवस्था के लिए पेशेवर रसोइए न होते थे। इस दल में मेरे मित्र और कुछ युवा सम्बन्धी थे। मुझे भी थोड़े से कार्य सौपे गए थे क्योंकि मुझे अपने भाई का शहबाला (Best Man) बनना था। विवाहोत्सव शाम को साढ़े चार बजे आरम्भ होना था परन्तु उस दिन चार बजे तक मैं अधूरे कार्य पूर्ण करने का प्रयत्न कर रहा था। इसके पश्चात् घर जाकर तेज़ी से स्नान करके, सूट

पहनकर, आधे घण्टे के समय में चर्च पहुँच पाना असम्भव था। परिणामस्वरूप आने में मुझे देरी हुई और कामचलाऊ शहबाला बनाना पड़ा। चार बजकर चालीस मिनट पर जब मैं चर्च पहुँचा तो मेरे दोनों बड़े भाईं, सनी भैया और एन.के.पी. द्वार पर खड़े थे तथा एन.के.पी. मुझे अत्यन्त कठोर दृष्टि से देख रहे थे। सनी भैया ने एन.के.पी. को शान्त किया और इस प्रकार मैं उनके क्रोध से बच पाया। कामचलाऊ शहबाले को हटाने तथा शगुन शशि बाला साहिब को पकड़ाने के लिए मैं समय पर पहुँच गया था। विवाह के स्वागत समारोह का आयोजन नागपुर के संस्था मैदान में किया गया था और रात्रिभोज अनौपचारिक शैली (Buffet Style) में था। ये शैली नागपुर समाज के लिए अत्यन्त नई थी। कोई भी व्यक्ति जब मेज़ पर जाता तो वह अपनी पसन्द की चीज़ के सम्मुख खड़ा रहता था और ये पसंद की चीज़ प्राय: बिरयानी ही थी। इसलिए मेरे बड़ों को, नागपुर के संभ्रान्त लोगों को वास्तव में आगे बढ़ने के लिए कहना पड़ा। मुझे न्यायालय से सीधे आए वकीलों के काले कोटों की जेबों में से टपकते हुए केक देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इससे पता चला कि उन्होंने चुपके से केक के टुकड़े जेब में भर लिए थे। यह अत्यन्त मनोरंजक विवाह था तथा भविष्य में होने वाले विवाहों के लिए शिक्षा भी थी। जिन लोगों ने मेरे पिताजी से पैसे उधार लिए हुए थे उनमें से बहुतों ने आकर ये धन मेरी माँ को लौटाया। सभी दुकानदार अत्यन्त सहयोग कर रहे थे और उन्होंने पर्याप्त सहायता दी।

विवाह के पश्चात् मैं परीक्षा परिणामों की प्रतीक्षा कर रहा था परन्तु एन.के.पी ने तुरन्त कार्य के लिए दफ्तर आने को कहा। परिणामस्वरूप मधु जोशी, श्याम जोध और मैं अप्रैल १९५६ से मेरे भाई के दफ्तर में कार्य करने लगे। हमें पन्द्रह रुपये महीने का सुन्दर वेतन, एक बरसाती कोट, एक भूरे रंग का टोप, बारिश और धूप से बचने के लिए, दिया गया। साईकिलों पर जाकर हमें लेखा परीक्षण करना होता था और नागपुर से बाहर लम्बे दौरों पर भी जाना पड़ता था।

एन.के.पी. बहुत कठोर अधिकारी हैं और सदैव उनका व्यवहार कठोर होता था। छोटी से छोटी गलती के लिए भी वो हमें क्षमा न करते थे। उनके पास शब्दों का विशाल भण्डार था जिसे वे हम पर, विशेष रूप से मुझ पर तनिक सा भी अवसर मिलते ही उपयोग करते। मुझे ऐसा लगता था मानो मेरे साथ सौतेला व्यवहार किया जा रहा है। परन्तु बाद में मैंने महसूस किया कि उनका ये प्रशिक्षण

मेरे भविष्य के जीवन में मेरे लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। श्रीमाताजी की उदारता के संदर्भ में मैं यहाँ ये वर्णन करना चाहूँगा कि वह (एन.के.पी.) पैसे के मामले में तथा परिवार के सदस्यों के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति करने में कंजूस थे। एक इतवार को जब मैं अपने कॉलेज के लिए मैच खेल रहा था तो मेरा एक वरिष्ठ मैदान में आया और मुझसे कहा कि मैं तुरन्त अपने भाई के दफ्तर में पहुंचूं। मुझे बहुत क्रोध आया और मैं दोपहर के खाने के समय उनसे मिलने के लिए गया। उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं दफ्तर में क्यों नहीं आया? मैंने कहा कि आज इतवार है। वो कहने लगे 'तो क्या'? शासपत्रित लेखाकारों के लिए कोई इतवार नहीं होता। इस प्रकार मुझे क्रिकेट को तथा अन्य आमोद-प्रमोदों को, जिनका आनन्द हम इतवार को लिया करते थे, अलविदा कहनी पड़ी।

वर्ष १९५७ की वर्षा ऋतु में मुझे अपनी बहन शान्ताबाई के यहाँ केरल जाना था मैंने हाल ही में कानून की प्रथम वर्ष की परीक्षा दी थी। पैंतालीस दिन केरल में रहने के पश्चात् जब मैं लौटा तो मुझे बताया गया कि मैंने एल.एल.बी. प्रथम वर्ष की परीक्षा पास कर ली है। एल.एल.बी. के अन्तिम वर्ष में मुझे कॉलेज की हॉकी टीम का कप्तान बना दिया गया यद्यपि जीवन में मैंने कभी हॉकी न खेली थी! मुझे हॉकी का कप्तान बनाया जाने का एक ही उद्देश्य था कि हॉकी के लिए निर्धारित किए गए ११०० रुपये की रकम का उपयोग कर लिया जाए। अत: हर सुबह मैं भिन्न महाविद्यालयों से मैत्री मैचों का आयोजन करता और खिलाड़ियों को ये प्रलोभन देता कि मैच समाप्त होने के पश्चात् दोनों टीमों को नि:शुल्क जलपान दिया जाएगा। यहाँ मैं ये बताना भूल गया हूँ कि वर्ष १९५५-५६ में मुझे अपने वाणिज्य महाविद्यालय की क्रिकेट टीम का कप्तान बना दिया गया और मैं बैडमिन्टन की टीम का भी कप्तान था। मेरी कप्तानी को मेरे प्रशंसकों ने जोर-शोर से मनाया और मुझे याद है कि मेरे मित्रों ने मुझे एक क्रिकेट टोपी भी भेंट की थी। श्रीमाताजी, जो कि प्राय: नागपुर आया करती थीं, उन्हें मेरी इन छोटी-छोटी उपलब्धियों पर बहुत गर्व होता था।

वर्ष १९५८ में सर सी.पी. दिल्ली वापिस चले गए थे और लाल बहादुर शास्त्री के साथ कार्यरत थे। शास्त्री जी उन दिनों वाणिज्य मंत्री थे। नवम्बर १९५८ में शासपत्रित लेखाकर माध्यमिक परीक्षा (C.A.Intermediate Exam) देने के लिए मैं दिल्ली गया। स्पष्ट बात थी कि मैं श्रीमाताजी के यहाँ ही ठहरा।

उन्होंने कल्पना और साधना को हिदायत दी कि जब तक मेरी परीक्षा समाप्त न हो जाए वो मुझे परेशान न करें। जब मैं दिल्ली में था तो उस समय घटित एक रोचक कहानी मैं सुनाना चाहूँगा।

एक शाम को लखनऊ से आए एक सज्जन ने दरवाजा खटखटाया और कहा कि बचपन से ही वह सर सी.पी. के मित्र है। उसने बताया कि वह एक डॉक्टर है तथा मलेरिया की एक गोष्ठी में भाग लेने के लिए वह दिल्ली आया है। मलेरिया शब्द का उच्चारण वह 'मलाविया' करता था क्योंकि अक्षर 'र' वह न बोल पाता था। उसने तीन या चार दिन तक श्रीमाताजी के घर पर रहने की इच्छा व्यक्त की। अब तक श्रीमाताजी ऐसे लोगों का स्वागत करने की आदी हो चुकी थीं जो स्वयं को सर सी.पी. का सम्बन्धी और मित्र बताते और सदैव बिना किसी पूर्व सूचना के आ धमकते। श्रीमाताजी सभी का अत्यन्त स्नेहपूर्वक सत्कार करतीं। उस शाम को भोजन की मेज पर श्रीमाताजी ने उस डॉक्टर को अपनी व्यथा और कठिनाई के विषय में बताया और जान–बूझकर इस बात की ओर इशारा किया कि वह बिना किसी पूर्व सूचना के आ धमका है। परन्तु डॉक्टर ने उनके इशारे को समझे बिना बिल्कुल भिन्न तरह से प्रतिक्रिया की। उसने श्रीमाताजी से कहा कि वह उन्हें विश्वास दिलाता है कि जब तक वह वहाँ है कोई भी व्यक्ति बिना पूर्व सूचना के उनके घर में नहीं आएगा।

सर सी.पी. का दुर्भाग्य था कि वे उसी रात आधी रात के पश्चात् विदेश से लौटे। उन्होंने दरवाजा खटखटाया और वह डॉक्टर जो कि बैठक में सोया था उसने उठकर दरवाजा खोला और सर सी.पी. को पूरे सामान के साथ अपने बिस्तर तक पहुँचने के लिए उद्यत खड़े देखा। डॉक्टर जिसने ये कसम खाई थी कि वह बिना पूर्व सूचना दिए आने वाले किसी भी मेहमान को अन्दर आने की आज्ञा न देगा, अचानक सर सी.पी. पर झपट पड़ा और उन्हें लखनऊ से आया कोई सम्बन्धी मानकर उनपर चिल्लाने लगा। डॉक्टर का भाषण रुकने में ही न आ रहा था और बेचारे सर सी.पी. को यह बताने का अवसर भी नहीं मिल पा रहा था कि वे कौन हैं। सर सी.पी. पूरी तरह से थक चुके थे। उन्होंने उसे कहा कि वह श्रीमती श्रीवास्तव को जगाए। इसमें डाक्टर को और अधिक गुस्सा चढ़ गया और उसने और अधिक बलपूर्वक अपना भाषण शुरु कर दिया। कहने लगा कि वे इतनी भली और स्नेहमय व्यक्ति हैं कि वो कुछ भी न कहेंगी। उसने इतना

शोर मचाया कि सारा घर जाग गया और जब श्रीमाताजी बाहर आईं तो उन्होंने देखा कि सर सी.पी. अपने घर के बाहर खड़े थे। तब उन्होंने डॉक्टर को बताया कि वह घर के मालिक को अन्दर आने से रोक रहा है। जैसा आमतौर पर होता था, सर सी.पी. ने उसे क्षमा कर दिया और बाद में श्रीमाताजी के सम्मुख स्वीकार किया कि वे उस डॉक्टर को बिल्कुल भी न जानते थे। इस बात को लेकर कई बार हम सर सी.पी. को छेड़ा करते थे।

वर्ष १९५९–१९६० मेरे लिए अत्यन्त व्यस्त समय था। मुझे न केवल दूर–दूर दौरों के लिए जाना होता था बल्कि इस समय में मुझे अपनी बहन शशि के विवाह में सम्मिलित होने के लिए ग्वालियर भी जाना पड़ा। इस समय में मैंने सी.ए. की माध्यमिक परीक्षा उत्तीर्ण कर ली थी और अन्तिम परीक्षा की तैयारी में लग गया था। सी.ए. परीक्षा के लिए क्योंकि नागपुर में केन्द्र न था इसलिए मुझे बम्बई या दिल्ली में से एक स्थान में चयन करना था। श्रीमाताजी क्योंकि बम्बई में होती थीं या दिल्ली में, परीक्षा की छुट्टियों में मैं उनके यहाँ जाया करता था। कल्पना, साधना तथा उनके घर पर रुके अन्य मेहमानों को इस बात की कठोर हिदायत थी कि मुझे अध्ययन के समय परेशान न किया जाए। आधी रात के समय मेरी चाय पीने की आदत थी और श्रीमाताजी स्वयं मेरे लिए ये चाय बनातीं। दिनचर्या इस प्रकार थी कि कल्पना और साधना को सुलाने के पश्चात् वे मेरे सिर की अच्छी तरह से मालिश करतीं। वो हमेशा मुझसे कहतीं कि मेरे सिर से बहुत गर्मी निकल रही है और मैं उन्हें कहता कि ये सारी गर्मी सी.ए. की पढ़ाई की है। लगभग एक घण्टा मेरे सिर की मालिश करने के पश्चात् वे जातीं और गर्मागर्म चाय मुझे बनाकर देतीं।

परीक्षा के पश्चात् वो मुझे कुछ दिनों के लिए अपने पास रोकतीं और सुप्रसिद्ध संगीतकारों की गोष्ठियों में मुझे ले जातीं। सूर–गायक–संसद भारत की एक सुप्रसिद्ध सांस्कृतिक संस्था की उपाध्यक्ष होने के साथ–साथ वे बम्बई के संगीत क्लब की सदस्या भी थीं और उन्हें बहुत सी संगोष्ठियों में आमंत्रित किया जाता था। उनके साथ जाकर मुझे भी बिस्मिल्लाह खाँ, अमीर खाँ, भीमसेन जोशी, शिव कुमार शर्मा, विलायत खाँ आदि जैसे महान कलाकारों को सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जरीन दारूवाला की एक संगोष्ठी में उपस्थित होने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ जिन्हें श्रीमाताजी प्रतिभा सम्पन्न बालक कहा करती थीं।

इन्होंने बाद में श्रीमाताजी के ७५ वें जन्मदिवस समारोह पर उनके सम्मुख सरोदवादन किया। वर्ष १९६० में मैंने अपनी विधि परीक्षा भी उत्तीर्ण कर ली।

मई १९६१ में मैंने सी.ए. अन्तिम वर्ष ग्रुप दो की परीक्षा दी। परन्तु इस बार मैं पूना से परीक्षा में बैठा क्योंकि मेरे सभी मित्र पूना जाया करते थे। उस समय पूना अत्यन्त सुन्दर तथा स्वच्छ नगर हुआ करता था। यह बात खड़कवासला के समीप स्थित पानशेत बाँध से पूर्व की है जो व्यवहारिक रूप से आधे पूना नगर को बहा ले गया। दिसम्बर १९६१ में मेरी तीन बहनें कल्पना और साधना के साथ क्रिसमस मनाने के लिए मेरे पास आईं हुईं थी। मेरे पास केवल एक कमरा था जिसमें उन सबको ठहराना था। मैंने कमरे के चार कोनों में से तीन अपनी बहनों तथा चौथा कल्पना और साधना को दे दिया तथा स्वयं बीच में सोता। ये क्रिसमस अत्यन्त भीड़–भाड़ वाला तो था परन्तु आनन्ददायी था। क्रिसमस के बाद जब सभी लोग चले गए तो शशि और इन्दु को छोड़ने के लिए मुझे कलकत्ता जाना पड़ा परन्तु मैं तुरन्त वापिस लौट आया क्योंकि मुझे सी.ए. परीक्षा की अन्तिम तैयारी करनी थी। शाम को आठ बजे जल्दी भोजन करने के बाद मैं अपनी पढ़ाई शुरु करता और सुबह चार बजे तक पढ़ता क्योंकि रात का ये समय अत्यन्त शान्त होता है और मैं बिना किसी बाधा के पढ़ सकता था।

एक रात जब मैं अपनी पढ़ाई में गहनता पूर्वक लगा हुआ था, मैंने देखा कि मेरी माँ कमरे के दरवाजे के सामने खड़ी हैं। मैंने घड़ी की ओर देखा, प्रात: ढाई के बजे थे। उस समय उन्हें वहाँ देखकर मुझे बहुत हैरानी हुई। ये सोचकर कि शायद उन्हें मेरी आवश्यकता है, मैंने उनसे पूछा कि क्या उन्हें कुछ चाहिए? मुस्कराकर उन्होंने उत्तर दिया कि उन्हें कुछ नहीं चाहिए, साथ ही उन्होंने ये भी कहा कि वे मुझे बताना चाहती थीं कि अपनी पढ़ाई पर परिश्रम जो मैं कर रहा हूँ उससे वो बहुत प्रभावित थीं और विश्व भर में मेरा नाम होगा। मैंने सोचा कि शायद वे आधी नींद में स्वप्न ले रही हैं। इसलिए मैंने उनसे कहा कि वे जाकर सो जाएं क्योंकि जो भी वो मुझे कहना चाहती हैं वो सुबह तक प्रतीक्षा कर सकता है। परन्तु उन्होंने इस बात पर बल दिया कि जो भी उन्होंने कहना है वो अगली सुबह की अपेक्षा वे अभी कहेंगी। मैंने उन्हें सो जाने के लिए सहमत कर लिया। परन्तु जब मैं अकेला हुआ तो मैंने उनकी बातों पर विचार किया, विशेष रूप से क्योंकि नियमानुसार मेरी माताजी ने कभी भी अपने बच्चों की योग्यता

पर उनकी प्रशंसा न की थी। उनके अनुसार बच्चों की प्रशंसा करना उन्हें इस प्रकार बिगाड़ना है जिससे वो कभी नहीं उबर सकते। इसलिए मैं आश्चर्यचकित था या मैं कहूँ कि उनकी प्रशंसा को सुनकर मैं हतप्रभ था। ये सोचकर कि सम्भवत: उन्होंने कोई स्वप्न देखा है और जो भी कुछ वो कह रही हैं उनका कोई अर्थ नहीं है, मैंने उनकी बातों को अनदेखा कर दिया। बहुत वर्ष उपरान्त मैंने यह घटना श्रीमाताजी को सुनाई। उन्होंने कहा कि एक प्रसिद्ध सम्राज्ञी के नाम पर मेरी माँ का नाम कोर्नीलिया रखा गया था। मेरी माँ की तरह से उस सम्राज्ञी के भी सात बच्चे थे। परन्तु उनमें से दो विख्यात हुए। इसलिए श्रीमाताजी कह रही थीं कि उनके अतिरिक्त मैं ही विश्वविख्यात हूँगा, क्योंकि अन्तर–राष्ट्रीय स्तर पर लोग मुझे जानते हैं।

एन.के.पी. के बंगले में दो कमरे मेरे पास थे। एक कमरा मेरी माँ को दिया गया था और एक मुझे। दफ्तर में मुझे देर तक कार्य करना होता था, परिणामस्वरूप मित्रों से मिलना या सामाजिक गतिविधियाँ मेरी सामर्थ्य से बाहर की चीज़ थी। कॉफी हाऊस, जो मेरे सभी मित्रों का सांयकालीन मिलन स्थल था, मेरे निवास से थोड़ी सी दूरी पर था। उन्हें न मिल पाने पर मुझे बहुत निराशा होती और जब–जब भी मैं उनसे मिलता तो उन पर चिल्लाता कि मेरी तरह से अपना जीवन संवारने के स्थान पर वे अपना समय बर्बाद कर रहे हैं। फलत: मेरे कुछ मित्र अध्ययन के लिए मेरे कमरे पर आने लगे। यद्यपि वो भिन्न पेशों तथा पढ़ाई के अध्ययन में लगे हुए थे, रात के समय चाय का कप सबका सामान्य आधार था। चाय देने से पहले सबको उनके कार्य सौंपे जाते थे। एक व्यक्ति कप–प्लेटें धोता, दूसरा स्टोव जलाता, तीसरा पानी उबालता और मेरा कार्य दूध और पत्ती डालना होता था। सामूहिकता में यह सब कार्य बड़ा आनन्ददायी होता था। आज भी जब वो मित्र मिलते हैं तो आधी रात्रि के समय पिए गए उन चाय के प्यालों को याद करते हैं।

मुझे याद है कि मैंने सर सी.पी. से परीक्षाओं में उनकी सफलता का राज़ पूछा था। उन्होंने कहा था कि परीक्षक को धोखा देने का प्रयत्न करना बहुत ही भयानक बात है। अत: यदि आपको विषय का ज्ञान नहीं है या प्रश्न का उत्तर आपको नहीं आता तो अच्छा होगा कि आप उसका उत्तर न दें क्योंकि ऐसा करने से परीक्षक के मस्तिष्क में आपके लिए पूर्व धारणा बन सकती है और उस

पूर्व धारणा के आधार पर वो आपके अन्य प्रश्नों को भी जाँचेगा। उन्होंने मुझे ये भी बताया था कि प्रश्नों का उत्तर देते हुए आपको परीक्षक को ये एहसास करवाना है कि आप जो लिख रहे हैं उससे कहीं अधिक जानते हैं परन्तु समय की कमी के कारण लिख नहीं पा रहे। मेरे लिए यह शिक्षा थी और परीक्षापत्र लिखते हुए मैंने इसे व्यवहारिक रूप दिया।

मई १९६२ में मैंने सी.ए. की अन्तिम परीक्षा दी। उन दिनों श्रीमाताजी बम्बई के जीवनज्योत में रह रहे थे। उनकी बेटियों से मुझे बहुत प्रेम था। वे बहुत मनोरंजन करने वाली थीं। श्रीमाताजी ने उन्हें श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्री ईसा मसीह की बहुत सी कहानियाँ सुनाईं थीं। उन्हें पौराणिक फिल्मों के अतिरिक्त कोई फिल्में पसन्द न थीं। वो हमें कहा करती थीं कि हमें गन्दी फिल्में नहीं देखनी चाहिएं। उन्हें सभी देवी–देवताओं का ज्ञान था। सर सी.पी. का प्राय: एक स्थान से दूसरे स्थान पर तबादला होते रहने के कारण उन्हें कान्वेन्ट में पढ़ना पढ़ा। सूखे मुँह की साध्वियों (Dry Faced Nuns) से उन्हें घृणा थी। बाद में वे अपने स्कूल के पास भी न जाती थीं। वो मुझे बताया करती थीं कि ये साध्वियाँ कितनी क्रूर महिलाएँ होती हैं। दोनों लड़कियाँ मेधावी छात्राएं थी।

अन्तिम परीक्षा के लिए मैं भली–भांति तैयार था और लेखा का पहला प्रश्न पत्र देखकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ क्योंकि इसके सभी प्रश्न मुझे आते थे। पहला प्रश्न करने के बाद, जिसमें मुझे तीस मिनट लगे, अंगुलियों को तनिक सा आराम देने के लिए मैंने पैन नीचे रखा परन्तु मेरी अंगुलियाँ ही सीधी न हुईं। क्षण भर के लिए मुझे ऐसा लगा कि मुझे पक्षाघात हो गया है। मैंने अपनी अंगुलियाँ फैलाईं जो कि पूरी तरह सो चुकी थीं। मुझे पसीने आ गए क्योंकि मुझे ऐसा लगा कि अब परीक्षा पत्र नहीं लिख सकूंगा। निरीक्षक अत्यन्त दयालु थे और उन्होंने मुझे सलाह दी कि मैं बाहर जाकर अपना मुँह धो लूं और जहाँ तक हो सके प्रश्न पत्र हल करने का प्रयास करूं। मैंने उसकी सलाह मानी, बाहर जाकर अच्छी तरह से मुँह धोया। अब तक मेरी अंगुलियों में पुन: रक्त संचार होने लगा था, परन्तु सामान्य स्थिति में अंगुलियों को लाने में मेरे २० कीमती मिनट बर्बाद हो चुके थे। परिणाम स्वरुप १०० नम्बर के प्रश्न पत्र में से मैं केवल ७५ नम्बर के ही प्रश्न हल कर सका। अत्यन्त निराश होकर मैं परीक्षा कक्ष में से निकला क्योंकि लेखा पत्र मेरा मनचाहा विषय था। श्रीमाताजी मेरी इस निराशा

को देख पाईं और सर सी.पी. को भोजन देने के बाद वे मेरे कमरे में आईं और पच्चीस नम्बरों का प्रश्नपत्र हल न कर पाने की मेरी पूरी कहानी को सुना। उन्होंने मुझे सलाह दी कि बीती हुई बातों को भूल जाऊं और बाकी की परीक्षाएं इस प्रकार से दूँ मानो यह मेरे लिए अन्तिम अवसर हो। पहले तो मैंने परीक्षा छोड़ने की बात सोची परन्तु शनै:शनै: मुझे उनकी सलाह का विवेक महसूस हुआ और जी–जान से परीक्षा से लड़ने का दृष्टिकोण बनाकर पूरी ताकत से मैंने परीक्षा दी। परन्तु मुझे पूरा विश्वास था कि मैं असफल हो जाऊंगा क्योंकि उन दिनों सी.ए. की परीक्षा के परिणाम दो या तीन प्रतिशत ही हुआ करते थे। मैं नागपुर वापिस आया और नवम्बर की परीक्षा की तैयारी शुरु कर दी। अपनी असफलता के विषय में मैं इतना विश्वस्त था कि मैं अपने परिणाम देखने के लिए भी नहीं गया। एक सायं जब मैं अपने किसी मुवक्किल का तुलन–पत्र देख रहा था तो मेरे एक मित्र ने मुझे टेलिफोन पर बताया कि मैंने परीक्षा पास कर ली है। गाली देते हुए मैंने उसे कहा कि मुझे ऐसे मज़ाक पसन्द नहीं हैं। उसके बाद मुझे अन्य मित्रों के भी फोन आने लगे। परन्तु मैंने किसी पर भी विश्वास नहीं किया। तभी मेरे भाई का फोन आया, परन्तु मुझे तसल्ली नहीं हुई। मैं स्वयं समाचार पत्र के दफ्तर गया और अपना परिणाम तीन–चार बार स्वयं देखा। तब मुझे विश्वास हुआ कि मैं पास हो गया हूँ। अन्ततः मैंने सी.ए. परीक्षा की पर्वतीय चोटी पर आरोहण कर लिया था। परन्तु मेरी ये सफलता मुख्यत: श्रीमाताजी की प्रेरणात्मक शिक्षा के कारण थी। पूरे देश में एक हजार से भी अधिक परीक्षार्थियों में से केवल तैंतीस को सफल घोषित किया गया था और हमारी शिक्षणसंस्था द्वारा बनाए गए नियमों के अनुसार ये अत्यन्त उदार परिणाम थे।

वर्ष १९६१ में श्रीमाताजी ने लखनऊ के निराला नगर में घर बनाना आरम्भ किया। तब तक मेरे परिणाम घोषित हो चुके थे। उन्हें संगमरमर की आवश्यकता थी, इसलिए उन्होंने मुझे टेलिफोन किया कि संगमरमर खरीदने के लिए वो जबलपुर आ रहीं हैं और मैं उन्हें जबलपुर मिलूं। जबलपुर के आधे रास्ते में सियोंनी के एक महाविद्यालय में हमने एक लेखा–परीक्षण करना था। मैं वहाँ गया और लेखा–परीक्षण करके समय पर श्रीमाताजी का स्वागत करने के लिए जबलपुर पहुँचा। संगमरमर खरीदने के बाद, जो कि भारी मात्रा में था, हम अपनी चचेरी बहन से मिलने गए। उसकी बेटी आचार्य रजनीश की शिष्या थी जो बाद में भगवान रजनीश

या ओशो कहलाए। आचार्य रजनीश स्थानीय रोबर्टसन कॉलेज में प्रोफेसर था और आध्यात्मिक प्रवचन दिया करता था। आध्यात्मिकता में श्रीमाताजी का झुकाव देखते हुए मेरी बहन ने श्रीमाताजी की आचार्य रजनीश से भेंट का प्रबन्ध किया। आचार्य रजनीश ने जब श्रीमाताजी को देखा तो दोनों बाजू उठाकर ये कहते हुए श्रीमाताजी की ओर दौड़ा, ''ओह माँ, आदि शक्ति, मैं आपसे मिलने के लिए इतने समय से प्रतीक्षा कर रहा था, आज मेरा स्वप्न साकार हो गया है।'' ऐसा कहकर वह श्रीमाताजी के चरण कमलों में साष्टांग लेट गया। इस सारी घटना के मैं, मेरी बहन और उनकी बेटी साक्षात साक्षी थे। बाद में इन्हीं आचार्य रजनीश ने नारगोल में एक गोष्ठी करनी थी जिसमें पाँच मई १९७० को श्रीमाताजी ने अपना प्रकटीकरण करने का निर्णय किया। वह बहुत इच्छुक था कि श्रीमाताजी इस गोष्ठी में भाग लें। श्रीमाताजी जाना नहीं चाहती थीं परन्तु सर सी.पी. ने उनके लिए अलग से एक घर, कार व रसोइये का प्रबन्ध किया और वे सर सी.पी. के दबाव में नारगोल गईं क्योंकि रजनीश बार–बार सर सी.पी. को फोन कर रहा था।

अपने पेशे और परीक्षाओं में अत्यन्त व्यस्त होने के कारण मुझे ऐसा लगा कि मैंने अपनी माँ की उपेक्षा कर दी है। यद्यपि रोज शाम को मैं उनके पास बैठता और परिवार के इतिहास के विषय में उनसे सीखता। बहुत सी घटनाएं जिनका वर्णन मैंने इस पुस्तक में किया है, ये मेरे अपनी माताजी के साथ प्रतिदिन एक घण्टा बैठने का परिणाम है। अब मैं स्वतंत्र रूप से अपना ही दफ्तर जमाना चाहता था क्योंकि मेरी इच्छा थी कि मैं किसी भी तरह से अपने भाई पर निर्भर न रहूं। अपना प्रतिष्ठान चलाने के लिए क्योंकि घर में एक महिला का होना आवश्यक था इसलिए मैंने निर्णय किया कि शीघ्रातिशीघ्र मुझे विवाह कर लेना चाहिए। मैंने अपना ये विचार जब एन.के.पी. को बताया तो उन्होंने मज़ाक करते हुए पूछा कि मेरा किसी लड़की के साथ चक्कर तो नहीं है? अपनी हाजिऱ जवाबी से मैंने उन्हें उत्तर दिया कि जिस समय वे मुझे अपने दफ्तर से निकलने की आज्ञा देते हैं उस समय तक इतनी देर हो जाती है कि कोई भी भद्र पिता इतनी देर रात को अपनी बेटी को प्रेम करने के लिए जाने की इजाज़त नहीं दे सकता। मेरा उत्तर सुनकर उन्हें बहुत झटका लगा।

श्रीमाताजी तक भी समाचार पहुँचा कि मैंने विवाह की इच्छा व्यक्त की है और तुरन्त ही तलाश आरम्भ हो गई। सितम्बर १९६२ में जब लेखा परीक्षण के

लिए मैं बम्बई गया तो श्रीमाताजी ने मुझसे लड़की के विषय में मेरी इच्छा पूछी। मैंने कहा कि, 'मेरी मुख्य चिन्ता मेरी माँ हैं, इसलिए मैं चाहता हूँ कि कोई ऐसी लड़की आए जो मेरी माँ की तथा उनके स्वास्थ्य की देखभाल कर सके। इसलिए वह लड़की कार्यरत नहीं होनी चाहिए।' श्रीमाताजी ने कहा कि, 'मैं इसकी ओर ध्यान दूंगी और मामला वहीं समाप्त हो गया।'

नागपुर वापिस आने पर मुझे श्रीमाताजी का टेलिफोन आया कि वे चाहती हैं कि मैं, अपना एक फोटो श्री.रणभिसे के पास भेजूं क्योंकि उनकी सबसे छोटी बेटी विवाह योग्य है और जो पत्नी बनने के लिए मेरी आशाओं के अनुरूप है। मैंने फोटो भेज दिया और श्रीमाताजी से अनुरोध किया कि लड़की का एक फोटो मुझे भिजवाएं। बहुत दिनों तक जब लड़की का फोटो मुझे नहीं पहुँचा तो मैंने सोच लिया कि सम्भवत: लड़की मुझसे विवाह नहीं करना चाहती। अक्टूबर १९६२ के अन्त में एक दिन मुझे श्रीमाताजी का एक पत्र मिला जिसके साथ एक फोटो भी लगा हुआ था। फोटो देखकर मैं हँसने लगा, मेरी माताजी ने मुझसे हँसने का कारण पूछा? मैंने उन्हें बताया कि मैंने अपनी होने वाली दुल्हन का फोटो मांगा था जिसकी आयु २३/२४ वर्ष होनी चाहिए। परन्तु फोटो में २ वर्ष के बच्चे को उठाए हुए एक बारह वर्ष की लड़की की फोटो थी। मैं इस बात का निर्णय न कर पाया था कि इन दोनों में से कौन सी मेरी होने वाली दुल्हन है? मैंने पुन: श्रीमाताजी को पत्र लिखा, जिन्होंने लड़की के माता-पिता को लिखा कि पाली (गणपति पुले से बम्बई गोआ मार्ग पर स्थिति ५० कि.मी. दूर) से लड़की को बम्बई लाएं। मध्य नवंबर में एक भेंट का प्रबन्ध किया गया और मेरे तीन मित्र मधु, श्याम और गणु ने मुझे तथा श्रीमाताजी को इस बात के लिए सहमत कर लिया कि वो भी मेरे साथ उस लड़की को देखेंगे। ये सब देखते हुए सर सी.पी. ने मुझे एक ओर बुलाया और मुझे नसीहत दी जिसे मैं जीवनपर्यन्त याद रखूंगा। उन्होंने मुझे कहा कि मुझे पूर्व निर्णित विचारों के साथ नहीं जाना है। मैं वहाँ निरीक्षण के लिए नहीं जा रहा हूँ इसलिए उस लड़की से बातचीत करते हुए मुझे उसका मान-सम्मान बनाए रखना है। यदि मुझे नापसंद करने का अधिकार है तो उसे भी यह अधिकार है। उसके मुकाबले मैं किसी बुलन्दी पर नहीं बैठा हुआ, इसलिए मुझे इस बहाने से उसे नापसन्द करने का कोई अधिकार नहीं है कि मैं उसके विषय में पहले से जानता हूँ। (भारत में ऐसे

अवसरों पर प्राय: लड़के–लड़कियों से मूर्खतापूर्ण प्रश्न करते हैं कि क्या उन्हें खाना बनाना, कपड़े सिलना या गाना आदि आता है? मानो विवाह के यही मापदण्ड हों।) श्रीमाताजी और सर सी.पी. के लिए मानवीय गरिमा इन सब चीज़ों से ऊपर थी।

मुझे याद है कि मैंने जो सूट पहना हुआ था वह बम्बई के मौसम के लिए पूर्णत: अनुपयुक्त था। सबसे बड़ी बात तो ये थी कि पसीनों के लिए मैं जाना जाता था। लड़की को देखने के लिए जाने के लिए ज्यों ही मैं कार में बैठा मुझे पसीने आने लगे। सभी लोग ये कहने लगे कि मैं घबरा गया हूँ। परन्तु वास्तव में मैं सर सी.पी. द्वारा दी गई नसीहत पर सोच रहा था। जब हम घर पहुँचे तो ये देखकर मुझे हैरानी हुई कि जिस कमरे में हम बैठे हुए थे वहाँ पंखा भी न था। मेरे होने वाले ससुर जब मुझसे बात कर रहे थे तो मेरा आधा ध्यान पसीना पोंछने पर था और बाकी का आधा इस बात पर कि यह कष्ट शीघ्र समाप्त हो जाएगा। श्रीमाताजी लड़की को सजाने के लिए घर के अन्दर चली गई थीं। कष्टदायी पन्द्रह मिनटों के पश्चात् श्रीमाताजी लड़की के साथ बाहर आईं। मैंने एक नज़र उसे देखा और क्योंकि मुझे बिल्कुल समझ न आ रहा था कि अपने तीनों मित्रों, श्रीमाताजी और अपने ससुर के सम्मुख किस प्रकार उससे बात करूं! मैं मौन बैठ गया। पन्द्रह–बीस मिनट की औपचारिकता के पश्चात् उन्हें नमस्ते कहकर हम घर की ओर चल पड़े। रास्ते पर श्रीमाताजी ने मेरी प्रतिक्रिया पूछी और मैंने उन्हें स्पष्ट बताया कि उसे देखने से कहीं अधिक, उससे बातचीत करके मैं उसे बताना चाहता हूँ कि पत्नी के रूप में मैं उससे क्या आशा करूंगा और ये भी जानना चाहूँगा कि क्या मैं उसकी आशाओं के अनुरूप हूँ। इस पर श्रीमाताजी ने छेड़ा कि यह कार्य तो मुझे पहली मुलाकात में ही कर लेना चाहिए था। मैंने उत्तर दिया कि उस समय मैं पूरी तरह से भौंचक रह गया था।

अगले दिन जब ससुर ने फोन किया तो श्रीमाताजी ने उनसे अनुरोध किया कि क्या वे लड़की को उनके यहाँ एक और मुलाकात के लिए ले आएंगे, जिसके लिए वे तुरन्त सहमत हो गए। अगली मुलाकात में मैंने उसे बताया कि माँ के प्रति मेरी क्या जिम्मेदारियाँ थीं और इसलिए पत्नी के रूप मे मैं उससे क्या आशा करता था तथा क्या मैं उसकी आशाओं के अनुरूप हूँ। मैंने उसे बताया कि मैं बहुत खराब ईसाई हूँ और क्रिसमस और ईस्टर के अतिरिक्त

मैं कभी चर्च नहीं जाता। मैंने उसे अपने वेतन के विषय में भी बताया और उससे ये भी कहा कि मुझे नापसंद करने की उसे उतनी ही स्वतंत्रता थी जितनी मुझे है। अपने सारे विचारों का बोझ उस पर डालकर मुझे बहुत चैन मिला। उसकी प्रतिक्रिया मेरे पक्ष में थी और मैंने श्रीमाताजी को बताया कि मैंने उसे सभी कुछ बता दिया है और उसने मेरी सभी बातें स्वीकार कर ली हैं।

३० दिसम्बर १९६२ को पाली में मेरी सगाई मेरी होने वाली पत्नी से हुई। सगाई के अवसर पर उपस्थित लोगों में मेरी सबसे बड़ी बहन और भाभी शालिनी, उनके तीन बच्चे, सर सी.पी., मेरा भाई, मेरा मित्र गणु, कल्पना, साधना तथा, निश्चित रूप से श्रीमाताजी थीं। श्रीमाताजी, कल्पना, साधना और मेरा बड़ा भाई अपने परिवार के साथ एक कार में गए। उन्होंने गोवा मार्ग पकड़ा। ये मार्ग खड्डों से परिपूर्ण और यात्रा के लिए बिल्कुल उपयुक्त न था। इसी सड़क पर अगले दिन हमें भी जाना था परन्तु रत्नागिरी से श्रीमाताजी ने फोन किया कि हम पूना के रास्ते से आएं।

२९ दिसम्बर की प्रात: सर सी.पी., मेरे भाई, मेरे मित्र और मैं पूना के रास्ते से पाली के लिए रवाना हुए। रास्ते में मुझे बुखार चढ़ गया जो बढ़ता जा रहा था। इतवार होने के कारण सभी क्लीनिक बन्द थे। कोई चिकित्सक उपलब्ध न था। इसलिए मुझे कोई दवाई देकर मेरे मित्र की गोद में कार की पिछली सीट पर सुला दिया गया। सर सी.पी. और मेरा भाई अगली सीट पर ड्राइवर के साथ तंग होकर बैठे हुए थे। रात को लगभग ११ बजे हम पाली पहुँचे और आधी रात के समय मेरी सगाई हुई। बुखार की स्थिति में ही मैंने सूट बदला और ज्योंही सगाई की रस्म समाप्त हुई मैं सो गया। अगले दिन हम बम्बई लौटे और कुछ ही समय पश्चात् मैं नागपुर लौट गया।

मई १९६३ में एक अन्य महत्वपूर्ण घटना घटी। अपने मुवक्किलों के पास जाने के यात्रा भत्तों में से मैंने सात सौ रुपये बचा लिए थे। इन पैसों से मैंने अपने सूट और अन्य कपड़े बनाने की योजना बनाई थी और अत्यन्त शेखी और गर्व के साथ श्रीमाताजी से भी मैंने इसके विषय में बातचीत कर ली। मेरे नागपुर लौटने से दो दिन पूर्व श्रीमाताजी ने मुझसे कहा कि उन्हें कुछ पैसों की सख्त आवश्यकता है। क्या मैं कपड़ों के लिए बचाए हुए सात सौ रुपये उन्हें उधार दे सकता हूँ? अत्यन्त बेमर्जी के साथ मैंने उन्हें ये रकम दे दी क्योंकि मैं जानता

था कि ये मुझे कभी वापिस न मिलेगी।

अगली सुबह मैं अत्यन्त निराश बैठा हुआ था क्योंकि वस्त्र खरीदने की मेरी सारी योजना चौपट हो गई थी। दो लकड़ी के बक्से लेकर श्रीमाताजी मेरे कमरे में आईं और पूछा कि क्या मैं बता सकता हूँ कि वो क्या लेकर आईं हैं। मैं पूरी तरह भौंचक था और पहेलियाँ बुझाने का मेरा मन भी न था। अत: मैंने आकस्मिक सा उत्तर दे दिया कि वे अपने घर के लिए कुछ लेकर आईं होंगी। इस पर उन्होंने कहा कि वो मेरे बनने वाले घर के लिए भी कुछ लेकर आई हैं। उन्होंने वो बक्से खोलने शुरु किए जिनमें मैंने स्टेनलेस स्टील की बहुत सी चीजें देखी। वो मेरे लिए स्टेनलेस स्टील का पूरा डिनर सैट ले आई थीं जिसमें छ: प्लेंटे, बारह कटोरियाँ, छ: गिलास और कुछ खाना बनाने के बर्तन, कुछ छोटे–बड़े चम्मच आदि थे। इस पर उन्होंने केवल ५९० रुपये खर्चे थे। उन्होंने कहा कि कपड़ों पर पैसा खर्चना इतना आवश्यक न था जितना स्टेनलेस स्टील के डिनर सैट पर क्योंकि इसका होना आवश्यक था। उन्होंने कहा कि अब तुम एक गृहस्थ हो इसलिए तुम्हें परिवार की आवश्यकताओं का ध्यान रखना चाहिए। उन्होंने मुझे ११० रुपये लौटा दिए। कृतज्ञता के अश्रु मेरी आँखों में भर आए। ये कहते हुए मुझे गर्व है कि आज ३७ वर्ष पश्चात् भी मैं उन्हीं की दी हुई प्लेटों में खाता हूँ। उनका विवेक और दूरदर्शिता ऐसी थी!

अध्याय–७
१९६३ से १९७०

१६ अक्टूबर १९६३ को पूना में अन्तत: मेरा विवाह कुमुद से हो ही गया। मैं अन्तत: शब्द का उपयोग कर रहा हूँ क्योंकि मेरी सगाई और विवाह के बीच अनेक ऐसी घटनाएं घटित हुईं जिनमें से कुछ का वर्णन मैं यहाँ कर रहा हूँ।

मेरे भाई ने एम.एम.जैन के साथ नई कम्पनी में साझेदारी का प्रस्ताव मुझे दिया। प्रशिक्षण के दौरान एम.एम. जैन मेरे वरिष्ठ थे परन्तु उन्होंने मई १९६२ में मेरे साथ ही सी.ए. की अन्तिम परीक्षा पास की थी। जैन और मैंने मिलकर पाँच हजार रुपये में एक पुरानी कार खरीदी। यद्यपि कार साझेदारी की थी फिर भी प्राय: यह मेरे पास रहती थी क्योंकि जैन कार चलाना न जानते थे। केवल पेट्रोल भरवाने के लिए ही यह गाड़ी जैन के यहाँ जाती थी। मित्रों के बीच में एक पक्का चुटकुला था, जब भी कार जैन के घर पर खड़ी होती तो वो कहते कि पेट्रोल भरवाने के लिए गाड़ी यहाँ आई है।

श्रीमाताजी ने मुझे पहले ही विवाह कर लेने के लिए कहा था परन्तु एन.के.पी इसके लिए तैयार न था, इसलिए झगड़ा खड़ा हो गया और एन.के.पी ने मुझे कहा कि जब तक श्रीमाताजी नागपुर में हैं मैं दफ्तर आना बन्द कर दूँ। श्रीमाताजी उन दिनों मेरे साथ रह रहीं थी। इस घटना के कारण मैंने स्वयं को बहुत असुरक्षित महसूस किया और निर्णय किया कि विवाह के पश्चात् मैं उसकी कम्पनी की नौकरी छोड़ दूंगा।

विवाह पूना में होना निश्चित हुआ था। परन्तु हमारे पास रहने के लिए कोई स्थान न था। (कल्पना करें कि श्रीमाताजी जिनके पास आज प्रतिष्ठान जैसा घर है उन्हें मित्रों के साथ ठहरना पड़ा) एक मित्र के माध्यम से हम तीन दिनों के लिए स्कूल का प्रबन्ध कर पाए और उसके लिए भी हमें बहुत मेहनत और प्रयत्न करने पड़े। जैसा पहले वर्णन किया जा चुका है, मेरा विवाह १६ अक्टूबर १९६३ को होना निश्चित हुआ। यह दीपावली का दिन था और पूना शहर का कोना–कोना दीपों से जगमगा रहा था।

पूना के सेन्ट एन्ड्रयू चर्च में ईसाई परम्परा के अनुसार मेरा विवाह सम्पन्न

हुआ। विवाह में सामान्य भ्रम की स्थिति थी। जो रेलगाड़ी १५ तारीख सुबह पूना पहुँचने वाली थी वह १२–१४ घण्टे देर से जा रही थी। इसका अर्थ ये था कि मैं हल्दी उत्सव में उपस्थित नहीं हो सकता था। (भारत में एक प्रथा है कि सबसे पहले हल्दी वाला उबटन दूल्हे को लगाया जाता है और बाकी का उबटन लड़की को लगाया जाता है) उबटन उत्सव १५ तारीख की शाम को होना था, आधे रास्ते पर हमें रेलगाड़ी बदलनी पड़ी और अनआरक्षित डिब्बे में यात्रा करनी पड़ी। किसी तरह से मैं प्रथम दर्जे के डिब्बे के पायदान पर खड़ा होकर पन्द्रह तारीख की शाम को पूना पहुँच गया। मुझे लेने के लिए स्टेशन पर आए मेरे ससुर ने समझा कि मैं प्रथम दर्जे पर यात्रा कर रहा था। वास्तव में मेरे पास दूसरे दर्जे का टिकट था परन्तु विवश होकर मुझे प्रथम दर्जे के डिब्बे में खड़े होकर यात्रा करनी पड़ी थी। उस दिन उसी चर्च में दो विवाह समारोह होने थे। मेरा विवाह दूसरे स्थान का था परन्तु प्रथम विवाह का उपदेश कुछ लम्बे समय तक चला। अत: हमें प्रतीक्षा करनी पड़ी और दुल्हन को भी। विवाह पट्टी जो मैंने पहननी थी वह अन्तिम समय तक नहीं पहुँची, अत: इसका स्थान मेरी अंगूठी को दे दिया गया।

प्रीति–प्याला प्रस्तावना (Proposing The Toast) के समय बिशप लूथर ने दूल्हे के विषय में तो बहुत कुछ कहा परन्तु दुल्हन और उसके परिवार के विषय में कुछ कहना बिल्कुल भूल गए। प्रस्तावना का उत्तर देने के लिए जब मैं खड़ा हुआ तो मैंने पूरे पक्ष के विषय में बोला। सर सी.पी., कल्पना और साधना विवाह से कुछ ही देर पूर्व पहुँचे क्योंकि जिस कार से वो बम्बई से पूना मार्ग पर यात्रा कर रहे थे वो खराब हो गई थी। नि:सन्देह श्रीमाताजी हमारे पहुँचने से पूर्व पूना में ही थीं।

विवाह के पश्चात् स्वागत समारोह हुआ और उसके पश्चात् प्रीतिभोज। नागपुर लौटने के इरादे से अपनी पत्नी के साथ मैं बम्बई आया। हनीमून के विषय में तो मैं सोच ही नहीं सकता था क्योंकि इसका अर्थ होता पैसे का खर्च और पैसा मेरे पास था ही नहीं। जो पैसा मैंने अपने वेतन तथा साझेदारी की आय में से बचाया था वो सब मुझे दिए गए दो कमरों और एक वराँडे के निवास को पाँच कमरों के निवास में परिवर्तित करने में खर्च हो गया था। वराँडे को मैंने रसोई और अतिथियों के कमरे में परिवर्तित कर दिया और अपने रहने के बड़े कमरे को दो हिस्सों में बाँटकर बैठक और शयनकक्ष बना दिया। अत: मैंने

नागपुर लौटने का निर्णय किया परन्तु श्रीमाताजी की कुछ अन्य ही योजना थी। उन्होंने हमारे लिए माथेरन (बम्बई का एक पहाड़ी पर्यटन स्थल) में तीन दिन के लिए एक होटल में प्रबन्ध किया था। अत: कुमुद और मैं माथेरान गए परन्तु हम दोनों ही अस्वस्थ थे। वो खाने से परेशान थी क्योंकि खाना उसकी पसन्द का न था और मैं आम्लपित्त (Acidity) के कारण अस्वस्थ था। अत: हम दोनों के लिए यह हनीमून के स्थान पर दु:ख भोगने जैसा था। अन्ततः हम नागपुर लौट आए और मैं अपने रोज़मर्रा के कार्य में लग गया। मेरी इच्छा थी कि मेरी पत्नी परिवार के सभी सदस्यों से मिले। इसलिए मैंने एन.के.पी. से अनुरोध किया कि मेरी पत्नी को अपनी पत्नी से मिलवाए। न जाने किन कारणों से उसने ऐसा करने से इन्कार किया और इस प्रकार मेरे मन में उन्हें छोड़ने का विचार आरम्भ हो गया। शीघ्र ही कुमुद गर्भवती हो गई और ४ नवंबर १९६४ को हमें पुत्ररत्न प्राप्त हुआ। एक बार फिर ये दिवाली का दिन था। हमने अपने बेटे का नाम प्रतीक रखा। प्रेम से उसे राजू बुलाते हैं।

जुलाई १९६५ में मैंने एयर इंडिया में साक्षात्कार दिया। परन्तु सितम्बर तक वहाँ से कोई समाचार न आया। अत: मैंने सोचा कि मुझे उपयुक्त नहीं पाया गया है। परन्तु सितम्बर १९६५ में एयर इंडिया ने मुझे सूचित किया कि मुझे सहायक लेखा अधिकारी नियुक्त किया गया है और शीघ्रातिशीघ्र मैं अपना पद ग्रहण करूं। एयर इंडिया में मेरा चयन केवल मेरे प्रयत्न के कारण ही न था। सर सी.पी. ने प्रबन्ध निदेशक श्री.लाल से कुछ बातचीत की थी। ऐसा करने के लिए उन्हें श्रीमाताजी ने कहा था।

जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु के पश्चात् सर सी.पी. दिल्ली स्थानान्तरित हो गए थे क्योंकि लाल बहादुर शास्त्री प्रधानमंत्री बन गए थे और निजी सचिव के रूप में सर सी.पी. उनके साथ थे। यह समय था जब पाकिस्तान ने भारत के साथ युद्ध आरम्भ कर दिया था और परिणामस्वरूप सर सी.पी. दफ्तर से बहुत देर से घर लौटते थे। श्रीमाताजी और सर सी.पी. का आशीर्वाद लेने के लिए मैं दिल्ली गया और ६ दिसम्बर १९६५ को एयर इंडिया में पद ग्रहण किया। यह अत्यन्त अहम् निर्णय था क्योंकि मैं अपनी माँ को पीछे नागपुर छोड़ रहा था। परन्तु मुझे अपने पेशे और माँ के प्रति कर्तव्यों में से एक का चयन करना था। इसलिए समझौता किया गया कि ज्यों ही मुझे ठीक–ठाक निवास स्थान प्राप्त

होगा मैं उन्हें बम्बई ले आऊंगा।

जून १९६६ में डालर के मुकाबले में रुपये का अवमूल्यन हो गया जिसके कारण एयर इंडिया की टिकटें तथा अन्तरउड्डान यात्राओं में बहुत बड़ी समस्याएं खड़ी हो गईं। यद्यपि इस पद पर मैं नया–नया था फिर भी भारतीय रुपये के अवमूल्यन से पूर्व बेची गई टिकटों का हिसाब–किताब अन्य हवाई कम्पनियों से करने के मार्ग में आने वाली कठिनाईयों को मैं देख सका क्योंकि इस स्थिति में अन्तर्हवाई कम्पनी यात्रा की वास्तविक तिथि रुपये के अवमूल्यन के बाद की थी। इस स्थिति को स्पष्ट करने के लिए मैं एक छोटा सा उदाहरण दूंगा। मान लो बम्बई–लन्दन–न्यूयार्क क्षेत्रों में एयर इंडिया ने एक टिकट बनाई। इसमें बम्बई लन्दन क्षेत्र एयर इंडिया के अधिकार में आता है और लन्दन न्यूयार्क क्षेत्र अमरीकी हवाई कम्पनियों के। पूरे क्षेत्र का भाड़ा मान लो तीन सौ डालर था जिसे अवमूल्यन से पूर्व की स्थिति में ३ रुपये ४५ पैसे प्रति डालर के हिसाब से लिया गया था। मान लो कि यात्री ने लन्दन न्यूयार्क क्षेत्र में ६ जून के बाद यात्रा की तो ऐसी स्थिति में अन्तरउड्डान नियम के अनुसार डॉलर में हिसाब होना चाहिए जिसकी कीमत अब सात रुपये हो गई थी। अत: एयर इंडिया को ३ रुपये ५५ पैसे का घाटा उठाना पड़ता। दफ्तर में देर रात तक बैठकर मैंने अन्तरउड्डान लेखा जोखा की पुस्तकों में भिन्न नियमों का अध्ययन किया। ९ जून को मैंने विस्तृत पत्र बनाकर अपने वरिष्ठ अधिकारी श्री.बालपुरिया के सम्मुख रखा। मैं क्योंकि नया था और ये कार्य मुझे सौंपा भी न गया था इसलिए वे नाराज़ हो गए और मेरे पत्र को ये कहकर एक तरफ फेंक दिया कि इसका मूल्य तो इस कागज़ जितना भी नहीं है जिस पर ये लिखा गया है। मैं अत्यन्त परेशान था और उसी मानसिक स्थिति में वो पत्र श्री.बालपुरिया कि मेज़ पर ही रह गया। मैं उसे उठाना भूल गया। क्रोध के दौरे में मैं घर आ गया और घोषणा की कि शीघ्र ही मैं एयर इंडिया से त्यागपत्र दे दूंगा। मेरी पत्नी ने मुझे किसी प्रकार शान्त किया। अगले दिन जब मैं दफ्तर पहुँचा तो एक चपरासी मेरी मेज के पास खड़ा हुआ था। उसने मुझे बताया कि श्री.बालपुरिया अत्यन्त बेसब्री से मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। एक अन्य डाँट की आशा करते हुए हिचकिचाते हुए मैंने उनके केबिन में प्रवेश किया। पहला प्रश्न जो उन्होंने पूछा कि इस पत्र का लेखक कौन है? डरते हुए मैंने कहा कि मैं। मैं क्षमा मांगने को ही था कि उन्होंने

कहा कि उन्हें विश्वास नहीं होता कि अवमूल्यन के केवल तीन दिन पश्चात् ही संस्था में नवनियुक्त व्यक्ति इतना विस्तृत नोट लिख सकता है! उन्होंने मेरी सराहना की और कहा कि मैं विश्व भर के सभी स्टेशनों के लिए मार्ग निर्देश तैयार करूं और इन्हें टैलेक्स करूं। उन्होंने मुझे एक भिन्न फाइल खोलने का अधिकार दिया और कहा, ''इस फाइल का नाम होगा 'अवमूल्यन के विषय में एच.पी.साल्वे'।'' एयर इंडिया में मेरी अत्यन्त सफल नौकरी का ये आरम्भ था।

मुझे ब्रसल्ज़ जाने के लिए चुना गया परन्तु वहाँ पर क्योंकि नौकरानियाँ नहीं होतीं और कुमुद को मेरा प्लेटें धोना पसन्द न था इसलिए हमने ईरान की राजधानी तेहरान जाना पसन्द किया। ५ मई को मैं बेरुत के रास्ते से तेहरान गया।

हवाई–पत्तन के प्रबन्धक श्री.थियोफिलीस मुझे और मेरे प्रतिरूप (Counter Part) को लेने के लिए तेहरान आए। रास्ते में मैंने उनसे मुझे दिए जाने वाले फ्लैट के विषय में पूछा। उन्होंने कहा, ''ये अच्छा है परन्तु छोटा है। बम्बई से आने के संदर्भ में, जहाँ मैं एक कमरे के घर में रुका था, मैंने सोचा कि मुझे उससे भी छोटा फ्लैट दिया गया होगा। वास्तव में जब मैंने फ्लैट को देखा तो यह न केवल काफी बड़ा था, इसमें तीन शयनकक्ष थे और फ्रिज, टेलिविजन, क्राकरी, कटलरी, पर्दे, वाशिंग मशीन और कुकिंग रेंज भी लगे हुए थे। फ्लैट को देखकर मैं पूरी तरह से धराशायी हो गया। इतना ही नहीं ये फ्लैट पूर्णत: वातानुकुलित था। मुझे लगा कि मैं जन्नत में हूँ। तुरन्त मैं अपनी पत्नी को फ्लैट का वर्णन करते हुए पत्र लिखने बैठ गया। ये तीसरी मंजिल पर था, जबकि मेरे प्रबन्धक श्री.कौल मेरे से ऊपर वाली मंजिल पर अपनी पत्नी कैटी और दो बच्चों के साथ रहते थे। कैटी अत्यन्त दिलचस्प व्यक्ति थी, अत्यन्त विनोदशील। जबकि श्री.कौल बहुत अच्छे व्यक्ति थे परन्तु कठोर अनुशासनशील।

६ जून १९६६ को इज़राइल और मिश्र में लड़ाई छिड़ गई और परिणामस्वरूप मध्य–एशिया में एयर इंडिया के सभी स्टेशन बन्द करने पडे। केवल तेहरान का स्टेशन खुला रहा क्योंकि वहाँ शान्ति थी। बहुत से कर्मचारी या तो तेहरान आ रहे थे या वहाँ से निकल रहे थे। मेरे मुख्यालय से मुझे आदेश आया कि कर्मचारियों को भत्ते वायुयान के अन्दर ही दिए जाएं। उड़ानों के समय पर मुझे वहाँ उपस्थित होना होता और उड़ाने उल्टे सीधे समय होने के कारण

मुझ पर जोऱ पड़ता। युद्ध अन्ततः तीन सप्ताह में समाप्त हो गया और मेरे प्रबन्धक ने मुझे छुट्टी दी कि जाकर अपने परिवार को ले आऊं। अपनी माँ को साथ ले जाने के लिए मैं बहुत उत्सुक था परन्तु उन्होंने कहा कि वे अपने अन्तिम दिन मेरे पिताजी की कब्र के समीप रहकर ही बिताना चाहेंगी। तेहरान में मेरा वास अत्यन्त सुखकर और ऐश्वर्यमय था। मेरा कार्य अत्यन्त आरामदेह था, मुझे एक सहायक और एक सचिव की सुविधा दी गई थी। इन लोगों को मैंने रोज़मर्रा के कार्य देखने के लिए प्रशिक्षित कर लिया और अपने खाली समय में मैं एयर इंडिया को बढ़ावा देता। मेरे मित्रगण अधिकतर भारतीय थे और कुछ अमरीकन लोग थे। हर शाम को कॉकटेल पार्टियाँ होती और अपने स्वभाव के कारण मैं इन पार्टियों में, विशेषरूप से अमरीकनों में, प्रसिद्ध हो गया। प्रबन्धक इतना दयालु था कि बिजली का सामान और नागपुर के अपने सम्बन्धियों को देने के लिए तोहफे खरीदने के लिए मुझे हांग–कांग या कुवैत जाने की आज्ञा दे देता। मुझे याद है कि मैंने अपनी माँ को कलाई घड़ी भेंट की थी जिसे वे अत्यन्त गर्वपूर्वक पहना करतीं। वर्ष १९६९ में कल्पना का विवाह प्रभात श्रीवास्तव से हुआ। विवाहोत्सव बम्बई में अक्टूबर में मनाया गया। उसी वर्ष २४ अगस्त १९६९ के दिन मुझे एक अन्य पुत्ररत्न प्राप्त हुआ। हमने उसे मिलिंद नाम दिया, प्रेम से उसे बन्टी कहकर पुकारते हैं। कल्पना के विवाह में मुझे याद है कि मैं तेहरान से ५० कि.ग्रा. पिस्ता लेकर आया था क्योंकि वहाँ पिस्ता बहुत सस्ता था। उनके विवाह का उत्सव भव्य था। बम्बई के चोटी के लोग वर–वधू को आशीर्वाद देने आए। कल्पना के विवाह की एक अत्यन्त मनोरंजक कहानी है जिसे आप सुनना चाहेंगे।

भारत की परंपरा के अनुसार विवाह के स्थान पर हिजड़े आकर नाचते हैं और इसे शुभ माना जाता है। परम्परा के अनुसार हिजड़े वहाँ आए और वहाँ नाचना गाना चाहा। तीन पीस का सूट पहने सर सी.पी. ऊपर अपने वातानुकूलित कमरे में बैठे हुए थे और श्रीमाताजी को उस संगीत का सामना करने के लिए छोड़ दिया था। श्रीमाताजी ने योजना बनाई और हिजड़ों को ये कहकर सर सी.पी. के पास भेज दिया कि ऊपर एक लम्बे से व्यक्ति हैं, जो कि दुल्हन के पिता हैं, वो तुम्हारे नाच–गाने को बहुत पसन्द करेंगे। एक दर्जन हिजड़ों का झुण्ड सर सी.पी. के कमरे में चला गया। सर सी.पी. वहाँ अपने मित्रों

के साथ शादी की योजना बना रहे थे। इतने सारे हिजड़ों को देखकर वो उन पर चिल्लाने लगे, परन्तु उन्होंने उनके चिल्लाने पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया। अन्तिम समाधान के रूप में उन्होंने श्रीमाताजी को बुलवाया, परन्तु वे जानबूझकर वहाँ से गायब थीं। अत: सर सी.पी. को बहुत से पैसे देने पड़े। केवल वहाँ से जाने के लिए ही नहीं अपना संगीत न सुनाने के लिए भी उन्हें पैसे देने पड़े। जब वो श्रीमाताजी से मिले तो श्रीमाताजी ने उनसे कहा कि हिजड़ों के संगीत का कुछ आनन्द तो उन्हें भी लेना चाहिए था, सारा संगीत श्रीमाताजी के लिए छोड़ देना ठीक नहीं है।

कल्पना का विवाह उत्सव किस तरह से था? श्रीमाताजी ने लखनऊ से रसोइये बुलाए थे जिन्होंने बहुत ही लज़ीज़ वस्तुएं तैयार कीं। श्रीमाताजी ने घर के मुहूर्त के समय भी यही रसोइये बुलाए थे। श्रीमाताजी के स्नेह एवं प्रेममय व्यक्तित्व के सम्मुख वे कृतज्ञ थे। अत: जब श्रीमाताजी ने उन्हें आमंत्रित किया तो उन्होंने तार भेजकर बताया कि वो आ रहे हैं, परन्तु उन्हें बम्बई रेलवे स्टेशन से एक ट्रक के साथ ले जाया जाए। ट्रक लेकर उन्हें लाने के लिए श्रीमाताजी स्वयं गईं। वो अपने साथ बड़ी–बड़ी देगें, कलछे और पोने आदि लाए थे। उन्होंने शानदार खाना बनाया। एक अन्य सम्बन्धी दो सौ मुर्गे लेकर आया जो उसने स्वयं पाले थे। शामों को संगीत गोष्ठियाँ होतीं जिनमें भारत के सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ अपनी कला का प्रदर्शन करते। बहुत से संगीतज्ञ बिना पैसे के आए। पूरी–पूरी रात संगीत चलता। श्रीमाताजी की लोकप्रियता ऐसी थी। सुगन्धित अगरबत्ती की सुगन्ध से पूरा स्थान महक जाता। चन्द्रपुर के समीप के किसी गाँव के कुछ लोग ये सुगन्धि लेकर आए थे। उन्होंने बताया कि श्रीमाताजी ने एक आरोग्य आश्रम (Sanatorium) बनवाया है। बाद में मुझे पता चला कि इस आरोग्य आश्रम के लिए श्रीमाताजी ने सारा धन एकत्र किया था। वे अत्यन्त शान्त सामाजिक कार्यकर्ता थीं। एक बार वे 'नेत्रहीनों के मित्र' (Friends of the Blind) नामक संस्था की अध्यक्ष बनीं। उनके नाम पर बहुत साधन एकत्र हुआ और आज बम्बई में वहाँ पर एक बहुत सुन्दर भवन बना हुआ है। उनका कहना था कि नेत्रहीन लोग बहुत अच्छा संदेश दे सकते हैं। बाद में जिन लोगों को प्रशिक्षण दिया गया वे अब बहुत अच्छा कार्य कर रहे हैं। मेरठ में उन्होंने अपंग तथा शरणार्थियों के लिए एक शरणार्थी गृह का शुभारम्भ किया था। कुष्ठगृह के

कार्यों में भी वो बहुत व्यस्त हुई। अपने अनुभवों से उन्होंने पाया कि अधिकतर लोग पद, पैसा पाने के लिए या लोगों के धर्मपरिवर्तित कर अपने धर्म में लाने के लिए सामाजिक कार्य करते हैं। परन्तु उनके अनुसार सामाजिक कार्य केवल प्रेम एवं करुणा के कारण ही किए जाने चाहिएं।

कुछ समय पश्चात् कल्पना ने एक बेटी को जन्म दिया। बच्ची के हृदय में सुराख था और बम्बई के डॉक्टरों ने श्रीमाताजी को सलाह दी कि वे होस्टन जाकर बच्ची के दिल का ऑपरेशन करवाएं। उन्होंने मुझे तेहरान में टैलैक्स किया कि मैं न्यूयार्क आऊं। परन्तु टैलैक्स पहुँचने में देर हुई और जब मैं न्यूयार्क पहुँचा तो मैंने पाया कि बच्ची को लेकर वे होस्टन जा चुके हैं तथा ऑपरेशन में बच्ची के बचने की कोई आशा नहीं है। डेन्टन कूली (Denton Coolie), प्रसिद्ध हृदय चिकित्सक बच्चे की देख–रेख कर रहे थे। यह सब मेरे न्यूयार्क पहुँचने से पूर्व हो चुका था और वो भारत लौट गई थी। अत: मैं भी लौट आया।

अक्टूबर १९७० में मेरे माताजी गम्भीर रूप से बीमार पड़ गए। मुझे इसकी सूचना दी गई परन्तु मैं ईरान से बाहर यात्रा न कर सका क्योंकि वहाँ के एक स्थानीय कर्मचारी ने मेरे पासपोर्ट में कुछ गड़बड़ी कर दी थी और एयर इंडिया ने उस पर जो मुकद्दमा किया था उसमें मेरा पासपोर्ट साक्ष्य के रूप में पेश किया जाना था। श्रीमाताजी होस्टन से वापिस आईं और माताजी को मिलने गईं। आश्चर्य की बात है कि मेरी माताजी अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में थे। उन्होंने श्रीमाताजी से पूछा कि क्या उन्होंने वह खोज लिया है जो उनके पिताजी चाहते थे? श्रीमाताजी ने उन्हें बताया कि उन्होंने सामूहिक आत्मसाक्षात्कार की विधि खोज ली है। ११ अक्टूबर १९७० को मेरे माताजी नागपुर में स्वर्ग सिधार गए। दुर्भाग्यवश उस समय मैं उनके समीप न हो पाया। मेरे लिए यह बहुत बड़ा आघात था क्योंकि मेरे हृदय में गहन इच्छा भी कि मैं उन्हें तेहरान दिखाने ले जाऊं तथा ईसा–मसीह का जन्म स्थान दिखाने के लिए येरुसलम ले जाऊँ।

अभी मैं अपनी माँ की दु:खद मृत्यु के समाचार से उबरने के प्रयत्न में लगा ही हुआ था कि मुझे संदेश मिला कि बम्बई से श्रीमाताजी मुझे मिलने के लिए तेहरान आ रही हैं। उन्हें एयर इंडिया ने अपनी पेरिस उद्‌घाटन उड़ान के लिए निमंत्रित किया है। इसके पश्चात् मेरी प्रसन्नता की कोई सीमा न रही। मैंने एक सप्ताह की छुट्टी के लिए प्रार्थना पत्र दिया और अपने मैनेजर श्री.जोगलेकर

को बताया कि उस सप्ताह के लिए मुझे छुट्टी दे दें क्योंकि मुझे मिलने के लिए एक अत्यन्त विशिष्ट व्यक्ति आ रहा है। वायुपत्तन पर जब मैं श्रीमाताजी से मिला तो उनके पास कोई सामान न था। मुस्कराते हुए उन्होंने मुझे बताया कि उनका सामान इधर–उधर हो गया है परन्तु उन्हें आशा है कि सामान उन्हें मिल जाएगा। एयर–इंडिया का कर्मचारी होने के नाते मुझे बहुत परेशानी न हुई और मैंने विश्वभर में सामान खोजने के लिए संदेश भेजने शुरु कर दिए। अन्ततः तीन दिन के पश्चात् उनका सामान वापिस आ गया। तब तक उन्होंने कुमुद के वस्त्रों का उपयोग किया। अपने सामान के प्रति श्रीमाताजी के उदासीन दृष्टिकोण ने मुझे अशांत कर दिया परन्तु वे पूर्णतः निर्लिप्त एवं शान्त थीं। उनके अन्दर हुए नव–परिवर्तन का ज्ञान मुझे न था। मैं इस बात से पूर्णतः अनभिज्ञ था कि उस वर्ष पाँच मई के दिन उन्होंने अपनी पूर्ण अभिव्यक्ति कर ली थी। परिणामस्वरूप जब मैं उन्हें तेहरान घुमाने ,वहाँ के सुन्दर उद्यान, शाही महल, कालीन उद्योग और शाही रत्न दिखाने के लिए गया तो उन्होंने वैसी प्रतिक्रिया न की जैसी उन्हें करनी चाहिए थी। उन्होंने मुझे बताया कि रत्नों और महलों में उनकी कोई दिलचस्पी न थी। इनकी अपेक्षा वे प्रकृति के साथ रहना चाहती थीं। दक्षिणी तेहरान में शिराज़ नामक स्थान पर पर्सीपोलिस के खण्डहर दिखाने जब मैं उन्हें ले गया तो मुझे और भी आश्चर्य हुआ। खण्डहर देखते ही उन्होंने कहा यह तो अमरावती है। मुझे लगा कि उनके मस्तिष्क में कुछ गड़बड़ हो गई है क्योंकि अमरावती तो नागपुर के एक सौ पचास कि.मी. पश्चिम में एक छोटा सा कस्बा है। मैंने जब कहा ये अमरावती नहीं हो सकती। तो उन्होंने उत्तर दिया कि वे उस अमरावती की बात नहीं कर रहीं जो मैंने समझी थी। वो तो भगवान इन्द्र के राज्य की बात कर रही हैं। आज जो खण्डहर थे वे किसी समय में साइरस महान (Cyrus) का महल था। इस महल के आठ स्तम्भ थे और हर स्तम्भ मे एक सिंहासन बना हुआ था जिस पर महाराजा के दरबारी बैठा करते थे। महाराजा अपने सम्मुख लाए गए मामलों पर निर्णय किया करते थे। यद्यपि खंडहरों से ऐसा कुछ भी न प्रकट होता था, परन्तु श्रीमाताजी ने महल की बनावट, सिंहासन और कूर्सियों के रखे जाने के विषय में इतने विस्तार पूर्वक वर्णन किया कि ये वर्णन इन्द्रदेव के साम्राज्य अमरावती की प्रतिकृति जैसा लगा। मेरे अविश्वास को देखकर उन्होंने मुझे कहा कि मैं अपने गाइड से इस बात की पुष्टि करूं। बड़ी

हिचकिचाहट के साथ मैं गाइड के पास गया कि वो कहीं मुझे नौसिखिया ही न मान ले और उसे बताने लगा कि मेरी बहन इस महल के विषय में अजीब ढंग से सोचती हैं। मेरी बात सुनकर वह इतना हैरान हुआ कि उसने पूछा कि क्या आपकी बहन किसी पुरातत्व विज्ञान संस्था की सदस्या हैं? उसने बताया कि उनका कहा हुआ एक–एक शब्द सत्य है और महल के विषय में उनका वर्णन शतप्रतिशत ठीक है। उसने श्रीमाताजी से मिलने की इच्छा व्यक्त की। मैं पूर्णत: अवाक़ था। अपनी अविश्वास की स्थिति में मैंने सोचा कि महल का इतना सही वर्णन उन्होंने किसी पुस्तक से पढ़ा होगा। इस बात को मैं बिल्कुल न समझ सका कि वे चैतन्य लहरियों की भाषा बोल रही थीं। मुझे दूसरा झटका तब लगा जब उन्होंने कहा कि टोक्यो से आए मेरे समपदासीन साथी (Counter Part), जो कि इस भ्रमण में हमारे साथ थे, वह भारतीय मूल के थे। मैं क्योंकि टोक्यो में उनके साथ रह चुका था और उनके शत–प्रतिशत जापानी मूल के माता–पिता और पत्नी से मिल चुका था, मुझे पूर्ण विश्वास था कि उसमें भारतीय रक्त नहीं है। परन्तु श्रीमाताजी इस बात पर बल दे रही थीं। उन्हें गलत साबित करने के लिए मैं अपने साथी को एक ओर ले गया और उससे पूछा कि क्या उसमें कुछ भारतीय रक्त है। देखने में वह पूरी तरह से जापानी लगता था और ये प्रश्न अनावश्यक प्रतीत हुआ। इसलिए मैंने उससे ये भी कहा कि मैं जानता हूँ कि आप जापानी हैं परन्तु मेरी बहन के मन में दृढ़ भावना है कि आपमें भारतीय रक्त है। मेरे आश्चर्य की सीमा न रही जब उसने कहा कि श्रीमाताजी ठीक हैं। उसकी अपनी माँ भारतीय महिला थीं और जिस महिला से मैं टोक्यो में मिला था वह उसकी सौतेली माँ थी। एक ही दिन में दो ऐसी घटनाओं का घटित होना, जो मानवीय मस्तिष्क की सोच से परे थीं, ने मुझे आश्चर्यचकित कर दिया। भौतिक चीज़ों में बिल्कुल कोई दिलचस्पी न दिखाना, खोए हुए सामान के प्रति पूर्ण निर्लिप्तता, इन दोनों घटनाओं ने मुझे विश्वस्त कर दिया कि निश्चित रूप से वे परिवर्तित हो गईं हैं। मैं परिवर्तन का कारण, उनके अन्तर्परिवर्तन का स्रोत जानने के लिए उत्सुक था।

अत: सायंकाल शिराज़ के सुन्दर उद्यान में बैठे हुए जब हम कॉफी की चुस्कियाँ ले रहे थे तो मैंने उनसे बिना सोचे समझे पूछा कि क्या हाल ही में उनको कोई अन्तर्परिर्वतन हुआ है?

अध्याय–८
१९७० से १९८६
श्रीमाताजी का प्रकटीकरण

मेरे प्रश्न के उत्तर में उन्होंने अपनी बहुमूल्य मुस्कान बिखेरते हुए कहा कि वो मुझसे अपने आध्यात्मिक जीवन के विषय मे बातचीत करना चाहती थीं परन्तु मैं इतना फँसा हुआ था कि उन्होंने यह प्रश्न पूछने तक इस विषय को मेरे सम्मुख नहीं उठाया। उनके आध्यात्मिक जीवन के विषय में मेरी उत्सुकता इतनी तीव्र हो गई कि मैंने उनसे अनुरोध किया कि अपने आध्यात्मिक जीवन के विषय में वो मुझे सभी कुछ बताएं, विशेषकर कल्पना के विवाह के पश्चात् के जीवन के। उन्होंने मुझे जो बताया मैं आगे इसी का वर्णन कर रहा हूँ।

उन्होंने कहा कि अपने शैशव काल से ही वे मानव को उसकी सांसारिक तथा भौतिक आदतों के दासत्व से मुक्त करने के किसी समाधान को खोजने में प्रयत्नरत थीं। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उन्होंने विवेकानन्द, रामकृष्ण परमहंस को पढ़ा और चिन्मयानन्द तथा अन्य सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक नेताओं के प्रवचन सुने। उनके सभी भाषण तथा प्रवचन मानसिक स्तर के थे और ये मानसिक कलाबाजियाँ मानव को मुक्ति नहीं दिलवातीं। इससे उनके मस्तिष्क में इन तथाकथित आध्यात्मिक मार्ग दर्शकों के प्रति संशय उत्पन्न हो गया कि क्या वे मानव को मोक्ष की ओर ले जा सकेंगे ?

इन तथाकथित आध्यात्मिक मुखियाओं के भ्रामक वक्तव्यों ने उन्हें बहुत खिन्न कर दिया। एक प्रश्न हमेशा उनके मस्तिष्क में घूमता रहता कि क्या ये आध्यात्मिक अगुआ लोग स्वयं भी ज्योतिर्मय हैं या ये उसी प्रकार लोगों का मार्गदर्शन कर रहे हैं जैसे एक अन्धा दूसरे अन्धे का मार्गदर्शन करता है और दोनों कहीं नहीं पहुँच पाते! ज्योतिर्मय से उनका अभिप्राय आन्तरिक ज्योति से था। क्या उनके ये भाषण, ये प्रवचन साधक को आत्मिक प्रकाश का वास्तवीकरण करवाते हैं?एक अन्य प्रश्न जिसका उत्तर उन्हें न मिल पाया, वह ये था कि परम पुरुष कहलाने वाले ये लोग क्या भोले–भाले अन्जान साधकों को मोक्ष के पथ पर ले जाने के अधिकारी हैं? और यदि हैं तो उन्हें ये अधिकार कहाँ

से मिला? इस दिव्य शक्ति के माध्यम से अपना प्रकटीकरण करने से पूर्व श्रीमाताजी को इस वजह से समय लगा। शास्त्रों के अपने गहन अध्ययन के कारण सहज हृदय साधकों को इन तथाकथित आध्यात्मिक अगुआओं द्वारा सम्मोहित कर लिए जाने की उन्होंने विशेष रूप से आलोचना की। प्रश्न ये था कि जो ज्ञान उन्होंने प्राप्त किया है वो क्या ज्योतित ज्ञान था या ये मात्र शास्त्रों को वाचना या उनकी गलत व्याख्या करना था ?

उन्होंने आगे बताया कि बचपन से ही उनके हृदय में मानव का अन्तर परिवर्तन करने, उसका हित करने की अन्तर्जात इच्छा थी। परन्तु अपनी शिक्षा, राष्ट्र के प्रति कर्तव्यों, पत्नी तथा माँ के रूप में अपने कर्तव्यों को पूर्ण करने के लिए उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति को टाले रखा। वो पूर्णत: विश्वस्त थीं कि उनके अन्दर विद्यमान शक्ति मानव मात्र में ज्योति प्रकाशित कर देने में सक्षम है। उन्हें इस बात का भी विश्वास था कि उनकी शक्ति के माध्यम से ज्योतिर्मय होकर साधक अन्य लोगों को भी ज्योतिर्मय करने के योग्य हो जाएगा।

मई १९७० में गुजरात राज्य के नारगोल नामक स्थान पर आचार्य रजनीश ने एक गोष्ठी (शिविर) का आयोजन किया। नारगोल में वे मुख्यत: ये जानने के लिए गईं कि रजनीश किस प्रकार गोष्ठी का आयोजन कर रहा है। आशा अनुरूप रजनीश ने सभी दर्शकों को सम्मोहित कर लिया था और वो सब मानव न होकर अब उसके हाथों में खिलौने थे। एक बरगद के पेड़ के नीचे बैठ हुए श्रीमाताजी ने यह सब देखा। भोले-भाले साधकों का इस प्रकार दुरुपयोग किया जाना उनसे सहन न हुआ। उन्हें ऐसा लगा कि अभिव्यक्ति का यही उपयुक्त समय है। अत: ४ मई १९७० की रात को वे सेमिनार के स्थान से दूर एक स्थान पर गईं और वहाँ ध्यान मैं बैठ गईं। उनका मुख पूर्वी आकाश की ओर था और पीठ समुद्र की ओर। सारी रात बैठकर उन्होंने ध्यान किया और पूर्व में आकाश में सूर्य किरण फूटने के साथ-साथ उन्हें अपने अन्दर शक्तिशाली अनुभव हुआ।

उन्हें लगा कि उनका सिर, उनका सहस्रार अचानक खुलने लगा है और उसमें से गोल आकार का कमल प्रकट हुआ। प्रकट होते ही उसकी एक हजार पंखुड़ियाँ प्रज्वलित हो उठीं। इनका प्रकाश तो था परन्तु ये अत्यन्त मृदु प्रकाश था। बिना टिमटिमाए यह प्रकाश सहस्रार से बाहर भी फैल गया, आकाश की ओर। अचानक कमल लुप्त हो गया और इसका स्थान एक हजार पंखुड़ियों वाले

एक अन्य पुष्प ने ले लिया। सुगमता पूर्वक वे इन पंखुड़ियों को गिन सकीं। यह पुष्प उनके पूरे शरीर में शीतल चैतन्य लहरियाँ प्रसारित कर रहा था। उन्होंने अपनी कुण्डलिनी को उठते हुए, सहस्रार का भेदन करते हुए और सहस्त्रदल पुष्प द्वारा प्रसारित शीतल लहरियों से एक रूप होते हुए भी महसूस किया। शीतल लहरियों के कारण पुष्प की पंखुड़ियाँ लहराने लगीं। चैतन्य लहरियों का प्रवाह निरन्तर अविरल था। वो जानती थीं कि चैतन्य लहरियों के इस प्रवाह पर उनका कोई नियंत्रण नहीं है तथा यह अविरल बहती ही रहेंगी। मई का महीना अत्यन्त गर्मी का होता है और समुद्र तट पर होने के कारण वहाँ उमस भी थी, फिर भी उन्हें अपने अन्दर अत्यन्त शीतल लग रहा था। एक हज़ार पंखुड़ियों वाला पुष्प लुप्त हो गया और एक हजार दीपों वाला पुष्प पुन: दिखाई दिया। इस बार यह भिन्न रंगों की दीप–शिखाओं का संयोजन (Fusion) था जिसने सहस्रार का इस प्रकार से भेदन किया मानो किसी ज्योतिकिरण ने किया हो। यद्यपि उनके सहस्रार से शीतल लहरियाँ बह रही थीं परन्तु इन्होंने किसी भी प्रकार से इस ज्योतिकिरण को डावाँडोल न किया। यह प्रकाश किरण आकाश की ओर बढ़ रही थी तथा सूर्य के प्रकाश के बावजूद भी इसे देखा जा सकता था। उन्हें लगा कि उनके अन्दर से अगाध ऊर्जा बहने लगी है परन्तु ऊर्जा के इस प्रसार ने किसी भी प्रकार से उन्हें थकाया नहीं । ऊर्जा का यह अविरल प्रवाह वास्तव में शक्तिदायी अनुभव था। इस घटना से उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता एवं आनंद की अनुभूति हुई। उनकी आँखें चमक रहीं थी और बिना चका–चौंध हुए वे सूर्य की ओर देख सकती थीं। श्रीमाताजी समझ गईं कि उनकी अभिव्यक्ति हो गई है तथा उनकी आन्तरिक शक्ति पूर्ण गरिमा पूर्वक बह रही है। वो ये भी जान गईं कि इस शक्ति के माध्यम से उन्हें मानवजाति का उद्धार करना है क्योंकि यह शक्ति परम्–चैतन्य (शुद्ध चैतन्य लहरियाँ) हैं तथा यह भी कि वे ही इस ऊर्जा का स्रोत हैं अर्थात् 'आदिशक्ति'हैं।

श्रीमाताजी जानती थी कि उनकी अभिव्यक्ति हो चुकी है तथा वो ये भी जानती थीं कि आचार्य रजनीश ने जिस सेमिनार का आयोजन किया है वह लोगों को भ्रमित करने के लिए है। अत: सेमिनार का स्थान छोड़कर वे बम्बई लौट आईं। मार्ग में उन्होंने इस बात पर विचार किया कि किस प्रकार वे लोगों को बताएं कि उनकी अभिव्यक्ति हो गई है। क्या उनके अपने लोग, उनके अपने

पति, बच्चे और सम्बन्धी उनका विश्वास करेंगे? वो जानती थीं कि कोई भी उनका विश्वास नहीं करेगा, केवल आदिशक्ति के रूप में उनकी अभिव्यक्ति की क्षमता पर ही नहीं, बल्कि अपनी माँ, पत्नी, बहन, बुआ, चाची में इस प्रकार की आध्यात्मिक शक्ति हो सकती है इस पर विश्वास करने की योग्यता ही उनमें न थी। तो उन्होंने अपने आप से कहा कि इस विषय में किसी से बात न करना और अपनी वास्तविक स्थिति का प्रकटीकरण करने के लिए उपयुक्त समय की प्रतीक्षा करना ही ठीक होगा। वो जानती थीं कि यदि उन्होंने अपने आध्यात्मिक आगमन (Spiritual Advent) के विषय में बताया तो कोई भी उन पर विश्वास नहीं करेगा, इतने बड़े दावे के लिए लोग उनका मजाक़ जरूर उड़ाएंगे। उनका दृढ़ विश्वास था कि उनके शब्दों से कहीं अधिक उनका कार्य उनकी शक्तियों के विषय में बताएगा। व्यक्तिगत उपलब्धियों का जहाँ तक सम्बन्ध है आज भी उनका कार्य ही इन्हें प्रकट करता है। कोई व्यक्ति यदि रोगमुक्त हो जाए तो आज भी वे कहती हैं ये परम्–चैतन्य का कार्य है। मुझे याद है कि केवल एक बार सहजयोगियों के बल देने पर उन्होंने कहा था कि मैं 'आदिशक्ति' हूँ। उनके इस गुण ने सदैव मुझ पर गहन प्रभाव डाला।

तो वे घर आईं और शान्तिपूर्वक अपने बच्चों और अपने पति की देखभाल के काम को करने लगी। उन्होंने मुझे बताया कि उन्हें समझने वाला केवल एक ही व्यक्ति था और वो थे हमारे पिता जिन्होंने एक बार उन्हें कहा था कि जब वे सामूहिक आत्मसाक्षात्कार देने के योग्य बन जाएं केवल तभी अपनी अभिव्यक्ति करें। श्रीमाताजी ने मुझे कहा कि इसलिए वे अपने पिता की कमी को महसूस कर रही हैं। इस समय उनकी आवश्यकता ये थी कि कोई उन्हें पहचाने, अपनी अभिव्यक्ति की घोषणा करने का कोई लाभ न था।

शीघ्र ही उनके सम्मुख एक अवसर आया जिसने आध्यात्मिक अगुआ के रूप में उनकी पहचान बना दी, चाहे ये पहचान आदिशक्ति के रूप में न थी। सर सी.पी. के दूर के एक सम्बन्धी अपनी पत्नी के साथ उनके घर पर आए। वो क्योंकि सर सी.पी. और श्रीमाताजी से आयु में बड़े थे इसलिए सम्मान दर्शाने के लिए श्रीमाताजी ने साड़ी का पल्लू सिर पर ले लिया और आगन्तुक पति–पत्नी के चरण स्पर्श करने चाहे। (हिन्दुओं में ये प्रथा है कि बड़ों का आशीर्वाद लेने के लिए उनके चरण–स्पर्श किए जाते हैं।) परन्तु उस सम्बन्धी ने श्रीमाताजी के

चरण–स्पर्श करने पर एतराज़ किया क्योंकि स्वप्न में उन्हें श्रीमाताजी देवी के रूप में दिखाई दी थीं और उन्होंने देवी रूप में उन्हें आश्वासन दिया था कि वे बिना किसी दवाई के उनकी पत्नी को रोग–मुक्त कर सकती हैं। वो श्रीमाताजी से कहने लगे कि आप तो देवी हैं, हमें आपके चरण स्पर्श करने चाहिएं।

रोगी की रोगमुक्ति का श्रेय, दुर्भाग्यवश, उसकी श्रीमाताजी के प्रति गहन आस्था को दिया गया, श्रीमाताजी की आध्यात्मिक शक्ति को नहीं। अपनी माँ या पत्नी को आध्यात्मिक शक्ति के रूप में स्वीकार करना उनकी बेटियों, पति और सम्बन्धियों के सन्देहात्मक मस्तिष्क से परे की बात थी। परन्तु इस घटना ने उनके विश्वास को दृढ़ता प्रदान की कि अन्तत: वे मानव को मायारचित उसकी भ्रम की स्थिति से मुक्त कर सकेंगी। वो जानती थीं कि प्रेम की शक्ति इतनी शक्तिशाली है कि वे अपने मार्ग में आने वाली सभी बाधाओं पर नियंत्रण कर लेंगी।

वो ये भी जानती थीं कि आध्यात्मिक रूप से लोगों तक पहुँचने के लिए लोगों के रोग दूर करके उन्हें अपनी शक्ति दर्शानी होगी। कैंसर रोगी के ठीक होने का समाचार उनके कुछ जान–पहचान के लोगों, मित्रों तथा शुभचिन्तकों तक पहुँचा तथा उनमें से कुछ लोग अपनी शारीरिक समस्याएं लेकर उनके पास पहुँचे। केवल एक महिला श्रीमती ओक (Mrs.Oak) ने उन्हें गुरु रूप में स्वीकार किया और श्रीमाताजी के सभी आदेशों का पालन करने लगी। इस प्रकार जुलाई १९७० के लगभग सहजयोग गतिविधि आरम्भ हुईं। वे जब तेहरान आईं थीं तो उनके लगभग एक दर्जन अनुयायी थे, चन्दुबाईं जवेरी, राउल बाई और कुछ अन्य। इनमें से कुछ लोग तो इन्हें रोग ठीक करने वाला ही मानते थे परन्तु कुछ लोग इन्हें आध्यात्मिक सन्त भी मानते थे।

लगातार तीन घण्टे तक वो मुझसे बातचीत करती रहीं। जब उन्होंने बातचीत शुरु की तो संध्याकाल था, जब बातचीत समाप्त हुई तो रात्रि हो चुकी थी और हम दोनों को इस बात का आभास भी न हुआ था कि किस प्रकार तीन घण्टे बीत गए। उन्होंने आध्यात्मिक प्रवृत्ति वाले मेरे कुछ मित्रों को आत्मसाक्षात्कार देने की इच्छा प्रकट की। अत: तेहरान लौटने पर मैंने अपने कुछ मित्रों को फोन करके अगले दिन श्रीमाताजी के साथ उनके रात्रि भोज एवं आध्यात्मिक गोष्ठी का प्रबन्ध किया।

मेरे जिन मित्रों ने श्रीमाताजी के विषय में मुझसे सुना था उनके मन में श्रीमाताजी के प्रति सम्मान जाग उठा था। अत: उन्होंने उनका स्वागत करने का निर्णय किया। तेहरान में इस तरह के सत्कार करने के स्थान केवल रात्रि क्लब ही थे। हम उन्हें एक रात्रि क्लब में ले गए और मेरे मित्रों ने मात्र सत्कार के रूप में उन्हें शैम्पेन अर्पण की। मैं निश्चित रूप से उलझन में था क्योंकि स्पष्ट रूप से बताने के बाद भी कि श्रीमाताजी के सम्मुख किसी भी तरह की शराब न पेश की जाए, न पी जाए, मेरे मित्रों ने ऐसा किया था।श्रीमाताजी ने इसके लिए स्पष्ट इन्कार कर दिया, परन्तु मेरी उलझन को भी समझा। उन्होंने कहा कि मेरे मित्रों के शैम्पेन पीने पर उन्हें कोई एतराज नहीं है। मुझे इस बात का भी भय था कि मेरे मित्र मुझे भी शैम्पेन पीने के लिए कहेंगे। परन्तु उनकी विवेक बुद्धि ने कार्य किया। मेरे स्थान पर उन्होंने मेरी पत्नी को मदिरा पेश की परन्तु उसने भी पीने से इन्कार कर दिया। यहाँ मैं बताना चाहूंगा कि मैं कभी भी शराबी न था और श्रीमाताजी के सम्मुख शैम्पैन पीने का तो मैं स्वप्न में भी न सोच सकता था। मेरे मन में उनके प्रति इतना सम्मान था!

अगले दिन मेरे लगभग २० मित्र, जिनमें से कुछ पत्नियों के साथ थे, मेरे घर रात्रिभोज एवं आध्यात्मिक जागृति के लिए आए। भारतीय दूतावास, संयुक्त–राष्ट्र, यात्रा–ऐजेंसियों के मेरे मित्र, समाचार पत्रों के लोग तथा मेरे मैनेजर भी आए। रात्रि भोज के पश्चात् आत्म–साक्षात्कार का कार्यक्रम हुआ। उन दिनों श्रीमाताजी आत्म–साक्षात्कार से पूर्व लोगों को लिटा देती थीं। जब वे आत्म–साक्षात्कार दे रही थीं तो मैं समीप खड़ा हुआ सब गतिविधि देख रहा था। अचानक मुझे चन्दन की सुगन्ध आई। ये सुगन्ध इतनी तीव्र थी कि पूरा कमरा चन्दन की खुशबू से भर गया। मुझे सन्देह हुआ कि श्रीमाताजी अपने पर्स में कुछ चन्दन की लकड़ी ले आईं थीं और मैं ये भली–भांति जानता था कि तेहरान में चन्दन की लकड़ी लाने की सख्त मनाही है। क्योंकि समाचार पत्रों के प्रतिनिधि भी आत्म साक्षात्कार लेने वाले लोगों में थे, किसी अनहोनी घटना घटित होने के भय से मैं उनके पास गया और धीरे से फुसफुसाया कि कहीं वे अपने साथ चन्दन की लकड़ी तो नहीं ले आईं? इस बात पर वे खुलकर हँसी और बिना कुछ बोले अपनी अंगुली डॉक्टर दीवान की तरफ उठाकर कहा कि मैं जाकर उनके सिर को सूँघूं। आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करके डा.दीवान, जो कि एक

भिन्न संसार में थे, अपने सिर से चन्दन की सुगन्ध प्रसारित कर रहे थे। उनके सिर को सूँघकर मैंने उनके कान में उनका नाम पुकारा परन्तु उनमें कोई प्रतिक्रिया न थी। उन्हें हिलाकर मैंने पूछा कि कहीं उन्होंने ऐसा तेल तो नहीं लगाया कि जिसमें चन्दन की सुगन्ध हो? उसने उत्तर दिया कि काफी समय से उसने तेल लगाना ही बन्द कर दिया था क्योंकि उनके बाल झड़ने लगे थे। उन्होंने कहा कि श्रीमाताजी ने उनके सिर में ठण्डा करने वाली कोई चीज़ डाली होगी क्योंकि अन्दर से वे बहुत ही शीतल महसूस कर रहे हैं। मैं आश्चर्यचकित था कि इतनी दूर खड़े होकर कैसे श्रीमाताजी किसी के सिर में सुगन्धी प्रसारित कर सकती हैं!

एक अन्य पारसी महिला, बैसाखियों पर आई थी क्योंकि उसे भयंकर गठिया रोग था। आत्मसाक्षात्कार के पश्चात् जब वो गई तो बिना बैसाखियों के थीं। अगले दिन उसे स्वयं अपनी कार चलाते हुए देखा गया।

अगले दिन तेहरान के सभी मुख्य अंग्रेजी समाचार–पत्रों ने इस समाचार को छापा और कहा कि वर्णित समाचार के उनके सम्वाददाता साक्षात् साक्षी थे। ये समाचार बहुत से लोगों ने पढ़ा और अचानक मुझे बहुत से टेलिफोन आने लगे और शाम तक बहुत से लोग अपने बीमार सम्बन्धियों के साथ मेरे घर के आगे लाइन लगाकर खड़े थे। एक दोपहर पश्चात् जब मैं भोजन के लिए घर गया तो बहुत से लोगों को अपने भवन के द्वार पर खड़े पाया। पूछने पर उन्होंने बताया कि वे सब श्रीमाताजी से आशीर्वाद लेने के लिए अपनी बारी की प्रतीक्षा कर रहे हैं। दोपहर के भोजन का समय होने के कारण मेरी पत्नी ने उन्हें प्रतीक्षा करने के लिए कहा था। मैंने उनसे पूछा कि वे बाहर खड़े होकर क्यों प्रतीक्षा कर रहे हैं? इस पर उन्होंने उत्तर दिया कि मेरा घर प्रतीक्षा करने वाले लोगों से पहले ही भरा हुआ था। जब मैं अपने फ्लैट में आया तो मैंने देखा कि कुछ भारतीय, फारसी, पर्शियन, लेबनानी और कुछ ईरानी मुसलमान लोग श्रीमाताजी के भोजन कर लेने की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनकी लोकप्रियता इतनी थी कि जब वो आईं थीं तो मैं उनका परिचय अपनी बहन के रूप में करवाता था परन्तु जब वो गईं तो मेरा परिचय उनके भाई के रूप में कराया जाता था।

श्रीमाताजी मेरे साथ लगभग आठ दिन रहीं और नगर में कुछ खरीददारी के पश्चात् वे बम्बई लौट गईं। उनके जाने के पश्चात् भी उन्हें खोजते हुए लोग

मेरे घर पर आते रहे।

तेहरान में उनकी यात्रा ने निश्चित रूप से मुझे हक्का–बक्का कर दिया। एक ओर तो मैं इस बात को स्वीकार करने के लिए तैयार था कि उनमें रोगमुक्त करने की शक्तियाँ हैं परन्तु मेरा विवेक और तर्कबुद्धि मुझे यह स्वीकार करने की आज्ञा न देती थी कि वे मानव का अन्तर–परिवर्तन कर सकती हैं। साथ ही साथ मैं हृदय से चाहता था कि यदि वे इस असम्भव कार्य को कर पाएं तो मुझे अत्याधिक प्रसन्नता होगी क्योंकि मैं उन्हें सबसे अधिक प्रेम करता था। इन विरोधात्मक भावनाओं ने भ्रम का सृजन किया और मैं इस परिणाम पर पहुँचा कि देर–सवेर वो अपने प्रयत्नों की निस्सारता को महसूस करेंगी और विवेकबुद्धि द्वारा मानव के अन्तर परिवर्तन के इस विचार को त्याग देंगी।

वर्ष १९७१ में साधना का विवाह हुआ और हम सब विवाह के लिए आए। साधना के पति रोमेल बिहार के एक जमींदार परिवार से सम्बन्धित हैं और उनमें अत्यन्त आध्यात्मिक प्रवृत्ति है। सदा की तरह से विवाह संगीत एवं मनोरंजन का महान उत्सव हुआ। यह अवसर आनन्द उठाने के योग्य था क्योंकि बहुत से सम्बन्धी इस विवाह में भाग लेने के लिए आए थे।

अब तक मैं विदेश में अपनी नौकरी के लगभग पाँच साल पूरे कर चुका था। मुझे तीन वर्षों के लिए भेजा गया था परन्तु मेरे प्रबन्धक और बेरूत में क्षेत्रीय प्रबन्धक ने सिफारिश की कि वहाँ पर मेरे कार्यकाल को तीन वर्ष और बढ़ा दिया जाए। परन्तु एयर इंडिया के वित्त विभाग के अधिकारी संघ ने विदेश भेजे जाने वाले लेखा–प्रबन्धकों में से मुझ अकेले को चुने जाने पर बहुत हल्ला–गुल्ला किया। परिणामस्वरूप वर्ष १९७२ के आरम्भ में मुझे बम्बई लौटना पड़ा।

बम्बई आकर मैंने एयर–इंडिया के वेतन–लेखा–विभाग में पद ग्रहण किया (कर्मचारियों के वेतन तथा अन्य वित्तीय हित की देखभाल करने वाला विभाग)। एयर–इंडिया को धोखा देने वाले एक एजेन्ट की समस्या का समाधान करने के लिए मुझे पन्द्रह दिनों की छोटी सी अवधि के लिए तेहरान भेजा गया। मैं जब बम्बई आया तो श्रीमाताजी ने मुझे बताया कि सर सी.पी. को संयुक्त राष्ट्र की अन्तराष्ट्रीय समुद्रवर्ती–समन्वयन–संस्था के अध्यक्ष के रूप में चुना गया है। इस संस्था का मुख्यालय लन्दन में था। मेरे पास क्योंकि अपना घर न था

इसलिए मैं अपनी दूसरी बहन इन्दु के यहाँ रह रहा था। फरवरी १९७२ में ज्योति की छोटी बहन मृदुल का विवाह श्रीकृपा डेविड से हुआ। वे पश्चिमी बंगाल में चाय बागान के प्रबन्धक के रूप में कार्यरत थे। विवाह के पश्चात् हम बम्बई लौट आए। जब मैं नागपुर में था तो मैंने एक पुरानी कार हराल्ड खरीदी और इस कार द्वारा मैं बम्बई लौटा। समय के साथ–साथ मैंने पूर्वी सान्ताक्रूज में अपने दफ्तर के समीप एक फ्लैट किराए पर लिया और अपने बड़े बेटे को एयर इंडिया चालित विद्यालय में प्रवेश दिलवाया।

१९७२ के सितम्बर माह में भारत सरकार ने बीस रुपये का नोट चलाया। इन नोटों की उपलब्धि क्योंकि बहुत कम थी इसलिए मैं अपने बैंकर्स के पास गया ताकि वे वेतन बाँटने के लिए एयर इंडिया का इन नोटों का कोटा बचाकर रखें। इस मामले को अत्यन्त तुच्छ मानकर मैंने अपने अवर अधिकारियों से इसके विषय में बातचीत नहीं की थी। मेरे उप–वित्त नियंत्रण अधिकारी ने मुझे बुलाकर इसका कारण पूछा। मुझे बहुत दु:ख हुआ कि एयर इंडिया के सारे अधिकारी इस बात के लिए मेरे विरुद्ध हो गए हैं क्योंकि मैंने एयर–इंडिया के हित के लिए पहल की थी। मैंने अपने उच्च–अधिकारियों को बताया कि दस रुपये के नोटों की अपेक्षा बीस रुपये के नोटों को गिनने में क्योंकि कम समय लगेगा इसलिए हम ओवर टाइम पर लगने वाले धन को बचा सकेंगे। मेरे अधिकारी ने जब इस बात पर बहुत बल दिया कि मुझे इसके लिए आज्ञा लेनी चाहिए थी तो मुझे क्रोध आ गया और मैंने उनसे कहा कि उन्हें पहल करने वाले अधिकारियों की आवश्यकता नहीं है, उन्हें तो केवल गुलाम चाहिएं जो उनकी आज्ञानुसार चल सकें। इस पर मेरे अधिकारी को भी क्रोध आ गया और वो मुझ पर चिल्लाने लगे। मेरा क्रोध भी बहुत भड़क गया था इसलिए मैंने उसे कह दिया कि मैं बन्धुआ मजदूर बनकर कार्य करने की अपेक्षा नौकरी छोड़ देना चाहूंगा। ये कहकर अत्यन्त क्रोध में मैं उसके कक्ष से बाहर आ गया और निर्णय कर लिया कि प्रथम अवसर प्राप्त होते ही एयर इंडिया की नौकरी छोड़ दूंगा।

एक अत्यन्त विवेकशील दक्षिण भारतीय लड़की मेरी सचिव थी। उसका नाम जया था और मैं उससे अपनी बेटियों की तरह से व्यवहार करता था। वह अत्यन्त संवेदनशील थी। वह तुरन्त जान गई कि मैं भयंकर क्रोध में था। वह मेरे कक्ष में आई और कहने लगी कि उसने उस दिन होने वाले सारे कार्य को देख

लिया है इसलिए मैं शान्त होकर समाचार पत्र पढ़ूं। समाचार पत्र पढ़ते हुए मैंने प्रमुख टायर निर्माता–मोदी रबर का सहायक–वित्त–नियंत्रक के पद के लिए विज्ञापन देखा जिसका वेतन एयर–इंडिया में मेरे वेतन से दुगुना था। तुरन्त मैंने जया को बुलाया और इस पद के लिए या इसके समकक्ष पद के लिए प्रार्थना पत्र तैयार करवाया। हवाले में मैंने सर सी.पी. तथा एन.के.पी. साल्वे का नाम लिखा जो कि तब तक संसद सदस्य बन चुके थे।

शाम को मेरे अधिकारी ने मुझे बुलाकर कहा कि मैं प्रात:काल की घटना को भूल जाऊं तथा उसकी वृद्ध आयु को कुछ सम्मान दूं। मेरा अधिकारी और मैं क्योंकि अच्छे मित्र भी थे इसलिए इस घटना को दु:स्वप्न मानकर इसे भूल जाने के लिए मैं तुरन्त सहमत हो गया। लेकिन मैं भूल गया था कि मैं अन्यत्र नौकरी के लिए प्रार्थना पत्र भेज चुका हूँ। इस घटना के एक सप्ताह पश्चात् समाचार पत्र पढ़ते हुए मैंने देखा कि एन.के.पी. मोदी रबर के बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स में थे। मुझे तुरन्त अपने प्रार्थना पत्र की याद आई और ये भी सोचा कि मेरे प्रार्थना पत्र के कारण एन.के.पी. को कितनी उलझन का सामना करना पड़ेगा। अत: मैंने तुरन्त एन.के.पी. को फोन किया और उन्हें सारी कहानी बताई तथा प्रार्थना की कि वे मोदी रबर के निदेषकों से कह दें कि मेरे प्रार्थना पत्र को अनदेखा कर दिया जाए।मैं ये वर्णन करना भूल गया था कि वर्ष १९६७ में एन.के.पी. संसद में लोकसभा के सदस्य चुन लिए गए थे। उनका शास–पत्रित–लेखाकार का कार्य श्री.जैन तथा कृष्णा–सहस्त्रबुद्धे देख रहे थे। सहस्त्रबुद्धे मेरे से काफी अवर थे परन्तु मेरी शिफारिश पर उन्हें साल्वे एण्ड कम्पनी में रखा गया था। साल्वे एण्ड कम्पनी का व्यापार बहुत चमका और यह मध्य भारत की अग्रणीय कम्पनी बन गई। इन कारणों से एन.के.पी. को अधिक विश्वसनीय लोगों की आवश्यकता थी। उन्हें जब पता लगा कि मैं कोई अन्य नौकरी ढूँढ रहा हूँ तो उन्होंने इस अवसर का लाभ उठाया और मुझसे कहा कि मैं तुरन्त दिल्ली आ जाऊँ तथा मुझे बेहतर भविष्य के लिए विश्वस्त भी किया। दिल्ली में मैं जब उनसे मिला तो उन्होंने मेरे सम्मुख साल्वे एण्ड कम्पनी में पुन: लौट आने का प्रस्ताव रखा। मैं बम्बई वापिस आया और श्रीमाताजी और सर सी.पी. से इस विषय पर सलाह की। उन्होंने मुझे साल्वे एण्ड कम्पनी में चले जाने का सुझाव दिया क्योंकि इस कम्पनी में मेरा भविष्य बेहतर था। अत: १९७२ के सितम्बर

माह में मैंने एक महीने के नोटिस के साथ अपना त्याग–पत्र दिया। पूरे वित्त विभाग में इसकी तुरन्त प्रक्रिया हुई। मेरे कुछ प्रवर अधिकारी नहीं चाहते थे कि मैं जाऊं परन्तु कुछ मेरे जाने के हक में थे क्योंकि उनके अनुसार एयर इंडिया ऐसा स्थान न था जहाँ मैं अपनी योग्यता दर्शा सकता। एक दिन मेरे वित्त–निदेशक ने मुझे बुलाया और मेरे सम्मुख पदोन्नति तथा एयर–इंडिया कॉलोनी में एक फ्लैट का प्रस्ताव रखा। परन्तु तब तक मैं अपने भाई की कम्पनी में जाने का निर्णय कर चुका था। ५ अक्टूबर १९७२ को मैं अपने मित्रों और शुभ–चिन्तकों को अलविदा कहकर कार द्वारा अपनी पत्नी और बच्चों को साथ लेकर नागपुर के लिए चल पड़ा।

रास्ते में एक दिन रुकने के पश्चात् ७ अक्टूबर को ज्यों ही हम नागपुर पहुँचे तो तुरन्त मृदुल और उसी सुबह जन्मे उसके नवजात शिशु को देखने के लिए अस्पताल गए। एक बार फिर यह दिवाली का दिन था। पूरे दिन की भागादौड़ी के पश्चात् हमने फ्लैट में रात बिताई। ये फ्लैट मैंने अपनी साली (Sister-in-law) से किराए पर लिया था। यहाँ मैं ये बताना भूल गया था कि बम्बई की सान्ताक्रूज़ एयर–इंडिया कॉलोनी में मैंने एक फ़्लैट सुरक्षित करवाया था। यह एयर–इंडिया द्वारा चलाई गई 'अपने फ्लैट के स्वामी बने' योजना के तहत था। मैंने जब एयर–इंडिया छोड़ी तब तक ये फ्लैट बन रहे थे। क्योंकि अब मैं एयर–इंडिया का कर्मचारी न था इसलिए मुझे ये फ़्लैट देने से इन्कार कर दिया गया और जो पैसा मैंने इसके लिए दिया था वह लौटा दिया गया। हमारा सामान क्योंकि अभी तक न पहुँचा था और हमारे पास खाना बनाने का भी कोई सामान न था नागपुर में हम मिट्टी के तेल से स्टोव पर खाना बनाने लगे। कुछ ही दिनों में हमारा सारा साजो–समान वहाँ पहुँच गया और नागपुर में हमारा दैनिक जीवन ठीक से चलने लगा। साल्वे एण्ड कम्पनी का दफ्तर मेरे फ़्लैट से ज़्यादा दूरी पर न था। मेरा किराए का फ्लैट डुप्लैक्स प्रणाली का था। नीचे मेरे पास एक शयन कक्ष था और ऊपर दो शयन कक्ष तथा एक बहुत बड़ी बालकोनी। इसकी सबसे ऊपर की मंजिल पर एक शयन कक्ष था। जब भी श्रीमाताजी नागपुर आतीं, इसमें रहा करतीं।

गम्भीरता पूर्वक जब मैंने अपना कार्य शुरु किया तो महसूस किया कि सारा कुछ उतना हरा–हरा न था जितना बताया गया था। साल्वे एण्ड कम्पनी में

मेरा वापिस आना बहुत से लोगों को स्वीकार न था और एयर–इंडिया की नौकरी जो मैं कर रहा था उसके मुकाबले में कार्य की माँग के साथ मैं सामंजस्य न बना पा रहा था। निश्चित रूप से मैं हतोत्साहित था और स्वयं को एयर–इंडिया की आरामदेह नौकरी छोड़ने के लिए दोष दे रहा था। मुवक्किलों के जटिलतम और निराशजनक सभी मामले मुझे सौंप दिए गए थे क्योंकि मुझसे ये आशा की गई थी कि मैं उनमें, विशेषत: आयकर के मामलों में, सफल होऊंगा। इसने मेरे नैराश्य को और बढ़ा दिया। एन.के.पी. ने जो भी भरोसे दिलवाए थे वो कोई भी पूरे न हुए। मुझे विश्वास दिलाया गया था कि मुझे साल्वे एण्ड कम्पनी में साझेदार बना लिया जाएगा। परन्तु ये आश्वासन ही रहा। मेरे बार–बार स्मरण करवाने पर भी कोई परिणाम न निकला। नाममात्र के लिए मुझे दो अन्य कम्पनियों में साझेदार बना दिया गया। मेरी योग्यता के अनुसार मुझे पद भी नहीं दिया गया। संभवत: मेरे भाई ने सोचा कि मैं उनकी आशाओं को पूर्ण नहीं कर पाऊंगा।

वर्ष १९७३ में श्रीमाताजी, सर सी.पी. और बच्चों के साथ नागपुर आईं। वे अपने साथ बारह शिष्य भी लाई थी। मुझे याद है कि उनके एक कट्टर हिन्दू शिष्य, श्री.पाई ने पारंपरिक हिन्दू शैली में उनकी पूजा की। पूजा में किसी अन्य को जाने की आज्ञा न दी गई। बाद में मुझे बताया गया कि जब वे श्रीमाताजी की पूजा कर रहे थे तो चैतन्य लहरियाँ इतनी तीव्र थी कि कोई भी वहाँ जाता तो चैतन्य–लहरियों को अस्त–व्यस्त कर देता। मैंने उस पूजा की व्याख्या कर्मकाण्ड कहकर की जिसने मुझे सहज से और दूर कर दिया क्योंकि मैंने इसे आध्यात्मिकता विहीन कर्मकाण्डी धर्म मान लिया था। परन्तु एक अन्य घटना है जिसे मैं स्मरण करना चाहूंगा। एक दोपहर पश्चात् जब श्रीमाताजी एन.के.पी. के घर के वराँडे में बैठी हुई थीं बहुत ही भद्दे कपड़ों में बिना दाढ़ी बनाए चेहरे वाला एक व्यक्ति दरवाजे पर चिल्लाता हुआ आया। माँ!माँ!माँ! आप कहाँ हैं? श्रीमाताजी को देखते ही वह उनके सम्मुख साष्टांग लेट गया और इस प्रकार सुबकने लगा कि उसे सम्भालना मुष्किल हो गया! वह बुदबुदा रहा था कि उसे जीवन का लक्ष्य मिल गया। उसके गन्दे कपड़े और शक्ल देखकर मैं चाहता था कि वो तुरन्त घर से चला जाए। मैंने सोचा था कि वह कोई भिखारी या गली का लोफर है जो श्रीमाताजी के विषय में जानता है और उनका शिष्य होने का नाटक करके उनका लाभ उठाना चाहता है। हमेशा की तरह श्रीमाताजी उसके प्रति

उदार थीं। उन्होंने उससे पूछा कि क्या वह कुछ खाना–पीना चाहेगा? मुझे थोड़ा सा झटका लगा क्योंकि मैंने सोचा था कि श्रीमाताजी चाहेंगी कि वह वहाँ से चला जाए। परन्तु वे इसकी अपेक्षा उसके प्रति उदारता दर्शा रही थीं। उनके प्रश्न के उत्तर में अश्रुपूर्ण आँखों से उसने प्रार्थना की कि वह एक गिलास पानी पी लेगा। मुझे एक गिलास पानी लाने के लिए कहकर श्रीमाताजी घर के अन्दर चली गईं और मैं पानी का गिलास लेने गया। मैं जब वापिस आया तो गन्दे कपड़ों वाला व्यक्ति वहाँ नहीं था। मैंने सोचा कि शायद वह ड्योढ़ी में चला गया है इसलिए मैं ड्योढ़ी में आया। परन्तु वहाँ पर एक सुरक्षा कर्मी के अतिरिक्त कोई भी न था। एन.के.पी. के घर में बहुत बड़ा प्रागंण था और इस घर का केवल एक ही द्वार था जिससे बाहर जाया जा सकता था। वहाँ पर यह सुरक्षाकर्मी खड़ा हुआ था। पूछताछ करने पर सुरक्षाकर्मी ने बताया कि एक व्यक्ति आया था परन्तु वह बाईं ओर के द्वार की ओर न मुड़कर दाईं ओर को मुड़ा था और वहाँ वह अवर्णनीय ढंग से अदृश्य हो गया था। मैं उस दिशा की ओर गया जहाँ वह व्यक्ति जा सकता था परन्तु वहाँ किसी को न पाकर मैं भौंचक रह गया। प्रांगण का क्योंकि यह अन्तिम छोर था, अत: उस व्यक्ति को बाह्य द्वार से ही जाना पड़ता। इस पूरी कहानी ने मुझे अवाक कर दिया और यह बात मैंने श्रीमाताजी को बताई। उन्होंने कहा कि वह व्यक्ति सन्त और आत्म–साक्षात्कारी था तथा उसमें अदृष्य हो जाने की क्षमता थी। नि:सन्देह मुझे उनकी बात पर विश्वास न हुआ परन्तु यह घटना मेरे अन्दर अत्यन्त स्पष्ट और दृढ़ रूप से अंकित हो गई।

वर्ष १९७४ के आरम्भ में IMCO अन्तरराष्ट्रीय समुद्रवर्ती समन्वयन संस्था (International Maritimes Co-ordinating Organization) के अध्यक्ष की पत्नी की हैसियत से श्रीमाताजी इंग्लैण्ड गईं। प्रतिकूल परिस्थितियों में अपने पेशे की लड़ाई लड़ने के लिए मुझे वहीं छोड़ दिया गया। यह परिवर्तन अपने जीवन में मैंने बहुत देर से किया था क्योंकि अब अपने दो बेटों की शिक्षा–दीक्षा की अतिरिक्त जिम्मेदारी भी मुझ पर थी। मुझे आशा थी कि एक दिन मेरी योग्यता, जो भी योग्यता मुझमें थी, मुझे अपने पेशे में उच्च स्थान दिलवाएगी। इस आशा के साथ मैं साल्वे एण्ड कम्पनी में कार्य करता रहा। यद्यपि मैं स्वीकार करता हूँ कि लोगों के मेरे प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण के कारण मेरा पूरा हृदय इस कार्य में न था। क्रिसमस के अवसर पर सदा श्रीमाताजी नागपुर आतीं और

मुझे उत्साहवर्धक शब्द कहतीं।

१९७० से लेकर १९८३ तक श्रीमाताजी मुझे आत्मसाक्षात्कार देने का प्रयत्न करती रहीं। क्रिसमस के समय जब भी वो आतीं उनका प्रयत्न जारी रहता। मेरे चक्रों को शुद्ध करने के लिए वो अपना हाथ और अपने चरण मेरे शरीर पर रखती। परन्तु इसका कोई लाभ न हुआ। हर बार मेरी कुण्डलिनी उठती परन्तु मैं क्योंकि श्रीमाताजी को बहन के रूप में देखता था इसलिए यह नीचे की ओर खिंच जाती। मुझे आत्मसाक्षात्कार देने की उनकी इच्छा इतनी दृढ़ थी कि मुझे आत्म–साक्षात्कार देने में जो परिश्रम वे करतीं उससे उन्हें सर्दियों के महीनों में पसीने आ जाते। मुझे बहुत बुरा लगता और बहुत बार मैंने उनसे प्रार्थना की कि मुझे कभी न सुधरने वाला मामला समझकर छोड़ दें। उनकी तीव्र इच्छा के बावजूद भी में आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करने में असफल रहा।

अपने पेशे से क्योंकि मैं पूर्णत: सन्तुष्ट न था अत: चिढ़कर मैंने रोलिंग शटर बनाने का व्यापार भी करके देखा। परन्तु इसमें मुझे जबरदस्त असफलता मिली। वर्ष १९७५ के अन्त तक नागपुर के एक प्रमुख वकील श्री.एल.एस.देवानी से मेरी मित्रता हो गई। उनकी मुझमें बहुत दिलचस्पी थी और जब–जब भी मैं अपने पेशे से मिलने वाली कड़वाहट की शिकायत उनसे करता तो वह मुझे साल्वे एण्ड कम्पनी की सुरक्षा और छत्रछाया से निकलकर स्वतंत्र रूप से अपना कार्य शुरू करने की सलाह देते। ये बहुत बड़ा कदम था क्योंकि मैं चालीस वर्ष की आयु पार कर चुका था और इस आयु में स्वतन्त्र रूप से कार्य करके यदि मैं सफल न होता तो बहुत किर–किरी (Hara-Kiri) होती। क्रिसमस के समय पर जब श्रीमाताजी आतीं तो वो भी मुझे उत्साहित करतीं। अत: दिसम्बर १९७७ में स्वतन्त्र रूप से कार्य करने की आज्ञा मांगी। साल्वे एण्ड कम्पनी में सोंपे गए कार्य मुझे समाप्त करने थे और इनमें कुछ समय लगा। श्री.देवानी ने नागपुर के एक व्यापार क्षेत्र 'गाँधी बाग' में मुझे, टेलिफोन तथा फर्नीचर से सुसज्जित अपना एक दफ्तर नि:शुल्क देने का प्रस्ताव किया। उनका ये सद्‌भावना प्रदर्शन उत्तम तथा उदार होने के साथ–साथ इस कठिनाई में मेरी सहायता करने की उनकी इच्छा अभिव्यक्ति भी थी। प्रथम अगस्त १९७८ को मैंने 'साल्वे एण्ड कम्पनी' को नमस्ते कही और अपने नाम पर ही कार्य शुरु कर दिया। 'साल्वे एण्ड कम्पनी' का अन्तिम हिस्सा 'एण्ड कम्पनी'

उपयोग करने के लिए मुझे अपने नाम के साथ लगाने की आज्ञा न दी गई क्योंकि एन.के.पी. ने सोचा कि कही मैं 'साल्वे एण्ड कम्पनी' का व्यापार अपनी कम्पनी में न खींच लूं। अत: मैंने 'एच.पी.साल्वे' नाम से बिना इसके आगे या पीछे कुछ लगाए अपना कार्य शुरु कर दिया। मेरा भतीजा अजीत, एक अन्य श्री.मेंघानी और नन्दलाल चपरासी सिर्फ यही तीन लोग मेरे कर्मचारी थे। मैं निठल्ला (Briefless) था और शीघ्र ही धनविहीन (Moneyless) भी हो जाता। पहले पन्द्रह दिनों तक मेरे पास कोई भी मुवक्किल न आए और मैं सोचने लगा कि एक बार फिर मैंने गलती की है। परन्तु इसके पश्चात् मेरे पास बहुत से मुवक्किल आए और मैं अपने पेशे में आगे बढ़ता चला गया।

वर्ष १९७९–८० में महाराष्ट्र भ्रमण के एक भाग के रूप में श्रीमाताजी विदेशियों का एक समूह नागपुर लेकर आईं! मैंने जनकार्यक्रमों और सैर–सपाटे का आयोजन किया। मैं उन्हें 'ताडोबा सिंह–वनस्थली' ले गया और उन्होंने जंगल का आनन्द उठाया। इसका वर्णन मैं विषेश रूप से इसलिए कर रहा हूँ क्योंकि गंगाराम नामक जिस खाने वाले का मैंने इन्तजाम किया उसने भविष्य में मुझे सहज में लाने की अहम् भूमिका निभाई।

वर्ष १९८० में मुझे 'Institute of Chartered Accountants' 'शासपत्रित लेखाकार संस्था' की नागपुर शाखा का अध्यक्ष चुना गया और इस पद पर मैं १९८२ तक रहा। जब मैंने इस शाखा का कार्य–भार सम्भाला तो यह बन्द होने वाली थी परन्तु कार्यकारिणी के गम्भीर प्रयत्नों से हम इस शाखा को न केवल कठिनाई में से निकाल सके बल्कि मेरे कार्यकाल की समाप्ति से पूर्व ही संस्था की इस शाखा को पूरे भारत की सर्वोत्तम शाखा घोषित किया गया।

सहजयोग की गतिविधियाँ अब बम्बई के आस पास के क्षेत्रों में तीव्र होने लगीं थी इसलिए श्रीमाताजी भारत में अब अधिक समय तक रुका करती थीं। मुझे कुछ जन्म–दिवस समारोहों तथा दो पूजाओं में सम्मिलित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मुझे लगा कि ये पूजाएं नीरस और उबाऊ हैं। मुझे ये विश्वास हो गया था कि वे शाश्वत् धर्म और एक ही परमात्मा की शिक्षा दे रही हैं जिसमें मेरा दृढ़ विश्वास था। मानव रचित धर्मों को मानने के मैं सदैव विरुद्ध था क्योंकि इस प्रकार ये मानव को भिन्न पंथो में बाँट रहे थे और परमात्मा की इच्छा ये कभी नहीं हो सकती। वो कहा करती थीं कि हमें प्रत्यक्ष दिखाई देने

वाली चीजों से परे जाकर सूक्ष्म को महसूस करना है। परन्तु मैं क्योंकि आत्म–साक्षात्कारी न था इसलिए मैं सोचा करता था कि सूक्ष्म को महसूस करना वास्तविकता न होकर काल्पनिकता है। मेरी समझ में न आता था कि यदि परमात्मा निराकार है तो ये श्रीमाताजी की पूजा देवी रूप में क्यों कर रहे हैं क्योंकि वे भी तो मानव रूप में थीं! यह सब मेरी समझ से परे की बात थी। इसलिए मैंने सोचा कि वे जो शिक्षा दे रहीं हैं वह वास्तविकता के क्षेत्र से परे की बात है और कम से कम मेरी सूझ–बूझ से तो परे की बात है ही। अत: मैंने उनकी आध्यात्मिक गतिविधियों पर बहुत अधिक ध्यान नहीं दिया।

वर्ष १९८३ में गुजरात राज्य में बोर्डी नामक स्थान पर महाराष्ट्र सेमिनार हुआ। इसमें भोजन का प्रबन्ध गंगाराम को सौंपा गया। पूरा सेमिनार अत्यन्त अव्यवस्थित था और गंगाराम को काफी हानि हुई क्योंकि समीप के गांवों के बहुत से लोग बिना कोई पैसा दिए खाने के पण्डाल में दोपहर तथा रात्रि भोज के लिए घुस आते थे। परिणामत: जब १९८४ में उसे भोजन का प्रबन्ध करने के लिए कहा गया तो उसने मेरे वहाँ उपस्थित रहने पर बल दिया ताकि कहीं उसे एक बार फिर से हानि न उठानी पड़े। गंगाराम यदि बल न देता तो मैं बोर्डी न गया होता।

१९८४ में एक बार फिर दिसम्बर–जनवरी के महीनों में सेमिनार का आयोजन किया गया। ६०–७० विदेषियों को मिलाकर लगभग ३००–४०० सहजयोगी थे। कलकत्ता से बम्बई के लिए मैंने सीधी उड़ान पकड़ी और वहाँ से बोर्डी जाने के लिए रेलगाड़ी। मैंने सोचा था कि स्टेशन पर मेरा बड़ा जोर–शोर से स्वागत किया जाएगा। परन्तु जब कोई भी मुझे लेने के लिए नहीं आया तो मेरे अहम् को जबरदस्त चोट पहुँची। सेमिनार थोड़ी सी दूरी पर था। कुछ सहजयोगी बम्बई से आए थे। टांगा किराए पर लेकर मैंने उनका अनुसरण किया। सेमिनार के स्थान पर जब मैं पहुँचा तो बिना कोई मर्यादा पालन किए सीधा श्रीमाताजी के कमरे में चला गया। मैं नहीं जानता था कि श्रीमाताजी के कमरे में प्रवेश करने के लिए भी नियम आचरण होते हैं। कमरे में जाकर मैंने श्रीमाताजी से शिकायत की कि मुझे लेने के लिए कोई भी नहीं आया। मेरा क्रोध देखकर श्रीमाताजी ने मुझे शान्त करने का प्रयत्न किया। उन्होंने कहा कि कोई भी ये न जानता था कि मैं कौन सी रेलगाड़ी से आ रहा हूँ (यद्यपि मैंने अपने आने की सूचना तार द्वारा आयोजकों को भेजी थी)। जो भी हो उन्होंने कहा कि जो कुछ भी हुआ वह अब

बीत चुका है, इसलिए मैं शान्त होकर सेमिनार का आनन्द लूं।

उस रात भोजन के पश्चात् रोज़मर्रा की तरह से संगीत का कार्यक्रम हुआ। एक अमरीकन सहजयोगी को (मैं उनका नाम भूल गया हूँ) भजन गाने के लिए कहा। मुझे हैरानी हुई कि एक अमरीकन व्यक्ति भारतीय भजन गाने वाला है और पूरी आशा के साथ मैंने उसके गाने की प्रतीक्षा की। एक गिटार का प्रबन्ध किया गया। उसकी गाने की संगति के लिए केवल यही वाद्य यन्त्र था। उसको संगत देने के लिए तबला हारमोनियम या कोई अन्य पारम्परिक भारतीय वाद्य यंत्र न था। मैं हैरान था कि वह किस प्रकार का भजन गाने वाला है। उसने अत्यन्त लोकप्रिय भजन 'रघुपति राघव राजा राम' गाना शुरु किया। परन्तु वह इसे रॉक–एन–रोल शैली में गा रहा था। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि मैं हसूँ या रोउँ! विशेषरूप से जब उसने अत्यन्त लापरवाही से एक खास रॉक–एन–रोल शैली में एक–दो–तीन–चार–रघु–रघु गाया। मुझे लगा कि मैं उसे गाना बन्द करने के लिए कह दूँ और इस भजन को इस तरह से बिगाड़ने के लिए उसे बुरी तरह से लताडूं क्योंकि ये भजन न केवल सभी भारतीयों के लिए मंत्र रूप में था बल्कि यह महात्मा गाँधी को भी बहुत प्रिय था। श्रीमाताजी को उसके गाने की प्रशंसा करते हुए देखकर मैं भौंचक रह गया। यह सब स्वीकार करना मेरे बस की बात न थी। अपना पूरा जीवन चोटी के भारतीय संगीतकारों को सुनने वाली महिला किस प्रकार ऐसे बेसुरे और निराशाजनक संगीत को सुनने का कष्ट झेल सकती है और उसकी प्रशंसा कर सकती हैं, यह सब मेरी सहन शक्ति से परे की बात थी। मेरी बहन, जो कि संगीत पारखी थीं, इस बेसुरे भयानक संगीत को सुनने का कष्ट झेलें, यह बात मैं सहन न कर सका। वहीं मैंने निश्चय किया कि अब जब–जब भी कहीं सेमिनार होता तो मैं नागपुर से संगीतकार लेकर आऊंगा जो उन्हें अच्छा संगीत सुना सकें।

मैं ये बात बताना भूल गया था कि वर्ष १९७३ में मुझे एक संगीत स्पर्धा का निर्णायक बनाया गया था। इस स्पर्धा में प्रभाकर धाकड़े (गुरुजी) गज़ल गा रहे थे। मैंने तुरन्त उनकी सम्भाव्यता (Potential) को पहचाना और आयोजकों से कहा कि वे उनसे कहें कि मुझसे सम्बन्ध साधें। मैं न केवल उनकी संगीत प्रतिभा से प्रभावित हुआ था बल्कि इस बात से भी प्रभावित हुआ था कि वे गरीबों और दलितों के लिए बिल्कुल नि:शुल्क संगीत विद्यालय चला रहे थे। मैंने

उनकी सहायता करने का निर्णय किया और हमने स्वरमाधुरी नाम से एक संस्था बनाई और इसके झण्डे तले उस्ताद अमजद अली खाँ साहिब, बुद्धादित मुखर्जी, पण्डित जगदीश प्रसाद, एम.राजम और शंकर शम्भू नामक सुप्रसिद्ध कव्वालों के एक कार्यक्रम का आयोजन किया। परिणामस्वरूप गुरुजी और उनके संगीतकारों के बीच ज़बरदस्त तालमेल हो गया और मैं विश्वस्त था कि श्रीमाताजी के सम्मुख संगीत प्रस्तुत करने में इन्हें बहुत प्रसन्नता होगी। यहाँ यह वर्णन कर देना उचित होगा कि श्रीमाताजी भी इस बात से बहुत प्रभावित हुईं कि गुरुजी गरीबों के लिए संगीत विद्यालय चला रहे थे। नागपुर की एक यात्रा में वे इस स्कूल को देखने के लिए आईं भी थीं। तो मैंने निश्चय कर लिया परन्तु इसके विषय में किसी को बताया नहीं। मेरे अनुसार यह मेरे जीवन का परिर्वतन बिन्दु था और व्यंग्यात्मक रूप से इसका श्रेय अमरीकन संगीतकार को जाता था। विधि के तौर–तरीके बड़े ही अजीब हैं।

सेमिनार समाप्त होने के पश्चात् मैं श्रीमाताजी के साथ बम्बई वापिस आ गया। उन्होंने पूरे महाराष्ट्र के लिए मेरी कार मांगी थी और मुझे इस बात पर गर्व था कि मैं उनके किसी काम आ सका। परन्तु सूक्ष्म में वे मेरी सहायता कर रहीं थीं कि मैं उन्हें ठीक से समझ सकूं। हम जब बम्बई पहुँचे तो उन्होंने मुझे कुछ रुपये दिए ताकि मैं कार वापिस नागपुर ले जा सकूं। मैने ये रुपये लेने से इन्कार किया और कहा कि मेरे पास कुछ रुपये हैं और बम्बई के मुवक्किलों से मुझे कुछ राशि मिलने वाली भी है। उनके बल देने के बावजूद भी मैंने रुपये लेने से इन्कार कर दिया। अपने मुवक्किलों से मिलने के पश्चात् अगली प्रात: मैं नागपुर रवाना होने की योजना बना रहा था। अगले दो दिन जो घटना घटित हुई वह मेरे लिए आँखे खोलने वाली थी। अगला दिन रविवार था और मेरे मुवक्किलों के सारे दफ्तर बन्द थे तथा वे सब समीप के टापू पर पिकनिक के लिए गए हुए थे। मैंने अपनी भतीजी से पूछा कि क्या वह मुझे कुछ पैसे उधार दे सकती है? उसने उत्तर दिया कि उसके सारे पैसे बैंक में हैं और वह सोमवार को मेरी सहायता कर सकती है। नागपुर में क्योंकि मेरा एक आवश्यक कार्य रुका हुआ था इसलिए उस दिन दोपहर तक किसी भी तरह से मुझे बम्बई से जाना था। हारे हुए सिपाही की तरह से मैं श्रीमाताजी के पास गया और उनके सम्मुख स्वीकार किया कि मुझे वह पैसे ले लेने चाहिए थे परन्तु अपने अहं के कारण मैंने वह

रुपये लेने से इन्कार कर दिया था। हँसकर उन्होंने पैसे दे दिए परन्तु उन्होंने मुझे सीख दी कि कभी भी मैं उनकी बात का खण्डन न करूं क्योंकि वे भविष्य को देख सकती हैं।

बहुत वर्ष पश्चात् १९८७ में जब मैं पुणे में था तब भी एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई। मुझे चीफ कमिश्नर इन्कम टैक्स से मिलना था इसलिए मैंने अपनी पत्नी से कहा कि पूना ले जाने वाले सूटकेस में एक सूट और टाई डाल दें। चीफ–कमिश्नर से अपराह्न से मिलने का समय नियत था। उसी प्रात: श्रीमाताजी ने मुझे बुलाया और एक बहुत सुन्दर टाई मुझे उपहार में देनी चाही। उन्होंने कहा कि इससे पूर्व उन्होंने कभी मुझे टाई न दी थी। ये कहते हुए मैंने श्रीमाताजी से इन्कार किया कि उन्होंने मुझे कम से कम सौ टाईयाँ भेंट की हैं, परन्तु उन्होंने इस बात पर बल दिया कि मैं यह एक और भी रख लूं। परन्तु मैंने दृढ़ता पूर्वक ये कहते हुए इन्कार कर दिया कि उनकी उदारता मुझे बिगाड़ देगी। उस अपराह्न चीफ कमिश्नर से मिलने जाने के लिए जब मैंने सूट निकाला तो उसके साथ टाई न थी। मुझे इतनी लज्जा आई कि उलझन से बचने के लिए मैंने किसी सहजयोगी से, जिनमें विदेशी सहजयोगी भी थे, जो प्रतिष्ठान को बनाने के कार्य में लगे हुए थे, टाई उधार मांगनी चाही। उस समय श्रीमाताजी उनके कार्य के लिए उन्हें पैसे दे रही थीं परन्तु वे इसे नहीं ले रहे थे। बहुत समझाने पर अन्तत: उन्होंने ये पैसे स्वीकार किए। सभी ने क्योंकि कुर्ते–पजामे पहने हुए थे इसलिए किसी के पास भी टाई न थी। अन्तत: मुझे श्रीमाताजी के पास जाना पड़ा और उन्होंने पुन: उसी बात का स्मरण करवाया कि वे भविष्य को देख सकती हैं जो मैं नहीं कर सकता। इसी प्रकार सहजयोगियों ने दृढ निश्चय के बावजूद भी अपने कार्य के बदले उनसे पैसे ले लिए थे क्योंकि रुपयों की उन्हें आवश्यकता थी। यह बात मेरे सम्मुख बहुत बार प्रमाणित हुई। नागपुर वापिस आकर पहला कार्य जो मैंने किया वह था गुरुजी तथा अन्य संगीतकारों से मिलना और उनसे प्रार्थना करना कि १९८५–८६ के दिसम्बर और जनवरी के आरम्भ के दिनों को खाली रखें। जिसके लिए वे तुरन्त सहमत हो गए।

अपने कार्य में सफलता ने नि:सन्देह मुझे बहुत सा धन दिया। परन्तु इसके साथ–साथ बहुत बड़ा अहं भी आया। मैं पाइप पीता था और बहुत ही अहंपूर्वक अपने मुवक्किलों से बात करता। मेरी विनम्रता समाप्त हो गई थी और इसका

स्थान अक्खड़पने और अहंकार ने ले लिया था। अपनी उपलब्धियों पर मुझे बहुत अहंकार हो गया था और मैं उनकी शेखी बघारने लगा था। ऐसा करना मेरे आम आचरण के विरुद्ध था। न जाने क्यों मुझे लगता था कि अपनी सफलता की यदि मैं डींग मारूंगा तो मुझे और अधिक मुवक्किल मिलेंगे तथा मैं विशिष्ट व्यक्ति माना जाऊंगा। प्रसिद्धि और गौरव की धारा के बहाव में मैं बह चला था और इसी को मैंने सफल जीवन मान लिया था। सितम्बर १९८५ में अचानक मैंने धूम्रपान और थोड़ा बहुत मद्यपान, जो मैं करता था, छोड़ने का निश्चय कर लिया। एक मित्र के यहाँ रात्रिभोज में चुटकले सुनाने के लिए मुझे सभी महिलाओं ने घेरा हुआ था क्योंकि उनमें से न कोई भी शराब पी रही थी न सिगरेट। अत: मैंने कहा मैं भी न तो शराब पीऊंगा और न ही धूम्रपान करूंगा, कम से कम उस रात। रात को मैं अपने बीते हुए जीवन पर दृष्टिपात कर रहा था तो मुझे लगा कि मेरा जीवन व्यर्थ हो जाएगा क्योंकि भौतिक सफलता जो मुझे प्राप्त हुई थी वह नश्वर थी। मैंने स्वयं को अपनी आदतों के विषय में प्रश्न किए। क्या मैं आदतों का गुलाम बनने वाला हूँ? इन सभी प्रश्नों तथा बहुत से अन्य प्रश्नों ने मुझे अन्दर से झकझोर दिया और मैंने निर्णय किया कि अगले दिन से मैं आदतों का गुलाम नहीं रहूँगा। मैंने सोचा कि अहंकार भी एक आदत है और मैं इसे अपने पर हावी होने की आज्ञा नहीं दूंगा। मुझे यह सहज की ओर दूसरा कदम लगा।

परन्तु उस समय मैंने इस बात की कल्पना भी नहीं की थी कि मैं सहजयोगी बन जाऊंगा। सात दिन धूम्रपान करने के लिए प्रतिदिन के हिसाब से मेरे पास सात पाइप थे और अगले दिन पहला कार्य जो मैंने किया वह था सारे पाइप अपने भिन्न मित्रों को भेंट करना। मुझे अत्यन्त प्रसन्नता और विजयभाव का आभास हुआ क्योंकि मैंने सोचा कि मैंने युद्धजीत लिया है।

उस वर्ष के सेमिनार का आयोजन गणपति पुले में होना था, यदि मुझे ठीक से याद है तो क्रिसमस की छुट्टियों में सेमिनार आरम्भ और नववर्ष से दो दिन पूर्व समाप्त होना था। गंगाराम को भोजन का प्रबन्ध सौंपा गया था और क्रिसमस के समीप ही मैं संगीतकारों की टोली को लेकर गणपति पुले के लिए चल पड़ा। ये कहना अनावश्यक होगा कि न तो ये संगीतकार थे और न ही मैं सहजयोगी था। परन्तु मैंने शपथ ली थी कि अपनी बहन को बहुत अच्छा संगीत पेश करूंगा।

उन दिनों न तो ऐसे कोई भजन थे न गाने जो हम गा सकते। तब तक निर्मल–संगीत सरिता न थी, ये तो मात्र संगीतकारों की एक टोली थी और मेरी दोहरी जिम्मेवारी थी–एक ओर गंगाराम की देख–रेख करना और दूसरी ओर अच्छा संगीत प्रस्तुत करना। संगीतकारों का एक दल नासिक से था जिसके मुखिया श्री.सौदंकर थे तथा दूसरा दल श्रीरामपुर से था। मुझे याद है कि पहले दिन हमें अन्त में संगीत प्रस्तुत करने का अवसर मिला क्योंकि हम प्रतिष्ठित संगीतकार न थे। हमने कबीर साहब के कुछ भजन गाए, गुरुजी ने वायलिन बजाया, नासिर ने सितार बजाया और तबले पर संगत मजूमदार ने की। हमारे प्रस्तुत किए गए संगीत की बहुत प्रशंसा हुई और बहुत से विदेशी सहजयोगियों ने आकर हमें बधाई दी। मैंने समझा कि ये सब औपचारिकता है क्योंकि मुझे सन्देह था कि ये विदेशी भारतीय संगीत को कितना समझ पाएंगे। चैतन्य लहरियों की भाषा से हम पूरी तरह अनभिज्ञ थे। इसलिए हमने सोचा कि उपस्थित दर्शक, विशेष रूप से विदेशी लोग वास्तव में इस संगीत को नहीं समझ सकेंगे। हम केवल यही देखकर प्रसन्न थे कि श्रीमाताजी बहुत प्रसन्न थीं और इस प्रकार इस समय हमारे गणपति पुले आने का लक्ष्य पूरा हो गया था।

उस वर्ष का सेमिनार आम के पेड़ों के नीचे बगीचे में हुआ था। मेरे अन्दाजे के अनुसार ४००–५०० लोगों ने भाग लिया। हमारा सरोकार क्योंकि केवल संगीत से था इसलिए हम किसी अन्य कार्यक्रम में भाग न ले रहे थे। बम्बई के सहजयोगी इस सेमिनार के संयोजक थे और मुझे याद है कि मैं मन्दिर के समीप के एक कमरे में रहा था क्योंकि एम.टी.डी.सी. कमरे अति विशिष्ट व्यक्तियों को ही आवंटित किए गए थे। वास्तव में एम.टी.डी.सी. का क्षेत्र बहुत छोटा था और इसमें से बहुत ही कम कमरे सहजयोग के लिए आवंटित किए गए थे।

ये देखकर मुझे बहुत खुशी हुई कि विदेशी सहजयोगी इस बात की बिल्कुल भी चिन्ता न करते थे। खादी के बने हुए कुर्ते–पजामों पर लाल मिट्टी जम जाती थी परन्तु ये विदेशी इसका बिल्कुल भी बुरा न मानते थे क्योंकि वो कहते कि वो तीर्थ यात्रा पर हैं और उन्हें इस बात की बिल्कुल भी चिन्ता न थी कि उन्होंने कौन से वस्त्र पहने हुए हैं। सभी विदेशी महिलाएं श्रीमाताजी द्वारा दी गई सूती साड़ियाँ पहने हुए थीं और उनके वस्त्रों की सादगी तथा उनके दैदीप्यमान आनन्दमय चेहरे अन्य भारतीयों को, विशेष रूप से जो सहजयोगी न

थे, स्वयं को उनसे तुच्छ समझने के लिए विवश कर रहे थे। मुझे खेद था कि मैं सहजयोगियों से तादात्म्य नहीं बना पा रहा था इसलिए इस भीड़ के बावजूद भी अकेलेपन का शिकार था।

इन परिस्थितियों में आम के एक वृक्ष के नीचे खड़ा हुआ मैं डॉक्टर रुस्तम वरजोर जी और राजेश शाह की बातचीत को सुन रहा था। वे सहजयोग में अपनी उन्नति और श्रीमाताजी द्वारा उत्थान–मार्ग पर प्रदान की गई गति के विषय में बात कर रहे थे। मेरे चेहरे पर प्रश्नमय मुस्कान देखकर राजेश शाह ने मुझे बताया कि क्योंकि मैं आत्मसाक्षात्कारी नहीं हूँ इसलिए उनकी बातचीत को समझ पाना मेरे लिए कठिन होगा। मैंने मुड़कर उनसे प्रश्न किया कि क्या उन्होंने मेरी बहन को आदिशक्ति या परमेश्वरी के रूप में स्वीकार कर लिया है? उन्होंने कहा कि वो मुझे दो मिनट में आत्म–साक्षात्कार दे देंगे। मैंने सोचा कि वह अहम्‌वश बात कर रहे थे क्योंकि तेरह वर्षों में श्रीमाताजी स्वयं प्रयत्न करने के बावजूद भी मुझे आत्म–साक्षात्कार देने में सफल न हुईं थीं। जो भी हो उनके शब्दों को स्वीकार करते हुए मैंने उन्हें चुनौती दी कि वो मुझे आत्म–साक्षात्कार दें। उन्होंने मुझे पेड़ के नीचे बैठने को कहा और मेरे बालों को मचोड़ते हुए उन्होंने अपना हाथ मेरे सिर पर रखा। उनका ऐसा करना मुझे अच्छा न लगा। मैंने उनसे कहा कि उनकी असफलता मेरी विजय होगी। मुझे पूर्ण–विश्वास था कि मुझे आत्म–साक्षात्कार देने में वे असफल होंगे। राजेश–शाह मुझसे प्रश्न पूछने लगे। उनका पहला प्रश्न ये था कि मेरी प्रियतम चीज़ क्या है? स्पष्ट है कि मेरा उत्तर था 'श्रीमाताजी'। उन्होंने कहा कि श्रीमाताजी के अतिरिक्त मेरा प्रियतम क्या है? मेरा उत्तर था 'संगीत'। उन्होंने अत्यन्त अबोधिता पूर्वक मुझसे प्रश्न किया कि संगीत का सार–तत्व, इसका परमोत्कर्ष, इसकी पराकाष्ठा क्या है? क्षण भर सोचने के पश्चात् मैंने उत्तर दिया, ''कलाकार द्वारा सृजित स्वर जिसे श्रोता पूरी तरह से स्वीकार कर लें और जिस सृजित स्वर से संगीत को कोई हानि न पहुँचे।'' मैंने सोचा था कि मैंने अत्यन्त चमत्कारिक उत्तर दिया है और इस उत्तर से रुस्तम धराशायी हो गए होंगे। परन्तु अचानक रुस्तम ने कहा कि, ''आप ये सोचें कि श्रीमाताजी आपकी बहन नहीं है। वे संगीत की वो पराकाष्ठा हैं जिसका वर्णन अभी आपने इतने सुन्दर शब्दों में किया है।'' उसके इस वाक्य ने कार्य किया। भाई–बहन

सम्बन्धों का तार इतना दृढ़ था, मेरा ये बन्धन इतना अडोल था कि मैं सम्बन्धों के बन्धन से मुक्त ही न हो पा रहा था परन्तु श्रीमाताजी को संगीत के पराकाष्ठा रूपी स्वर के रूप में पहचानते ही यह बन्धन टूट गया। बेड़ियाँ खुल गईं और अचानक मैंने श्रीमाताजी का एक नया रूप देखा जो कि निराकार था, जिसके आगे-पीछे कुछ जुड़ा हुआ न था (Prefixes or Suffixes) तथा किसी सम्बन्ध या बन्धन का दाग न था। अपने अन्दर मुझे एक अजीब अनुभव हुआ मानो संगीत का निराकार स्वर मेरी बहन की पहचान को समाप्त कर रहा हो। वहीं मुझे इस बात का आभास हो गया कि मेरे अन्दर परिवर्तन घटित हो रहा है। अचानक मुझे सर्वत्र शीतलता का आभास होने लगा, विशेष रूप से मेरे हाथों में और सिर पर तथा मेरी आँखों की पुतलियाँ फैलने लगीं। बिना किसी इच्छा के मैं निर्विचार हो गया था और मुझे कुछ भी सूझ न रहा था मानो किसी और संसार में मैं समाधि में चला गया हूँ।

ज्यों ही राजेश ने मेरी आँखों को फैलते हुए देखा, वो खुशी से नाचने लगा और कहा, ''बाबा मामा को मिल गया है।'' ऐसा कहकर वह श्रीमाताजी को समाचार देने के लिए दौड़ पड़ा। बाद में रुस्तम मुझे श्रीमाताजी के पास ले गये और उन्होंने कहा, चाहे देर से सही मैं अपनी मंजिल पर पहुँच गया हूँ। यह घटना २८ दिसम्बर को घटित हुई। उसी शाम मैंने गुरुजी तथा अन्य संगीतकारों को अपने अनुभव के विषय में बताया और कहा कि शीघ्र ही उन्हें भी मेरा अनुसरण करना होगा क्योंकि आत्मसाक्षात्कार अत्यन्त स्वर्गीय अनुभव है।

सेमिनार के पश्चात् मैं नागपुर लौट गया। अपने कार्य पर जब मैं लौटा तो मुझमें बहुत सी उलझने थीं। श्रीमाताजी ने मुझसे प्रात:काल ध्यान धारणा करने के लिए कहा था जो मैं नियमित रूप से कर रहा था। मैं क्योंकि अपना मस्तिष्क एकाग्र न कर पा रहा था इसलिए मुझमें अनगिनत प्रश्न थे जिनका मुझे कोई उत्तर न मिल रहा था। मेरे प्रश्न प्राय: सांसारिकता से परिपूर्ण थे ताकि अपने अन्दर के जिज्ञासु को सन्तुष्ट करने के लिए मैं अपनी बौद्धिक श्रेष्ठता स्थापित कर सकूं। प्रश्न जैसे, 'अच्छे बुरे में भेद किस प्रकार किया जाए?', 'किसी व्यक्ति का आँकलन किस प्रकार किया जाए?', 'परमात्मा क्या है?', 'धर्म क्या है?', 'मानव, धर्म और परमात्मा में क्या अन्तर्सम्बन्ध है?,' 'क्या परमात्मा तक पहुँचने के लिए धर्म आवश्यक है?' और ऐसे ही बहुत से अन्य

प्रश्न जो कि बौद्धिकता के स्तर के थे, मुझे परेशान करने लगे। परिणामस्वरूप यद्यपि मैं आत्म–साक्षात्कारी था फिर भी भ्रान्ति में फँस गया था। मेरे जीवन में यह अत्यन्त नाजुक समय था। इसी समय अचानक मुझे श्रीमाताजी का फोन आया कि मैं कलकत्ता आकर उस जनकार्यक्रम में भाग लूं जो उन्होंने वहाँ आयोजित किया था। शायद यह जनवरी १९८६ का तीसरा सप्ताह था। अत: मैंने कलकत्ता के लिए रेलगाड़ी पकड़ी। रेल को कलकत्ता के बाह्य क्षेत्र में रुकना पड़ा। मैं गैर वातानुकूलित डिब्बे में यात्रा कर रहा था। गाड़ी जहाँ रुकी वहाँ पर ग्रामीण क्षेत्र के कूड़े तथा सड़े हुए पानी की दुर्गन्ध असहनीय थी। अपना चित्त कूड़े के ढ़ेर तथा सड़े हुए पानी से हटाने के लिए मैंने अनिच्छा पूर्वक कलम और कागज़ उठाया और लिखने लगा।

अचानक मैंने देखा कि मैं उर्दू कविता लिख रहा था। अत्यन्त अकाव्यात्मक वातावरण में इस प्रकार से कविता के बहाव के कारण मैं अवाक रह गया मैं जानता था कि यह कविता मैं नहीं लिख रहा हूँ। मेरे अन्दर से कुछ बह रहा था और कलम के माध्यम से कागज़ पर लिखा जा रहा था। कविता लिखते हुए मैं वातावरण को बिल्कुल भूल गया था और दुर्गन्ध भी मुझे परेशान न कर रही थी। काव्य का अभीभूत कर देने वाला प्रभाव इतना गहन था कि मैं ये भी भूल गया कि मैं रेलगाड़ी में था। मैं आपसे सत्य बता रहा हूँ कि मैं नहीं लिख रहा था, कोई मुझे वास्तव में विवश कर रहा था या ये कहें कि मुझे लिखवा रहा था और मैं उसे लिखता चला जा रहा था। ये मेरी पहली कविता थी, ''नाखुदा को डूबते बीच मझधार ढूंढते हैं'' (डूबता हुआ व्यक्ति मझधार में ही केवट को खोजता है)। कविता करने का मेरा ये प्रथम प्रयत्न अत्यन्त प्रिय भजन बना। कलकत्ता जाकर मैं श्रीमाताजी और अन्य सभी सहजयोगियों से मिला परन्तु अपनी कविता किसी को दिखाने की हिम्मत न की कि कहीं वो मुझ पर हँसे नहीं। एक दिन आत्म–साक्षात्कार के एक कार्यक्रम में मैं डॉक्टर तलवार के समीप बैठा हुआ था। परिवार में एक विवाह के कारण वे केवल मेरे सम्बन्धी ही न थे वे दिल्ली के लीडर भी थे। जब उर्दू कविता का विषय चलाया तो वे कुछ शेर सुनाने लगे जो कि अत्यन्त सांसारिक थे। तब मैंने अपनी जेब से वह कागज़ निकालने की हिम्मत की जिस पर वह कविता लिखी थी और कागज़ से कविता पढ़नी आरम्भ की। उन्हें जब पता लगा कि यह कविता मैंने लिखी है तो उन्होंने

वह कागज़ मेरे हाथ से छीन लिया और सीधे श्रीमाताजी को दे दिया। कविता को पढ़कर श्रीमाताजी ने पूछा कि क्या यह कविता मैंने लिखी है? अत्यन्त विनम्रता पूर्वक मैंने उत्तर दिया ''हाँ''। उनके अगले वाक्य ने मुझे आश्चर्यचकित कर दिया। उन्होंने कहा कि न केवल एक महान कवि ने जन्म लिया है बल्कि उर्दू भाषा, जिसका कवि लोग दु:ख दर्द, प्रेमी के कष्ट या प्रेमिका की पत्थरदिली की अभिव्यक्ति के लिए दुरुपयोग कर रहे थे, अब मुक्त हो गई है।

मैंने नि:सन्देह श्रीमाताजी पर विश्वास नहीं किया क्योंकि मैं लोगों की प्रशंसा करने के श्रीमाताजी के स्वभाव को जानता था और कवि के रूप में अपनी योग्यता को भी पहचानता था। जीवन-पर्यन्त साहित्य मेरा सबसे दुर्बल विषय रहा था और उर्दू नज़्म लिखने के विषय में तो मैं सोच भी न सकता था। ऐसा करना वास्तविकता से परे की बात थी क्योंकि मैं उर्दू पढ़ना-लिखना भी न जानता था और उर्दू नज़्म लिखने के लिए उर्दू भाषा के गहन ज्ञान की आवश्यकता होती है तथा इस गहनता का मुझमें पूर्ण अभाव था। अत: मैंने श्रीमाताजी की प्रशंसा को अनदेखा कर दिया और अपनी लिखी हुई कविता को मात्र एक लहर माना जो संभवत: फिर कभी न उठे। जो भी हो इस कविता ने सहज विश्व में मुझे तुरन्त मान्यता प्रदान की और लोगों से मेरा परिचय महान उर्दू कवि के रूप में कराया जाने लगा। महान उर्दू कवि कहलाने में मुझे हमेशा संकोच होता क्योंकि मुझे भय था कि कहीं मेरी अज्ञानता का पर्दाफ़ाश न हो जाए। अत: और अधिक कविता लिखने का विचार त्याग कर मैंने श्रीमाताजी के जनकार्यक्रम में भाग लिया जिसमें अनगिनत लोग उपस्थित थे।

श्रीमाताजी जब कलकत्ता से जाने लगे तो मैं नागपुर लौटने के लिए उनकी आज्ञा लेने गया। परन्तु उन्होंने अनुरोध किया कि मैं उनके साथ बम्बई चलूं। मैं हैरान था कि उन्होंने ऐसा क्यों कहा क्योंकि वे इस बात से भली भांति अवगत थीं कि जनवरी, फरवरी और मार्च के महीने शासपत्रित लेखाकारों के लिए अत्यन्त व्यस्तता के होते हैं! जैसा पहले वर्णन किया जा चुका है, मैंने निर्णय किया था कि मैं उनकी बात को कभी टालूंगा नहीं। अत: मैं उनके साथ बम्बई गया और दो दिनों के पश्चात् नागपुर लौटा।

नागपुर लौटने के एक दिन पश्चात् प्रथम फरवरी के दिन श्रीमाताजी ने टेलिफोन करके मुझे कहा कि मैं उनके साथ हांग-कांग चलूं। आरम्भ मैं तो मुझे

प्रसन्नता हुई परन्तु जब उन्होंने मुझसे कहा कि वहाँ चलकर मैं अपने लिए कुछ विपणन करूं तो मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़ सा हो गया। एक महिला जो मुझे माया से दूर जाने के लिए शिक्षा देती थीं वही मुझे हांग-कांग जाकर खरीददारी करने के लिए कह रही थीं! अत: धैर्यहीनता पूर्वक मैंने उनसे पूछा कि एक ओर तो वे मुझसे भौतिकता मुक्त होने के लिए कहती हैं और दूसरी ओर वही मुझे उसी माया में घसीट रही हैं! उनका तुरन्त उत्तर था कि जब तक मेरे पास भौतिकता की वस्तुएं ही न होंगी मुझमें विरक्ति कैसे जागृत होगी। उनके अनुसार विरक्ति सांसारिक वस्तुओं का त्याग नहीं है परन्तु इनमें रहते हुए इनसे विरक्त रहना है। मेरे लिए यह एक अन्य पाठ था। अत: कार्यक्रमानुसार हम हांग-कांग गए। मेरे एक मित्र अविनाश सीरिया भी साथ गए। उन्हें मर्यादाओं का बिल्कुल भी ध्यान न था परन्तु श्रीमाताजी ने उन्हें सहन किया।

हांग-कांग में श्रीमाताजी ने चार या पाँच जनसभाओं को संबोधित किया। उनके प्रवचन से पूर्व आस्ट्रेलिया के डा.वारेन रीव्ज़ ने विषय का परिचय दिया। वहाँ पर उन्होंने मुझे एक टेलिविजन, एक वी.सी.आर., टेपरिकार्डर, कैमरे, कलाई घड़ी आदि खरीदवाईं। ऐसी ही वस्तुएं उन्होंने मेरे भाई बालासाहिब और मेरे भतीजे हरीश के लिए भी खरीदवाईं। परिणामस्वरूप मुझे हर चीज़ के तीन नग ले जाने पड़े। एयर-इंडिया में नौकरी के दिनों से ही मैं जानता था कि इन पर बहुत भारी कस्टम-कर लगता है। अत: इन्हें बाँधते हुए मैं योजना बना रहा था कि कौन-कौन सी वस्तुओं की घोषणा करनी है और कौन सी वस्तुएं अघोषित निकालनी है। अत: मैंने छोटे टेपरिकार्डर तथा अन्य छोटी चीज़ें अपने सूटकेस में कपड़ों के नीचे रख लीं।

हांग-कंाग में हमारा रुकना अत्यन्त उत्साहवर्धक था। वहाँ हर शाम को श्रीमाताजी हमें रात्रिभोज के लिए किसी चीनी रेस्तरां में ले जाया करती थीं। खाने का आर्डर देने में वो अत्यन्त कुशल थी इसलिए वे खाने का न केवल उचित मात्रा में आर्डर देतीं बल्कि बहुत अच्छे तथा स्वादिष्ट व्यंजन मंगातीं।

हांग-कांग वायुपत्तन पर हमारा सामान अधिक न था और जैसे कहा जाता है कि आदतें कठिनता से समाप्त होती हैं मैं वायुपत्तन प्रबंधक से सौदेबाजी क़रने लगा। एयरलाइन्ज़ का व्यक्ति होने के नाते मैं जानता था कि यदि आप व्यर्थ का शोर-शराबा करें तो वायुपत्तन प्रबन्धक आपके फालतू के सामान को सामान्य

सामान मैं भेज देता है, परन्तु श्रीमाताजी ने इस बात पर बल दिया कि वे फालतू के सामान का किराया देंगी। उनका ये विचार मुझे अच्छा न लगा क्योंकि मैं उनके लिए पैसे बचाना चाहता था। बाद में मुझे महसूस हुआ कि ईमानदारी उनका गुण था, नीति नहीं, क्योंकि नीति तो परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित हो जाती है।

बम्बई तक की यात्रा में मैं अत्यन्त तनाव में था। इसका कारण विशेष रूप से ये था कि हर क्षण मैं यही योजना बना रहा था कि किस प्रकार बिजली की अधिकतर वस्तुएं स्मगल करके बाहर ले जाऊं। जब हम बम्बई उतरे तो सभी कस्टम अधिकारियों ने आकर श्रीमाताजी के चरण स्पर्श किए और हाथ जोड़कर उनका स्वागत किया। मैंने चैन की सांस ली क्योंकि मुझे विश्वास हो गया था कि कोई भी अब हमारे सामान की जाँच नहीं करेगा। परन्तु श्रीमाताजी ने उन सभी लोगों के स्वास्थ्य और समस्याओं के विषय में पूछताछ करने के पश्चात् कस्टम अधिकारियों को बताया कि उनका भाई अर्थात मैं तथा अविनाश कुछ चीजें लाए हैं जिनपर कस्टम–कर लगेगा। उन्होंने उनको हिदायत दी कि उचित कर का हिसाब लगाया जाए ताकि वो इसे अदा कर सकें। बिना कर दिये चीजों को बाहर निकालने की मेरी योजना धरी रह गई और मुझे सारी वस्तुओं की घोषणा कस्टम अधिकारियों के सम्मुख करनी पड़ी। हम जब कस्टम–कर आदि दे रहे थे तो वे बाहर हमारी प्रतीक्षा करते हुए वहाँ उन्हें लेने आए सहजयोगियों को सम्बोधित कर रही थीं। उन्हें उस धन की बिल्कुल भी चिन्ता न थी जो उन्हें कस्टम अधिकारियों को देना पड़ा। कस्टम अधिकारी भी उनके स्वभाव से भली–भांति परिचित थे। अत: उन्होंने उचित कर लगाया। कस्टम अधिकारी से कर कम करवाने के लिए उसे रिश्वत देना आम बात है। परन्तु श्रीमाताजी के ईमानदार स्वभाव के कारण कस्टम अधिकारी भी कर लगाने में बहुत ईमानदार थे। इस प्रकार से वे अपनी ईमानदारी मुझ समेत अपने चहुँ और विद्यमान लोगों में प्रसारित कर रही थीं।

दो दिनों के पश्चात् में अत्यन्त चकाचोंध स्थिति में नागपुर लौट आया। मैं हैरान था कि श्रीमाताजी से इतने आशीर्वाद पाने के लिए मैंने क्या किया है?

उन गर्मियों में मैं अपने परिवार के साथ योगी–महाजन का अतिथि बनकर धर्मशाला गया और उसके पश्चात् अपने मित्रों तथा परिवारों के साथ हम कुल्लू–

मनाली गए। मैं क्योंकि शराब न पीता था अत: मैंने अपने मित्रों के बच्चों तथा उनकी पत्नियों के साथ समूह बना लिया और इस प्रकार से अपने शराबी मित्रों का बहिष्कार किया। उन गर्मियों में मनाली में भयंकर ठण्ड थी जिसका सामना करने के लिए हमारे पास पर्याप्त वस्त्र न थे। अत: ग्रीष्म ऋतु होने के बावजूद भी हम ऊनी वस्त्र खरीदने में लगे हुए थे।

मेरे बड़े भाई बाला साहिब बम्बई उच्च न्यायालय के न्यायाधीश बन गए थे तथा वो बम्बई उच्च न्यायालय की औरंगाबाद शाखा के वर्तमान न्यायाधीश (Sitting Judge) भी थे। मुझे याद है कि अपने पेशे के कार्य से मैं कार द्वारा गोआ गया था और वापसी पर अपने भाई तथा श्रीमाताजी से मिलने के लिए, जो कि उन दिनों उनके पास ठहरी हुईं थीं, मैं औरंगाबाद रुका था। मेरा एक नवविवाहित भतीजा भी वहाँ आया हुआ था तथा बाला साहिब ने हमारे लिए विख्यात अजंता एलोरा गुफाएं तथा अन्य रमणीक स्थल देखने का प्रबन्ध किया था। एक दिन हम चारों, श्रीमाताजी, नवविवाहित युगल और मैं, गुफाऐं देखने के लिए गए। आशानुरूप नवविवाहित जोड़ा एक दूसरे में खो गया। इस प्रकार मुझे वो बहुत से प्रश्न पूछने का अवसर प्राप्त हो गया जो हांग-कांग से ही मेरे मस्तिष्क में घुसे हुए थे। जैसे 'आत्मा क्या है' 'मन क्या है', 'मानव का सृजन करने में परमात्मा का क्या लक्ष्य था' 'ब्रह्माण्ड क्या है', 'सृष्टि क्या है', 'परमात्मा कहाँ रहते हैं?' आदि-आदि तथा कुछ अन्य मूर्खता पूर्ण प्रश्न जो मुझे परेशान कर रहे थे। अवसर प्राप्त होते ही मैंने श्रीमाताजी पर एक के बाद एक प्रश्नों की झड़ी लगा दी। उन्होंने अत्यन्त धैयपूर्वक मेरे प्रश्नों के उत्तर दिए। मेरे इस प्रश्न के उत्तर में कि ब्रह्माण्ड का सृजन किस प्रकार किया गया उन्होंने कहा कि इसका वर्णन करने के लिए उन्हें एक नक्शा खींचना पड़ेगा। अत: गुफाएं देखना छोड़कर हम विश्राम-भवन लौट आए, जो हमारे लिए आरक्षित था, और उन्होंने वर्णन करना आरम्भ किया।

अध्याय–९
१९८६
ब्रह्माण्ड का सृजन

उन्होंने कहा कि इससे पूर्व कि वे ब्रह्माण्ड के सृजन के विषय में बताएं कुछ तथ्यों पर विश्वास करना आवश्यक होगा। उन्होंने कहा कि मुझे विश्वास करना होगा कि परमात्मा एक हैं, वो सर्वव्यापी हैं, सर्वशक्तिमान हैं, सर्वज्ञ हैं (Omnipotent, Omnipresent, Omniscient) इस बात के लिए मैं तुरन्त सहमत हो गया क्योंकि मेरा दृढ़ विश्वास था कि परमात्मा तो एक ही हो सकते हैं। तब उन्होंने कहा कि यदि हम बाइबल के 'उत्पत्तिग्रंथ' अध्याय को पढ़ें तो इसमें लिखा है कि आत्मा सर्वत्र घूम रही थी। इस आत्मा को सदाशिव या सर्वव्याप्त सृष्टा कहा जा सकता है या इसे सर्वव्याप्त सुप्त सदाशिव या सृष्टा की चैतन्य–लहरियाँ भी कहा जा सकता है। सुप्त सदाशिव की चैतन्य लहरियों की शक्ति ब्रह्माण्ड के चहुँ ओर घड़ी की सुई की दिशा में (सीधे चक्कर में) मंडरा रही थी। सदाशिव के अन्दर स्थित इच्छा शक्ति इस परिक्रमा से थक चुकी थी और इसने सदाशिव से मुक्त होने की इच्छा व्यक्त की। अत: सदाशिव ने अपनी शक्ति की इस प्रार्थना को इस शर्त पर स्वीकार किया कि वह अपनी परिक्रमा में बनी रहेगी और सदाशिव की इच्छा के बिना उनके पास लौटकर नहीं आएगी। इच्छा शक्ति इस बात से सहमत हो गई और सदाशिव ने उन्हें सीधे चक्कर में परिक्रमा में स्थापित कर दिया। लाखों वर्षों उपरान्त शक्ति अपने अकेलेपन के कारण परेशान हो गई और सदाशिव के पास वापिस लौटना चाहा। उन्होंने उस शर्त को भी अनदेखा किया कि वे सदाशिव के पास केवल तभी लौट सकती है जब सदाशिव चाहें, अपनी स्वतन्त्र इच्छा से नहीं। इच्छा शक्ति जब शिव के समीप आने लगी तो उन्होंने उसे रोकने के लिए अपना हाथ उठाया जो चूड़ी के आकार में बनी परिक्रमा से जा टकराया। यह परिक्रमा तब तेज आवाज़ के साथ तीन हिस्सों में टूट गईं और फिर + का आकार धारण करके परस्पर एक हो गई।

नाद का यह सृजन पहली बार हुआ था या जैसा श्रीमाताजी ने बताया यह स्वर (Musical Note) का प्रथम सृजन था।

जब श्रीमाताजी बता रही थीं तो मैं पूरे ध्यान से सुन रहा था। उन्होंने बताया कि ओंकार के ऊपर लगने वाला बिन्दु वास्तव में स्वयं सदाशिव हैं। श्रीमाताजी कहती गईं कि वास्तव में ये तीनों खण्डित भाग तीन शक्तियाँ हैं– महाकाली, महासरस्वती और महालक्ष्मी जिन्हें त्रिगुणात्मिका के नाम से भी जाना जाता है। ये तीनों शक्तियाँ ब्रह्माण्ड के हित में कुछ करना चाहती थीं। अत: इन्होंने सदाशिव से प्रार्थना की कि इन्हें अभिव्यक्त होने की आज्ञा दें। परिणामस्वरूप भगवान शिव, भगवान विष्णु और भगवान ब्रह्मदेव तथा देवी सरस्वती, देवी लक्ष्मी और देवी पार्वती की इन तीनों शक्तियों के माध्यम से अभिव्यक्ति हुई। भगवान शिव ने पार्वती से, भगवान विष्णु ने लक्ष्मी से तथा भगवान ब्रह्मा ने सरस्वती से विवाह किया। इन छ: देवी–देवताओं के सृजन के बाद भी इनके पास कोई कार्य न था जिससे वो किसी को लाभ पहुँचा सकते। अत: आदिशक्ति ने मानव का सृजन करने का निर्णय किया। श्रीमाताजी बताती चली गईं कि इन सभी शक्तियों के साथ आदिशक्ति गोल–गोल घूमती रहीं और ये शक्तियाँ एक रूप हो गईं। बहुत ज़ोर की आवाज़ के साथ ये टूटीं (इससे नाद, Big Bang, के सिद्धान्त का वर्णन होता है) और जिस टुकड़े में महालक्ष्मी शक्ति थीं जिसे अब पृथ्वी कहा जाता है, एक ओर गिरा और तेजी से घूमता रहा। यही पृथ्वी का धुरी पर घूमना है। सूर्य और चाँद की तरह के अनेक टुकड़े भी महासरस्वती और महाकाली शक्तियों के साथ गिरे। सूर्य नामक टुकड़ा अत्यन्त गर्म था। परन्तु दूरी के कारण यह सहन करने योग्य हो गया। चाँद नामक अन्य टुकड़ा अत्यन्त ठण्डा था। चाँद तथा तारे पृथ्वी से देखे जा सकते थे यद्यपि वे ब्रह्माण्ड के ही भाग थे। पृथ्वी सूर्य से चाँद की तरफ चली। चाँद की ठण्डक ने पृथ्वी को शीतल किया और इस प्रकार बर्फ जमी। घूमते हुए पृथ्वी का जो भाग सूर्य की ओर आया वहाँ से बर्फ पिघली और जल का सृजन हुआ। पृथ्वी का मध्य भाग सूर्य के समीप होने के कारण गरम हो गया और दोनों सिरे (Poles) बर्फ से ढक गए। सदाशिव ने आदम और हौवा (Adam and Eve) का सृजन अपने रूप में किया। परमात्मा के अधूरे रूप में होने कारण उन्होंने नव विश्व प्रणाली में धर्म का ज्ञान नहीं डाला। आदम और हौवा के पास स्वतन्त्र इच्छा शक्ति न होने के कारण वे श्रेष्ठ पशुओं सम थे। आदिशक्ति कुण्डलिनी या सर्पिणी के रूप में उनके पास गईं और उनसे ज्ञान का वर्जित फल खाने की

प्रार्थना की। मानव की बहुत सी जातियाँ नष्ट हो गईं क्योंकि उनके अन्दर धर्म का ज्ञान स्थापित नहीं किया गया था। परिणामस्वरूप प्रसिद्ध प्रलय का सृजन हुआ और सभी जीवों की एक-एक जाति को छोड़कर सभी नष्ट कर दिए गए। एक बार इसका अर्थ फिर यही हुआ कि देवी-देवताओं के पास कोई कार्य न था क्योंकि जीव की सभी जातियों के पास ज्ञान का पूर्ण अभाव था। आदि शक्ति ने मानव का सृजन करने के स्थान पर उसे विकसित करना चाहा। देवी देवता कार्य में लग गए। उन्होंने मानव में भिन्न चक्र स्थापित किए जिनके माध्यम से पूर्व पशुवत मानव का विकास सम्भव है।

श्रीमाताजी बताती चली गईं कि कार्बन के एक अणु से लेकर आज के मानव की स्थिति तक पहुँचने के लिए लाखों वर्ष लगे होंगे। वास्तव में उन्होंने स्पुतनिक प्रक्षेपास्त्र (Sputnik Missile) विकास प्रक्रिया का स्पष्ट वर्णन किया। एक कैप्सूल के अन्दर कई अन्य कैप्सूल रखे होते हैं। शरीर के एक कैप्सूल का उन्होंने नक्शा खींचा। इसके अन्दर भावनाएं घूम रही थीं और एक अन्य में बुद्धि। पहला कैप्सूल जब फटता है तो दो अन्य कैप्सूलों को तीव्र गति से अंतरिक्ष की ओर धकेलता है। तत्पश्चात् दूसरा कैप्सूल फटता है और तीसरे कैप्सूल को और अधिक गति से एक ऐसे क्षेत्र में धकेल देता है जहाँ गुरुत्वाकर्षण नहीं होता। अन्तत: विकास की इस प्रक्रिया के माध्यम से मानव का सृजन हुआ और उसके साथ धर्म का ज्ञान भी विकसित हुआ। श्रीमाताजी के अनुसार धर्म का अर्थ एक मर्यादा में रहते हुए कार्य करना है। पशुओं में भी धर्म है परन्तु वे इसके विषय में नहीं जानते। बात को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने वृक्ष का उदाहरण दिया। उन्होंने कहा कि पेड़ कभी नीचे की ओर नहीं बढ़ सकता और न ही कभी एक सीमा से ऊँचा जा सकता है क्योंकि उसका धर्म ऐसा करने की आज्ञा नहीं देता। परन्तु वृक्ष को इस बात का ज्ञान नहीं है। इसी प्रकार मानव को भी धर्म और उसका ज्ञान प्रदान किया गया और इसकी अभिव्यक्ति आरम्भ में चेतना, अवचेतना, और पराचेतना द्वारा हुई तथा बाद में विवेक तथा आध्यात्मिक ज्योति द्वारा। धर्म के सर्वश्रेष्ठ ज्ञान को जानने के लिए कुण्डलिनी, जो कि आदिशक्ति का प्रतिबिम्ब है, को सुप्तावस्था से जगाया गया। यह कुण्डलिनी जब जागृत होती है तो सर्वव्यापी चैतन्य लहरियों (परम-चैतन्य) से सीधा सम्बन्ध स्थापित करती है। प्रथमावस्था में व्यक्ति निर्विचार हो जाता है

फिर भी आस–पास की सभी चीजों का ज्ञान उसे होता है। प्रेम की दिव्य शक्ति होने के कारण इस शक्ति को यदि निरन्तर बहने दिया जाए तो यह मानवीय रूप में असम्भव लगने वाले कार्य को कर सकती है।

त्रिदेवों, ब्रह्माण्ड और विश्व के, इतने थोड़े समय, में रेखाचित्रों समेत इतने विस्तृत स्पष्टीकरण ने मुझे मौन कर दिया। मेरी समझ में नहीं आया कि क्या कहूँ। पहली बात जो मेरे मस्तिष्क में आईं वो उनसे पूछना था कि यह सब बातें उन्होंने पहले क्यों नहीं बताईं? उन्होंने उत्तर दिया कि तब मैं यह सब जानने के लिए परिपक्व न था। उन्होंने यह भी कहा कि इससे आगे भी बहुत सी चीजें हैं जो मैं सहजयोग में गहन जाकर सीखूंगा। उन्होंने ये भी कहा कि प्रश्न पूछना केवल व्यक्ति की मानसिक योग्यता को दर्शाता है और उनके उत्तर व्यक्ति को मानसिक सन्तुष्टि प्रदान करते हैं। परन्तु वो जो कुछ भी बता रही थीं वो सब कुछ अनुभव करने की चीज़ है समझने की नहीं। अत: उन्होंने कहा कि मुझे अनुभव करने पर जोर देना चाहिए चीजों को समझने पर नहीं।

मैं पूर्णत: अवाक था और एक शब्द भी न बोल पाया। श्रीमाताजी के पास ज्ञान का अथाह भण्डार है जिसे वे केवल अवसर आने पर ही प्रकट करती हैं! मेरे लिए तो वे बहुत अच्छी और स्नेहमयी बहन हैं। उनकी पहचान में मेरे मन में उनका आध्यात्मिक झुकाव भी सम्मिलित था क्योंकि वे अत्यन्त शान्त एवं क्षमाशील व्यक्ति हैं। परन्तु सत्य बात तो यह है कि मैंने कभी नहीं माना कि उनमें इतना अथाह विवेक एवं ज्ञान हो सकता है। इसलिए मेरा आश्चर्य चकित होना स्वाभाविक था। तब तक इस बात को स्वीकार करना मेरे मस्तिष्क से परे की बात थी कि उनके पास इतना ज्ञान हो और अब तक उन्होंने इसके विषय में मुझे न बताया हो। यद्यपि अब तक मैं यही सोचता था कि मैं उनके बहुत समीप हूँ। सम्भवत: उनके सामीप्य के कारण मेरी योग्यता अब बढ़ गई थी। मैंने भी इस बात को महसूस किया कि जो परिवर्तन मुझमें घटित हो रहा था वह अस्थायी स्वभाव का न था। इस बात ने मुझे विश्वस्त किया कि जो कविता मैंने लिखी थी यह कोई अकस्मात घटना या मेरी सनक न होकर उनकी प्रेरणा थी और उन्होंने मुझे माध्यम के रूप में उपयोग किया था।

यह बात इस प्रकार थी। अचानक मैंने महसूस किया कि चाहे जिस नाम से उन्हें पुकारें वे परमेश्वरी हैं। तब तक मैं उन्हें उनके पारिवारिक नाम से पुकारा

करता था परन्तु तब मैंने उनसे ये पूछने का साहस किया कि क्या मैं भी उन्हें अन्य लोगों की तरह से श्रीमाताजी बुला सकता हूँ? इसके उत्तर में उन्होंने कहा कि किसी भी नाम से बुलाए जाने पर उनपर कोई अन्तर नहीं पड़ता। परन्तु जब मैंने उन्हें पहचान ही लिया है तो मैं उन्हें श्रीमाताजी कह सकता हूँ। तत्पश्चात् मैंने उनसे प्रश्न किया कि उन्होंने साल्वे परिवार में ही क्यों जन्म लिया? इसके उत्तर में उन्होंने कहा कि मुझे इस बात का ज्ञान नहीं है कि हमारे परिवार में कितने गुण एवं मानवीय विशेषताएं हैं। हमारे माता–पिता की पहली प्राथमिकता बच्चों का उचित पालन–पोषण था। वे अत्यन्त नि:स्वार्थ थे। आत्म–सम्मान एवं गौरव का उनमें गहन विवेक था तथा आध्यात्मिकता और सांसारिक ज्ञान का उनमें भण्डार था। वे अत्यन्त पावन एवं चरित्रवान मानव थे। हमारा परिवार शाही वंश से सम्बन्धित था, वे चित्तौड़गढ़ के योद्धा थे जहाँ पद्मनी ने बत्तीस हजार महिलाओं के साथ अपने पावित्र्य की मुसलमान राजा आदिल शाह खिलजी से रक्षा करने के लिए जौहर किया। अत: वे अत्यन्त राष्ट्रवादी एवं देशभक्त थे और ये संस्कृति की जड़ें उनमें बहुत गहन थी। मेरे माता और पिता दोनों सहज जीवन और उच्च विचारों के प्रतीक थे, विशेष रूप से मेरे पिताजी जो कि कला और कलाकारों से बहुत प्रेम करते थे। उनकी ईमानदारी तथा अन्याय के प्रति असहनशीलता उनके महान गुण थे। मानसिक तथा चारित्रिक रूप से उन्हें कभी भ्रमित नहीं किया जा सकता था क्योंकि इन मूल्यों के साथ वे कभी समझौता नहीं करते थे। वे अत्यन्त कुशाग्र एवं विनम्र थे। किसी भी कार्य को करते हुए वे अत्यन्त सूक्ष्म थे तथा इसी गुण की आशा वे अपने बच्चों से भी करते थे। सभी लोगों से वे अपने बच्चों की तरह से प्रेम करते थे तथा इसी प्रेम तथा स्नेहपूर्वक सभी से मिलते थे। संगीत तथा खेलकूद उन्हें पसन्द था। किसी प्रकार के नशे आदि की बुरी आदतें उन्हें न थी। सभी धर्मों का वे गहन सम्मान करते थे क्योंकि सभी धर्मों का उन्हें गहन ज्ञान था। अपने बच्चों को ईसाई धर्म समेत कोई धर्म विशेष स्वीकार करने के लिए उन्होंने कभी विवश नहीं किया। दोनों बहुत अच्छे पढ़े लिखे थे और उनकी आदतें भी विद्वानों सी थी। हमारे पिताजी महान भाषाविद् थे और उनकी स्मरण शक्ति बहुत तीव्र थी।

इस प्रकार वे पूर्ण व्यक्ति थे जिनका चरित्र बेदाग़ था। श्रीमाताजी ने इन्हीं पावन एवं पूर्ण माता–पिता के परिवार में जन्म लेने का निर्णय किया।

कार से नागपुर लौटते हुए मैं अत्यन्त आनन्द की स्थिति में था। मैंने निर्णय किया कि नागपुर पहुँचकर मैं सहजयोग प्रसार के लिए एक केन्द्र आरम्भ करूंगा। इच्छानुरूप वर्ष १९८६ के जून–जुलाई महीनों में मैंने अपने फ्लैट में एक छोटा सा ध्यानकेन्द्र आरम्भ किया। रविवार के दिन केन्द्र में नियमित रूप से उपस्थित होने वाले केवल हम दो ही व्यक्ति थे, एक मैं और एक चन्दा देशपांडे।

शनै:शनै: मेरा सामाजिक जीवन भी परिवर्तित हो रहा था। मेरा समाजीकरण बहुत कम हो गया था और मद्यपान करने वाले मित्रों में मेरी प्रसिद्धि निम्नतम स्तर पर थी। जब भी मैं अपने मित्रों से मिलता तो सहज की बात करता। परिणामस्वरूप वे मेरी संगति से बचने लगे। शीघ्र ही मैंने महसूस किया कि सहजयोग किसी पर थोपा नहीं जा सकता, इसका स्वीकार किया जाना आवश्यक है। केवल जिज्ञासुओं को ही सहजयोग बताया जाना चाहिए।

इन्हीं दिनों मैं धनवते समूह के अपने अत्यन्त धनी तथा सुप्रसिद्ध मुवक्किलों का आयकर का जटिल मामला देख रहा था। हर समय मुझे भविष्य में लिए जाने वाले कदम की योजना बनानी होती थी जिसका अर्थ था कि मैं भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं का पूर्वावलोकन करूं। परन्तु श्रीमाताजी ने मुझे बताया था कि भूतकाल और भविष्यकाल का कोई महत्व नहीं है तथा मुझे वर्तमान में रहना सीखना होगा। अत: मैं असमंजस में था। भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं का अंदाजा लगाने के लिए भविष्य में झाँकने से मैं किस प्रकार बच सकता! मैंने लन्दन में श्रीमाताजी को फोन किया तो उन्होंने मुझे कहा कि जब भी मुझे ऐसा लगे कि मैं भविष्य में जा रहा हूँ तो मैं उनसे ये कार्य करने की प्रार्थना करूं और स्वयं घटनाओं का साक्षी बन जाऊं। उसके पश्चात् बहुत से अवसरों पर जब–जब भी मेरे मुवक्किलों ने मुझसे भविष्य के विषय में पूछा तो मैं आँखें बन्द करके श्रीमाताजी से प्रार्थना करता और वे मेरा पथ प्रदर्शन करतीं।

वर्ष १९८६ का गणपति पुले सेमिनार का आयोजन भी दिसम्बर माह में गणपति पुले में किया गया। इससे पूर्व महाराष्ट्र यात्रा हुई जिसमें श्रीमाताजी विदेशी सहजयोगियों को गांव–गांव ले गईं और उनके साथ अत्यन्त कठोर स्थितियों में स्वयं भी रहीं। गणपति पुले जाने के समय तक ऐसा लगा मानो मेरी कविता खिल उठी हो। मैंने आठ–दस भजन लिख लिए थे। इनमें से कुछ उर्दू में

थे, कुछ हिन्दी में और कुछ मराठी में। गणपति पुले सेमिनार के प्रबन्ध में भी चुस्ती से भाग लेने का मैंने निर्णय किया था। आरम्भ में मुझे पूजा का कोई ज्ञान न था। मैं सोचता था कि यह भी कोई अन्य कर्मकाण्ड है। परन्तु मुझे आश्चर्य हुआ कि जब मैंने पूजा में भाग लिया तो मुझे लगा मेरी कुण्डलिनी उठकर मेरे विचारों को शुद्ध कर रही है। इसने मुझे निर्विचार चेतना प्रदान की। हर पूजा के बाद मैंने महसूस किया कि मैं पूर्ण सत्य के ज्ञान की गहनता में उतर रहा हूँ क्योंकि चैतन्य लहरियों की मेरी संवेदना बढ़ रही है। मैंने सहजयोग के लीडर से अनुरोध किया कि वे कार्यकर्ताओं की एक गोष्ठी बुलाएं, मैं उन्हें सम्बोधित करना चाहता हूँ। बम्बई में एक गोष्ठी का आयोजन किया गया जिसे मैंने सम्बोधित किया। मेरी सलाह अनुसार भिन्न समितियाँ बनाई गईं जैसे–स्वागत समिति, कार्यक्रम समिति, भोजन समिति, मंच समिति आदि। हर समिति का अपना एक संयोजक था और गणपतिपुले गोष्ठी आरम्भ होने से पूर्व सभी संयोजकों को बुलाकर मैं उन्हें उनकी भूमिका और कर्तव्य समझाता। परन्तु वास्तव में जो घटित हुआ वह मेरे आदेशों के बिल्कुल विपरीत था। परिवहन समिति का एक सदस्य भोजन समिति के मामलों में हस्तक्षेप कर रहा था। स्वागत समिति के एक सदस्य को मंच प्रबन्धन समिति के साथ देखा गया। कहने से अभिप्राय ये है कि हर चीज़ अव्यवस्थित हो गई। इस पर मुझे बहुत क्रोध आया और श्रीमाताजी के कमरे में प्रवेश करने के लिए आवश्यक मर्यादाओं की अवहेलना करते हुए क्रोध से भरे हुए मैंने उनके कमरे में प्रवेश किया और उन्हें बताया कि सभी सहजयोगी बेकार हैं और इन्हें कभी आयोजित नहीं किया जा सकता, क्योंकि मैंने स्वयं को अत्यन्त अपमानित महसूस किया था। उत्तर में उन्होंने कहा कि सहजयोगी आसमान से नहीं गिरेंगे तथा हमें इन्हीं अव्यवस्थित लोगों के साथ ही कार्य करना होगा। उन्होंने कहा कि उनके पास कोई वैतनिक कार्यकर्ता नहीं है, उनका कोई निजी सहायक नहीं है, तथा जो भी कुछ लोग कर रहे हैं वो सब श्रद्धा के कारण कर रहे हैं तथा श्रद्धा तो हृदय से बहती है, इसे आयोजित नहीं किया जा सकता। आज भी, यद्यपि लाखों सहजयोगी हैं फिर भी एक भी वेतन लेने वाला कार्यकर्ता नहीं है जो श्रीमाताजी के भिन्न कार्यों को देखता हो। आज भी मैं ये नहीं कह सकता कि सहजयोग एक संस्था है। यह तो मानव की उत्थान एवं मोक्ष प्राप्ति की ओर बढ़ने की प्रक्रिया है। ऐसे सामूहिक ज्योतिर्मय सहजयोगी पूरी मानव जाति को परिवर्तित कर देंगे।

निर्मल संगीत सरिता द्वारा गाए जाने वाले भजनों की लोकप्रियता को देखकर श्रीमाताजी ने मुझसे अनुरोध किया कि मैं इनका एक कैसेट बनाऊं। ये गणपति पुले सेमिनार का अवसर था तथा ग्वीडो तथा वैसी ही सोच वाले अन्य मित्रों ने मुझे विदेश आकर वहाँ की सहज सामूहिकता के सम्मुख गाने का निमंत्रण दिया। इस विचार ने मुझे रोमांचित कर दिया। अत: मैंने जाकर श्रीमाताजी से आज्ञा माँगी। श्रीमाताजी को भी विचार पसंद आया। उन्होंने कहा कि विदेश जाकर वे इसकी पुष्टि करेंगी। मार्च १९८७ में जब श्रीमाताजी प्रतिष्ठान बनवाने में व्यस्त थीं, संगीत समूह के रूप में हम पुणे गए, उनका आशीर्वाद लिया और बम्बई बेचारे श्री मगदूम के यहाँ जम गए और वहाँ 'बन्दगी' नामक भजनों का एक कैसेट बनाया। श्रीमती और श्री.मगदूम न केवल अतिथि सत्कार में उदार थे, उन्होंने यह कैसेट बनाने के लिए धन का प्रबन्ध करने में भी उदारता दिखाई। हम पुन: पुणे गए ताकि कैसेट की एक प्रति श्रीमाताजी को भेंट कर सकें। इस कैसेट में पहला भजन जो हमने गाया था वह था 'ब्रह्म–शोधिले'। भजन को सुनकर केवल श्रीमाताजी की ही आँखों में आँसू नहीं भर आए परन्तु सुनने वाले हर सहजयोगी की आँखों से अश्रुधारा बह रही थी। अन्जान कारणों से मेरी भी आँखों से आँसू बह रहे थे। यह अत्यन्त आनन्द एवं गौरव का क्षण था।

जब हम पुणे से नागपुर लौटने लगे तो श्रीमाताजी ने मुझे बुलाया और कहा कि वो हममें से कुछ को स्पेन में अंडोरा नामक स्थान पर होने वाली गुरु पूजा के लिए बुलाएंगी अत: हम लोगों को पासपोर्ट और वीजा.के लिए प्रार्थना पत्र भेज देने चाहिए। हमारे संगीत समूह में गुरुजी, मजूमदार, शंकर, नासिर, अशोक, छाया, संजय तलवार, नागाराव और नि:संदेह मैं थे। इनमें से अशोक, छाया और नागाराव के पास पासपोर्ट भी न थे और उड़ान से केवल एक दिन पूर्व उनके पासपोर्ट मिले। श्रीमाताजी की कृपा से हमने उन तीनों के लिए स्पेन और इटली का वीज़ा तो प्राप्त कर लिया परन्तु बर्तानिया का वीज़ा न प्राप्त कर सके। अंडोरा में एक सुन्दर झरने के समीप पूजा हुई। वहाँ का दृश्य इतना रमणीय था कि पूजा में भाग लेने वाले सहजयोगी कहने लगे कि हमारा संगीत केवल श्रेष्ठ ही न था बल्कि इसने चैतन्य को भी बढ़ाया। मैं स्वीकार करता हूँ कि उस स्थिति में संगीत की चैतन्य लहरियाँ देने की बात की मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था।

उस वर्ष विवाह हुए थे और जिन लोगों ने गारलेट आश्रम देखा है वे जानते

हैं कि यह झील के किनारे स्थित है और बारात का जुलूस नावों में लाया गया जिसमें नागाराव शहनाई और अशोक तबला बजा रहे थे। राजेश ने रासलीला का प्रबन्ध किया था और दूल्हों सहित सभी लोग आनन्द पूर्वक नाच रहे थे। यह सब अत्यन्त आनन्ददायी था। विवाह हो जाने के पश्चात् हम भ्रमण एवं दृश्यावलोकन के लिए वीनिस गए और वहाँ से जिनेवा और फिर इंग्लैण्ड और उसके उपरान्त भारत लौटे।

१९८७ के पश्चात् मेरे पास लिखने के लिए ऐसा कुछ विशेष नहीं है जिससे सहजयोगियों का कुछ ज्ञान वर्धन हो क्योंकि इसके पश्चात् का मेरा अधिकतर जीवन सहजयोग तथा सहजकार्यों के प्रति समर्पित रहा। वर्ष १९८७ से १९९८ तक निर्मल संगीत सरिता ने सहज विश्व को संगीत के चौदह कैसेट प्रदान किए और हम हर वर्ष विदेश गए। १९९४ तक हम एक माह तक सड़क मार्ग द्वारा यूरोप यात्रा किया करते थे। परन्तु जब श्रीमाताजी कबैला रहने लगीं तो हमारी ये यात्राएं केवल गुरु पूजा के अवसर पर इटली तक ही सीमित हो गईं। इस बीच मैं प्राय: रूस गया और दो बार आस्ट्रेलिया भी गया।

वर्ष १९९१ में मैंने श्रीमाताजी से प्रार्थना की कि नागपुर में संगीत विद्यालय खोलने की आज्ञा दें परन्तु उन्होंने कहा कि अभी इसके लिए समय नहीं आया। इस कार्य के लिए कुछ और प्रतीक्षा की जा सकती है। नागपुर में संगीत विद्यालय खोलने की आशा मैं छोड़ चुका था। तभी अचानक १९९४ में गणपति पुले में उन्होंने मुझे बुलाकर कहा कि मैं घोषणा करूं कि जनवरी १९९५ से नागपुर में संगीत विद्यालय खोला जा रहा है। मैं क्योंकि मंच प्रबन्धन कर रहा था इसलिए मैंने संगीत विद्यालय खोलने की बार–बार घोषणा की ताकि संगीत सीखने वाले लोगों की मेरे पास भीड़ लग जाए। आरम्भ में मुझे केवल तीन विद्यार्थी मिले, आस्ट्रिया से सिया और लिंडन और निक वफ आस्ट्रेलिया से। इस प्रकार मेरे पिताजी के नाम पर नागपुर में संगीत विद्यालय आरम्भ किया गया। ये वर्णन करते हुए मुझे गर्व है कि वर्ष १९९८–९९ के शिक्षा सत्र में हमारे पास ७० से भी अधिक विद्यार्थी थे।

वर्ष १९९६ में श्रीमाताजी ने नागपुर से २० किलोमीटर दूर एक छोटी सी नदी के समीप पचास एकड़ भूमि खरीदी। वह भूमि चैतन्य लहरियों से इतनी परिपूर्ण हैं कि मैंने श्रीमाताजी से इसका कारण पूछा? उन्होंने बताया जब हमारे पिता मछली

पकड़ने के लिए वहाँ जाते थे तो श्रीमाताजी बहुत बार वहाँ जाया करती थीं।

इस भूमि को खरीदने के पीछे एक छोटी सी कहानी है। आरम्भ में श्रीमाताजी चार–पाँच एकड़ जमीन पर संगीत विद्यालय बनाना चाहती थीं। क्योंकि केवल छिंदवाड़ा आने वाली सड़क पर ही खाली भूमि उपलब्ध थी, मैंने पटन साओंगी, संगीत विद्यालय की भूमि से छः कि.मी. दूरी पर स्थित चिकित्सा में कार्यरत डॉक्टर मोहन गोवाँकर से सम्पर्क स्थापित किए। आरम्भ में उन्होंने मुझे मुख्य सड़क पर स्थित कुछ भूमि दिखाई। परन्तु मंहगी होने के कारण यह मुझे पसन्द न आईं। यहाँ पर शोर शराबा भी था और, सर्वोपरि, इस भूमि पर चैतन्य लहरियाँ न थीं। वो मुझे एक के बाद एक भूमि दिखाते रहे और किसी न किसी कारण से मैं इसे अस्वीकार करता रहा। परेशान होकर उन्होंने मुझसे कहा कि मैं कैसी भूमि चाहता हूँ। मैंने उन्हें बताया कि नदी के समीप प्रदूषण रहित भूमि जिसमें अच्छा चैतन्य हो, मैं लेना चाहूँगा। उन्होंने कहा कि उन्हें चैतन्य लहरियों की समझ नहीं है। कोलार नदी के किनारे पर ४४ एकड़ भूमि उपलब्ध है परन्तु इस भूमि पर पहुँचने के लिए कोई सड़क मार्ग नहीं है, घुटने–घुटने पानी में से निकलकर यहाँ जाना पड़ता है। मैंने कहा कि मैं यह भूमि देखना चाहूँगा और एक दिन घुटने–घुटने पानी को पार करके रास्ते की झाड़ियाँ आदि हटाते हुए हम उस भूमि पर पहुँचे। भूमि को देखते ही मुझे लगा कि मैं जन्नत में हूँ। ये केवल शान्तिमय ही न थी प्रदूषण से भी पूर्णतः मुक्त थी। इतना ही नहीं इसकी चैतन्य लहरियाँ बहुत अच्छी थीं तथा ज्यों ही हम खेत में दूर तक गए वहाँ शीतल मन्द सुगन्ध समीर बह रही थी। लगभग बीस मोरों का एक झुण्ड वहाँ मुझे दिखाई दिया और मुझे लगा कि संगीत विद्यालय के लिए यही उपयुक्त भूमि है और यहाँ का परिदृश्य भी अत्यन्त आदर्श है। अगली समस्या भूमि की कीमत तथा उसका विस्तार थी। मुझे लगा कि यह सब बहुत अधिक है। उस वर्ष जब मैं श्रीमाताजी से पुणे में मिला तो हिचकिचाते हुए मैंने इस भूमि और इसकी कीमत के विषय में बातचीत की। मैंने सोचा था कि इस बात के लिए मुझे झाड़ पड़ेगी। जब उन्होंने इस भूमि की स्थिति और इसकी कीमत के विषय में सुना तो कहा कि मैं तुरन्त इसे खरीद लूं। इसमें कुछ कानूनी बाधाएं भी थीं जिन्हें दूर किया जाना भी आवश्यक था। मैंने ये सब कर लिया क्योंकि श्रीमाताजी का चित्त उस भूमि पर था और जून १९९६ में इस भूमि का कैंजा हमें प्राप्त हो गया।

अध्याय–१०
१९९९
श्रीमाताजी–मेरी उद्धारक

इस पुस्तक को पढ़ते हुए आपने महसूस किया होगा कि बहुत बार श्रीमाताजी ने मेरा उद्धार किया। रोलिंग शटर का व्यापार आरम्भ करते हुए जब मैं आर्थिक कठिनाई में था तो उन्होंने आकर आर्थिक सहायता द्वारा मुझे इस संकट से उबारा और अपना मशवरा भी मुझे दिया। हाल में घटित घटना मेरे प्रति उनके प्रेम एवं स्नेह को प्रमाणित करती है। अपना ये अनुभव मैं स्वयं को गौरवान्वित करने या सहानुभूति पाने के लिए नहीं लिख रहा हूँ। मृत्यु का सामना करते हुए ये अनुभव मैं सहजयोगियों के साथ बाँटने के लिए लिख रहा हूँ कि इस संकट से मैंने किस प्रकार मुकाबला किया।

हाल ही में ५ जनवरी १९९९ को अत्यन्त हृष्ट–पुष्ट अवस्था में गणपतिपुले से लौटने के पश्चात् अचानक मैं खाँसने लगा और आम दवाईयों से मुझे कोई लाभ न हुआ। मेरा पारिवारिक चिकित्सक डा.चौबे कलकत्ता गया हुआ था और मुझे भी क्योंकि केवल खाँसी की तकलीफ थी इसलिए मैंने सोचा कि मैं किसी अन्य चिकित्सक की सलाह ले लूं। अत: मैं एक डाक्टर के पास गया जो मेरे रोगों के इतिहास को न जानता था। उसने मुझे नुस्खे में वोवरोन नामक दवाई लिख दी। ११ से लेकर १५ जनवरी तक मैंने ये गोलियाँ ली, परन्तु कोई लाभ न हुआ। मेरी खाँसी बढ़ती गई परन्तु मूत्रस्राव (Urine Secretion) घटता गया। स्पष्ट था कि गलत दवाई के कारण ऐसा हुआ था क्योंकि इससे पहले मुझे गुर्दे की समस्या कभी न हुई थी। १८ जनवरी को मेरा पेशाब बिल्कुल रुक गया और नागपुर के गुर्दा विशेषज्ञ ने निदान किया कि यह गुर्दे का शत–प्रतिशत खराब होना है। तुरन्त मुझे अस्पताल ले जाया गया और श्रीमाताजी से सम्पर्क करने से पूर्व ही मुझे डायलिसिस पर डाल दिया गया। आरम्भ में मुझे पूरे दिन में केवल ३०० मि.ली. पानी तथा पूर्णत: बिना नमक का खाना लेने की आज्ञा दी गई। १८ से २३ जनवरी के बीच मैं पाँच बार डायलिसिस पर था। गुर्दा विशेषज्ञ को क्योंकि मैंने सुयोग्य न पाया था मैं डॉक्टर चौबे से मिला जो तब तक

कलकत्ता से लौट आए थे, ताकि किए जाने वाले इलाज के विषय में निर्णय कर सकूं तथा क्या बम्बई जाकर गुर्दा खराबी के विषय में पता लगवाऊं? इसी दौरान मैंने बम्बई में श्रीमाताजी से बात की और उन्होंने मुझे तुरन्त बम्बई आने के लिए कहा।

२७ जनवरी की प्रात: अपनी पत्नी तथा पुत्र के साथ मैं बम्बई के लिए निकल पड़ा और हम सीधे श्रीमाताजी के पास पहुँचे जिन्होंने मेरा इलाज शुरु कर दिया। आश्चर्य की बात है कि मुझे पेशाब करने की इच्छा हुई और इतने लम्बे समय के पश्चात् मैंने मूत्र त्याग किया। उसी शाम मैंने हिन्दुजा अस्पताल के एक डॉक्टर से समय लिया हुआ था और उसने मुझे सलाह दी कि तुरन्त अस्पताल में भर्ती हो जाऊं। परन्तु श्रीमाताजी की भिन्न योजनाएं थीं।

२८ तारीख को वो मुझे कार में वाशी आश्रम ले गईं और वहाँ पर डॉक्टर रॉय के साथ मेरा इलाज शुरु किया। निरन्तर वे मुझ पर कार्य करती रहीं और मेरे सारे अवयव कार्य करने लगे। मेरी रक्त-शर्करा सामान्य हो गई तथा पोटेशियम और सोडियम स्तर भी सामान्य हो गया। छाती की सूजन के कारण आने वाली खांसी भी समाप्त हो गईं, मेरा रक्तचाप सामान्य हो गया और मुझे अत्यन्त अच्छा लगने लगा। परन्तु मेरा रक्त-यूरिया तथा क्रिएटिनिन (Creatinine) स्तर नीचे न आया।

स्पष्ट था कि ऐसा मेरे डायलिसिस पर रहने के कारण हुआ। ३० तारीख की रात को मेरी रोग निदान रिपोर्ट ने दर्शाया कि मेरा क्रिएटिनिन स्तर १७ था जबकि एक सामान्य व्यक्ति का यह स्तर १.५ होता है। ये स्तर बहुत ऊँचा था। अगर ये और बढ़ जाता तो मुझे यूरेमिया (Uremia) तथा अन्य कठिनाईयाँ हो सकती हैं जो प्राय: अत्यन्त घातक होती हैं। मैंने श्रीमाताजी से प्रार्थना की कि मुझे अस्पताल जाने की आज्ञा दी जाए। ३१ जनवरी को मुझे प्रात: डेढ़ बजे हिन्दुजा अस्पताल में भर्ती कराया गया और सुबह ७ बजे मेरा इलाज आरम्भ हो गया। वहाँ भी डॉक्टरों ने कहा कि किसी भी प्रकार की देरी शरीर में तरल पदार्थों के एकत्र हो जाने के कारण और जटिलताएं पैदा कर सकती है। मुझे पुन: डायलिसिस पर डाल दिया गया। मेरे गुर्दे ठीक होने का नाम न ले रहे थे और डॉक्टर गुर्दा प्रत्यारोपण की बात कर रहे थे। पहली रात मैंने स्वयं से बहस की कि यदि मैं श्रीमाताजी को आदिशक्ति मानता हूँ तो उन्हें अपने भक्तों की रक्षा

करने से कोई भी नकारात्मकता किस प्रकार रोक सकती है? मैं विश्वस्त था कि मुझे रोगमुक्त करने से कोई भी नकारात्मकता रोक नहीं सकती और इस धारणा ने मुझमें आत्मविश्वास स्थापित किया। परन्तु डॉक्टर कह रहे थे कि मुझे गुर्दा प्रत्यारोपण की आवश्यकता है। मुझे पूरा विश्वास था कि देर–सवेर उनकी शक्ति अवश्य प्रभाव दिखाएगी। हुआ ऐसे कि ३ फरवरी प्रात: काल मैं मूत्र त्याग करने लगा यद्यपि यह बहुत कम मात्रा में था। डॉक्टरों ने कहा कि डायलिसिस के कारण ऐसा हो सकता है परन्तु उनके अनुसार मेरे गुर्दे ठीक न हो सकते थे। वो प्रत्यारोपण के बारे में बात करते रहे परन्तु मैं अपने विश्वास पर दृढ़ रहा कि परम–चैतन्य की, आदिशक्ति की, शक्ति से मेरे गुर्दे पुनर्जीवित हो उठेंगे।

प्रतिदिन श्री प्रधान के माध्यम से श्रीमाताजी के आदेश आ रहे थे। श्री प्रधान अस्पताल में चीज़ों को चलता रखने के लिए भी अत्यन्त सहायक थे, उनके हस्तक्षेप के बिना सब कुछ ठीक से चला पाना सम्भव न होता। बिस्तर पर पड़ा होने के बावजूद भी मैं श्रीमाताजी के आदेशों का अक्षरश: पालन कर रहा था। ७ फरवरी तक मेरा मूत्र त्याग १२०० मि.ली. से भी बढ़ गया और मुझे विश्वास हो गया कि श्रीमाताजी ने अपनी शक्ति से मेरे गुर्दे पुन:जीवित कर दिए हैं। डॉक्टर भी आश्चर्य चकित थे और उन्होंने इस घटना को चमत्कार बताया क्योंकि रोगी यदि एक बार डायलिसिस पर चला जाए तो गुर्दों का पुनर्जीवित होना दुर्लभ बात होती है, लाखों मामलों में से कोई एक।

१३ फरवरी को जब मैं नागपुर वापिस पहुँचा और वहाँ रोग निदान करवाया तो उन्होंने मुझे बताया कि मेरे गुर्दे ४०% काम कर रहे थे। ऐसा कैसे हो सकता था जबकि श्रीमाताजी ने स्वयं कहा था कि एक बार व्यक्ति यदि डायलिसिस पर चला जाए तो उनकी चैतन्य–लहरियाँ प्रभावित क्षेत्र तक नहीं पहुँचती। बीमारी के बावजूद भी मैं अपने विश्वास पर दृढ़ रहा कि आदिशक्ति को अपने चित्त से कार्य करने के लिए कुछ रोक नहीं सकता। श्रीमाताजी ने जो उदाहरण दिए थे, जिनमें डायलिसिस पर गए हुए लोगों पर उन्होंने कार्य किया था, वे चोटी के नेता थे। इनमें एक पूर्वप्रधानमंत्री भी थे। परन्तु इन लोगों में कोई सहजयोगी न था और कोई भी श्रीमाताजी के प्रति समर्पित न था। इस प्रकार मैंने ये साबित कर दिया कि सहजयोग में दृढ़ विश्वास द्वारा मृत्यु पर भी विजय पाई जा सकती है।

लेकिन शर्त ये है कि कठिनाई के समय व्यक्ति अपनी श्रद्धा और विश्वास को डोलने न दे। मुझे विश्वास है कि मेरा ये अनुभव श्रीमाताजी के प्रति आप में से बहुत से लोगों के समर्पण एवं विश्वास को दृढ़ करेगा।

यह पुस्तक मैंने वर्ष १९९५ में लिखनी आरम्भ की थी परन्तु आवश्यक इतिहास तथा तथ्यों की खोज के कारण इसे पूर्ण करने में देरी हुई। यह पुस्तक मैंने इसलिए लिखी है क्योंकि श्रीमाताजी के भक्तों को उनके पारिवारिक जीवन तथा उनके परिवार के इतिहास के विषय में अवगत कराना अपना विशेष कर्तव्य मानता हूँ। पुस्तक लेखन में यह मेरा प्रथम प्रयास है, यदि मैंने यह कार्य भली–भांति किया हो तो इसका सारा श्रेय श्रीमाताजी को जाता है और यदि इसमें त्रुटियाँ रह गई हों तो इनका पूर्ण दोष मुझ पर है।

अपनी कृतज्ञता अपनी दादीमाँ श्री सखुबाई के प्रति प्रकट करते हुए मैं यह पुस्तक समाप्त करना चाहूंगा। उन्होंने मुझे इतने प्रतिभाशाली पिता प्रदान किए जिन पर मुझे हमेशा गर्व रहेगा। मैं अनुशासन विवेक तथा हितकर प्रेम के लिए, जिसके साथ उन्होंने बच्चों का पालन–पोषण किया, अपनी माँ के प्रति भी कृतज्ञ हूँ। मैं परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि सभी को उन्हीं जैसी माँ प्रदान करें, इतनी सच्ची, इतनी निष्कपट, इतनी निस्वार्थ, इतनी राष्ट्रवादी और सर्वोपरि, महान गणितज्ञ। अपने भाई–बहनों के प्रति विशेष रूप से शालिनी–वाहिनी के प्रति, जिन्होंने आवश्यकता के समय मुझे प्रेम एवं सुरक्षा प्रदान की, अपना आभार प्रकट करता हूँ। अपने सम्बन्धियों तथा मित्रों के प्रति भी मैं आभारी हूँ। इस पुस्तक के तथ्यों को एकत्र करने में वे अत्यन्त सहायक हुए। श्री.एल.एस.देवानी का भी मैं आभारी हूँ कि वे मेरे इतने अच्छे मित्र बने तथा श्री.जोध, श्री.जोशी, श्री.जैन, शास्त्र बुद्धे तथा अन्य सहकर्मियों के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ। उनकी सहायता के बिना मैं उस स्थान पर न होता जहाँ मैं आज हूँ। अद्वितीय सर सी.पी. के प्रति मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ। मेरे विचार से वो मानवीय गुणों की पराकाष्ठा हैं और मैं सोचता हूँ कि केवल वही व्यक्ति परमेश्वरी, अर्थात् श्रीमाताजी से विवाह करने के योग्य थे। हार्दिक सम्मान के साथ परमपूज्य माताजी श्री निर्मला देवी को मैं प्रणाम करता हूँ । लगभग पचास वर्षों तक वे न केवल मेरी प्रेममयी बहन थीं बल्कि वे मेरी परमेश्वरी माँ, आदिशक्ति, उद्धारक तथा ब्रह्माण्ड को चलाने वाली चैतन्य शक्ति की दात्री भी थीं। बाइबल

में लिखा है कि ईसा मसीह ने कहा था कि मैं तुम्हें एक परामर्शदाता, सुखदाता तथा उद्धारक भेजूंगा। मैं Holy Ghost, जो कि अत्यन्त अस्पष्ट शब्द है, को खोजने में लगा रहा, परन्तु इसे समझ न सका। अपनी सम्माननीय बहन श्रीमाताजी निर्मला देवी को पाकर मुझे अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ। ईसा मसीह ने उन्हें भेजा था। मेरी कुण्डलिनी की जागृति करके उन्होंने सत्य का शुद्ध ज्ञान तथा सभी आवश्यक समाधान प्रदान किए। उन्होंने मेरी सहायता की तथा मुझे धनार्जन करने की, और विवेकमय ढंग से इसे खर्चने की योग्यता भी प्रदान की। उन्होंने मुझे सिखाया कि किस प्रकार सभी धर्म परस्पर संबंधित हैं। जैसा कुरान में वर्णन किया गया है, मेरे पुनर्जन्म के कारण मेरे हाथ बोलने लगे। श्री.कबीर तथा आदि–शंकराचार्य ने जिस प्रकार वर्णन किया है, अपने सिर पर चैतन्य लहरियों को शीतल समीर के रूप में मैं महसूस करने लगा। अपनी अंगुलियों के सिरों पर, अपने तथा अन्य लोगों, के चक्रों को मैं अनुभव करने लगा और अंगुलियों के सिरों पर रोग–निदान करके लोगों को रोग मुक्त करना भी मैं जान गया।

मेरा अनुभव बहुत गहन था परन्तु यह सैद्धान्तिक (Theoretical) ज्ञान न था। यद्यपि मैं भाषा का अच्छा विद्यार्थी न था फिर भी मेरे हृदय से कविता बहने लगी। आंतरिक अनुभव के माध्यम से अंतर्जात ज्ञान जाग उठा। अपने पेशे में अत्यंत ईमानदार एवं कुशल हो गया। अपने आध्यात्मिक ज्ञान का मैं आनन्द लेने लगा। अचानक मुझे आभास हुआ कि मैं अत्यंत सच्चा तथा धार्मिक व्यक्ति बन गया हूँ। सभी आयोजित धर्मो से मेरा विश्वास उठ गया। मेरे सभी सम्बन्धी 'शब्द जालं' में फंसे हुए थे। आत्मसाक्षात्कार करने से पूर्व कभी मन ख़लील जिब्रान, कबीर, आदि–शंकराचार्य को न समझा था। उनके कथनों में कितने महान सूक्ष्मज्ञान का भंडार है। ईसा–मसीह, ने जिज्ञासुओं से कहा था कि 'स्वयं को पहचानो' (Know Thyself) मैंने महसूस किया कि स्वयं को स्वच्छ करने का केवल यही मार्ग है। प्रेम, करुणा एवं सत्य का गुप्त ज्ञान मैंने समझा। बिना किसी शिकायत, गिले–शिकवे, घृणा तथा ईर्ष्या के मेरा मस्तिष्क एक नये क्षितिज का आनन्द लेने लगा। जीवन की एक सूक्ष्म सरिता में मेरा चित्त बह निकला और मैंने महसूस किया कि पूरा विश्व एक ही है और हम सब उस विराट के अंग–प्रत्यंग हैं।

मद्यपान, धूम्रपान तथा जुए जैसी विनाशकारी आदतों से मुक्त बहुत से

बहन–भाई अब मुझे प्राप्त हो गए हैं। वे अत्यंत महान आत्माएं हैं और उनके बच्चे अत्यंत सुन्दर एवं सुरभित पुष्प। अपनी महान आध्यात्मिकता, जो विश्व भर में बहुत से अन्य लोगों ने भी प्राप्त की है, का वर्णन करने के लिए संभवत: मुझे अन्य पुस्तक लिखनी पढ़ेगी।

हमारे जीवन, शरीर एवं मन के रोगी हो जाने का क्या कारण है? मैंने पाया कि यह परमात्मा से योग का अभाव है। विश्वभर की मानसिक प्रतिक्रियाओं के असत्य में हम भटकते रहते हैं। धन द्वारा आप सत्य प्राप्त नहीं कर सकते, बनावटी त्याग तथा इस प्रकार के अन्य उल्टे–सीधे कार्यों से भी सत्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता। यह अनुभव करना कि परमेश्वरी प्रेम सागर में विलीन, हम एक छोटी सी बूंद हैं, अत्यंत महान था। यह सब श्रीमाताजी निर्मला देवी की कृपा से घटित हुआ। मुझ जैसे तुच्छ व्यक्ति का यह पुन:र्जन्म था और इसने मुझे प्रेम, शान्ति एवं आनन्द की सूझ–बूझ प्रदान की।

आत्मसाक्षात्कार के पश्चात् जीवन के सभी पक्षों की सूझ–बूझ जिस प्रकार पूर्ण गरिमा पूर्वक प्रकट हुई उसे देखकर मैं आश्चर्य चकित हो गया। पुष्पों की तरह से हम भी अपनी सुगन्ध को नहीं पहचानते। परन्तु आत्म–साक्षात्कार द्वारा स्वयं को पहचानकर व्यक्ति जान जाता है कि परमात्मा ने उसे कौन सी सुगन्ध का आशीर्वाद दिया है।

मैंने हज़ारों लोगों को सहजयोग में पुनर्जन्म के लिए आते देखा है। मुझे लगा कि यही अन्तिम निर्णय है, जिसके विषय में ईसा–मसीह ने वर्णन किया था। बहुत से लोग मुक्ति चाहते हैं और उन्हें सहज में बिना किसी प्रयास के आत्म–साक्षात्कार प्राप्त हुआ। मानवीय शब्दों में मैं इस अनुभव का वर्णन नहीं कर सकता। इसका स्वाद तो व्यक्ति को स्वयं ही चखना पड़ेगा।

इस सहस्राब्दि में श्रीमाताजी निर्मला देवी ने डूबती हुई मानव जाति को विनाश से बचाने के लिए जन्म लिया है। कितनी प्रशंसनीय बात है कि अकेले सिर वे विश्वभर में यह महान कार्य कर रही हैं। उन्होंने हमारे मस्तिष्क को शान्त कर दिया है। पहले यह प्रतिक्रिया किया करता था, परन्तु अब निर्विचार हो गया है। मेरी तरह से हज़ारों लोगों ने, वर्तमान में, जो कि वास्तविकता है, रहना सीख लिया है। मुझे अब सहजयोग तथा श्रीमाताजी की शक्तियों के विषय में कोई

संशय नहीं है। मुझे अपना परिवार और सम्बन्धी त्यागने की कोई आवश्यकता नहीं यद्यपि वे सब सहजयोग की समस्याओं को समझने में मन्द है। अपना पेशा त्यागकर मुझे हिमालय के किसी एकान्त कोने पर भागना नहीं पड़ा। इसी विश्व में रहते हुए ही मैंने स्वयं को इस अवस्था में स्थापित किया। मेरी आत्मा ही मेरे चित्त में आई और मुझे ज्योतिर्मय कर दिया। मैं पूर्णत: निर्लिप्त हो गया। अन्य लोगों का सम्मान करना भी मैंने सीख लिया। मैंने देखा कि विश्वभर के सहजयोगी मेरा वैसे ही सम्मान करते हैं जैसे मैं उनका करता हूँ।

मैं जानता हूँ कि ये बात समझ पाना कठिन है कि विश्व भर के हम सब इतने सहजयोगी किस प्रकार इस अद्वितीय तारतम्यता पूर्वक एक साथ रहते हैं! केवल एक इच्छा मुझे परेशान करती है कि किस प्रकार पावन प्रेम ओर पूर्ण सत्य की खोज में भटके हुए अनगिनत साधकों तक मैं सहजयोग को पहुँचाऊं। आत्म–साक्षात्कारी लोगों की नई जाति में उत्थान प्राप्ति के लिए प्रवेश का हमारे सम्मुख यह अन्तिम अवसर है।

सर्वाधिकार सुरक्षित

बिना पूर्व आज्ञा के इस पुस्तक के किसी भी भाग की प्रतिलिपि या किसी भी रूप में प्रसारण वर्जित है। कोई भी व्यक्ति अनधिकृत रूप से यदि इसका प्रकाशन करता है तो उस पर हानिपूर्ति का दावा किया जाएगा।

'मेरी कुण्डलिनी जागृत करके परम पूज्य माताजी श्री निर्मला देवी ने मुझे सत्य का शुद्ध ज्ञान तथा सभी आवश्यक समाधान प्रदान किए। उन्होंने मुझे सिखाया कि किस प्रकार सभी धर्म परस्पर पूर्णत: जुड़े हुये हैं। मैं जान पाया कि जीवन में हमारे शारीरिक एवं मानसिक कष्टों के कारण क्या है। परमात्मा से योग का अभाव ही हमारे सभी कष्टों का कारण है। मानसिक प्रतिक्रियाओं के असत्य में ही हम भटकते रहते हैं। प्रेम, करुणा एवं सत्य के ज्ञान–रहस्य को मैं समझ पाया। मेरा मस्तिष्क ईर्ष्या, घृणा, शिकवे–शिकायतों विहीन एक नये क्षितिज का आनन्द लेने लगा। जीवन के सूक्ष्म तत्व में मेरा चित्त विचरण करने लगा और मैंने महसूस किया कि पूरा विश्व एक है तथा हम सब विराट के अंग–प्रत्यंग हैं। मेरे जैसे तुच्छ व्यक्ति का यह पुनर्जन्म था जिसने मुझे प्रेम, शान्ति एवं आनन्द की गहन सूझ–बूझ प्रदान की।'

NITL

निर्मल ट्रैन्सफोर्मेशन प्राइवेट लिमिटेड

'सहजयोग' के बारे में अधिक जानकारी के लिए कृपया पर www.sahajayoga.org हमसे सम्पर्क करें।